मुद्रक व प्रकाशक विश्वविजय प्रा लि,
एम-12 कनाट सरकस, नई दिल्ली-1

विप्र 32.576 II

तुलसीदास और हिंदू समाज

किसी कृति का मूल्यांकन या तो इस दृष्टि से किया जाता है कि उस ने साहित्य को कहां तक आगे बढाया या फिर इस दृष्टि से कि उस ने समाज को आगे बढने मे कहां तक सहायता दी. वैसे सच तो यह है कि ये दोनो दृष्टियां एक ही चीज के दो पहलू हैं, कोई अलगअलग चीजें नहीं. इन मे अगर भेद है भी तो उसे केवल तकनीकी अंतर कहा जा सकता है क्योंकि साहित्य और समाज मे आधारभूत भेद कुछ नहीं होता. भले ही कोई रचना 'स्वांत.सुखाय' लिखी जाए या 'बहुजनहिताय, लेकिन लिखी जा चुकने के बाद जब वह कृतिकार के पास से हट कर दूसरो के सामने जाती है, उसी क्षण से उस के प्रभाव की प्रक्रिया भी शुरू हो जाती है. और प्रभाव दो ही तरह के हो सकते हैं. एक तो यह कि पढने वाला प्रेरणा पा कर अपने जीवन को उन्नत बना कर आगे बढ जाए, दूसरा यह कि निराश हो कर सब हथियार डाल दे, यानी पीछे लौटने का घातक मार्ग चुन ले. हतप्रभ हो कर वहीं का वहीं खडा रह जाना भी क्योकि आगे बढ़ने से विमुख होना है, इसलिए उसे भी पिछड जाना या पीछे लौटना ही कहा जाएगा.

यहीं पर यह बात भी साफ कर देनी आवश्यक है कि संसार मे कोई भी चीज चिरतन नहीं होती. यह एक वैज्ञानिक तथ्य है. इसलिए कोई भी सत्य, कोई भी विचार, कोई भी वस्तु ऐसी नहीं जो हर वक्त एक जैसी ही रहे हर चीज बदलती रहती है, क्षणक्षण बदलती रहती है. हर पल होने वाला परिवर्तन जब तक पुरानी स्थिति की सीमाओ के अंदर रहता है, तब तक उस मे मात्रात्मक परिवर्तन (क्वांटीटेटिव चेंज) होते रहते हैं फिर धीरेधीरे एक वक्त ऐसा आ जाता है जब वह परिवर्तन पुरानी सीमाएं लांघ जाता है. तब स्थिति मूल रूप से बदल जाती है और वह परिवर्तन अपने नए रूप मे गुणात्मक परिवर्तन (क्वालिटेटिव चेंज) कहलाने लगता है परिवर्तन की यही प्रक्रिया दुनिया की हर चीज पर लागू होती है.

इसी तरह पुराने युग और पुराने विचार नए जमाने और नए चिंतन में बदलते रहते हैं. मतलब यह कि विचार का अपना कोई अलग अस्तित्व नहीं होता, वल्कि भौतिक स्थितियां ही विचार को जन्म देती हैं. स्थितियां बदलती रहती हैं, विचार भी बदलते रहते हैं.

इस ज्ञान के अभाव मे जो चिंतन चलता है उस के लिए आत्मा और परमात्मा की कल्पना करने के अलावा और कोई चारा नहीं रह जाता. इस चिंतन के अनुसार मनुष्य के विचार भौतिक परिस्थितियों द्वारा प्रभावित नहीं होते, पाप और पुण्य की शक्तियों मे संघर्ष होता रहता है. जब मनुष्य पवित्र विचार ग्रहण कर लेता है तो ससार शुभ हो जाता है और धर्म का साम्राज्य स्थापित हो जाता है, और जब वह अधर्म की ओर बढता है तो पाप की शक्तियां संसार पर अधिकार कर लेती हैं. ऐसे विचारकों के कथनानुसार इसी आधार पर सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग का चक्र चलता है और इन का मत है कि आत्मा और परमात्मा ही सत्य है तथा संसार झूठ और माया है.

शायद इसी कारण इस प्रकार के सभी ग्रंथों को मनुष्य द्वारा रचित न कह कर 'दैवी ग्रंथ' घोषित किया जाना जरूरी हो गया क्योंकि संसार तो झूठ और माया है और इस मे रहने वाला लेखक भी वैसा ही होगा. तब फिर भला लोगों को उस की बातों पर विश्वास कैसे होगा! बहुत पुराने ग्रथों की तो बात छोड़ ही दें, अभी केवल चार शती पूर्व अकबर बादशाह के राज्यकाल मे लिखे गए ग्रंथ 'रामचरितमानस' के विषय में भी इस तरह की भ्रांतिया जोड दी गई हैं कि इस की रचना "साक्षात भगवान श्री गौरीशंकरजी की आज्ञा से हुई तथा इस पर उन्हीं भगवान ने 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' लिख कर अपने हाथ से सही की ऐसी दशा में इस अलौकिक ग्रंथ का जितना भी प्रचार किया जाएगा, जितना अधिक पठनपाठन एवं मननअनुशीलन होगा, उतना ही जगत का मंगल होगा—इस मे तनिक भी संदेह नहीं है." (हनुमानप्रसाद पोद्दार)

'गोस्वामी तुलसीदासजी की सक्षिप्त जीवनी' शीर्षक के अंतर्गत गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस मे बताया गया है कि तुलसीदास "तीर्थाटन करते हुए काशी पहुंचे. मानसरोवर के पास उन्हें काकभुशुंडिजी के दर्शन हुए . वहां उन्हे एक दिन एक प्रेत मिला, जिस ने उन्हें हनुमानजी का पता बतलाया. हनुमानजी से मिल कर तुलसीदासजी ने उन से श्री रघुनाथजी का दर्शन कराने की प्रार्थना की. हनुमानजी ने कहा, 'तुम्हे चित्रकूट मे रघुनाथजी के दर्शन होंगे'

इस पर तुलसीदासजी चित्रकूट की ओर चल पड़े. चित्रकूट पहुच कर... एक दिन उन्हें राम के दर्शन हुए. उन्होंने देखा कि दो राजकुमार घोड़ो पर सवार हो कर धनुषबाण लिए जा रहे हैं. तुलसीदासजी उन्हें देख कर मुग्ध हो गए पर पहचान न सके. पीछे से हनुमानजी ने आ कर उन्हें सारा भेद बताया तो बड़ा पश्चात्ताप करने लगे. हनुमानजी ने उन्हें सांत्वना दी और कहा प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे. संवत 1607 की मौनी अमावस्या, बुधवार के दिन उन

के सामने भगवान श्रीराम पुन प्रकट हुए उन्होंने बालक रूप मे तुलसीदास से कहा, 'बाबा! हमें चंदन दो'. हनुमानजी ने सोचा, कहीं वह इस बार भी धोखा न खा जाएं, इसलिए उन्होंने तोते का रूप धारण कर के यह दोहा कहा :

चित्रकूट के घाट पर भई सतन की भीर,
तुलसीदास चदन घिसें तिलक देत रघुवीर.

तुलसीदासजी उस अद्भुत छवि को निहार कर शरीर की सुधि भूल गए. भगवान ने अपने हाथ से चदन ले कर अपने तथा तुलसीदासजी के मस्तक पर लगाया और अतर्धान हो गए.

इसी जीवनी मे आगे चल कर यह भी कहा गया है कि सवत सोलह सौ अठारह मे तुलसीदासजी "हनुमानजी की आज्ञा से अयोध्या की ओर चल पडे. उन दिनों प्रयाग मे माघ मेला था पर्व के छ दिन बाद एक वटवृक्ष के नीचे उन्हें भारद्वाज और याज्ञवल्क्य मुनि के दर्शन हुए वहा से वह काशी चले आए और वहां ..उन के अंदर कवित्वशक्ति का स्फुरण हुआ और वह संस्कृत मे पद्य रचना करने लगे. पर दिन मे वह जितने पद्य रचते, रात्रि मे सब लुप्त हो जाते. यह घटना रोज घटती आठवें दिन तुलसीदासजी को स्वप्न हुआ. भगवान शंकर ने उन्हें आदेश दिया कि तुम अपनी भाषा मे काव्य रचना करो. तुलसीदासजी की नींद उचट गई वह उठ कर बैठ गए. उसी समय भगवान शिव और पार्वती उन के सामने प्रकट हुए. तुलसीदासजी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया. शिवजी ने कहा, 'तुम अयोध्या मे जा कर रहो और हिंदी मे काव्य रचना करो. मेरे आशीर्वाद से तुम्हारी कविता सामवेद के समान फलवती होगी.' इतना कह कर श्री गौरीशंकर अंतर्धान हो गए"

फिर अयोध्या आ कर सवत सोलह सौ एकतीस मे तुलसीदास ने जिस दिन रामचरितमानस की रचना शुरू की उस दिन का वैसा ही योग बताया गया है जैसा कि त्रेतायुग मे रामजन्म के दिन था दो वर्ष, सात महीने और छब्बीस दिन मे ग्रथ की समाप्ति हुई, यानी ठीक वही दिन सिद्ध किया गया है जिस दिन राम का विवाह हुआ था

उस के बाद "भगवान की आज्ञा से तुलसीदासजी काशी चले आए. वहा उन्होंने भगवान विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा को रामचरितमानस सुनाया. रात को पुस्तक श्री विश्वनाथजी के मदिर मे रख दी गई सवेरे जब वह खोला गया तो उस पर लिखा हुआ पाया गया : सत्य, शिव, सुंदरम्. और नीचे भगवान शकर की सही थी उस समय उपस्थित लोगो ने 'सत्य शिवं, सुदरम्' की आवाज भी कानो से सुनी"

तुलसीदास की कुटिया के बाहर साक्षात राम और लक्ष्मण धनुषबाण लिए पहरा दिया करते थे इस बात को सिद्ध करने के लिए पुस्तक की पाडुलिपि चुराने के प्रयास का प्रसग जोड दिया गया है. मगर इसी प्रसंग मे विरोधी बात यह आ गई है कि 'तुलसीदासजी ने अपने लिए भगवान को कष्ट हुआ जान कर

कुटी का सारा सामान लुटा दिया, पुस्तक अपने मित्र टोडरमल के यहा रख दी' तो क्या टोडरमल की रखवाली रामलक्ष्मण की पहरेदारी से अधिक सशक्त थी? फिर एक प्रसंग यह आया है कि पंडितो ने परीक्षा लेने के लिए "भगवान विश्वनाथ के सामने सब से ऊपर वेद, उस के नीचे शास्त्र, शास्त्रों के नीचे पुराण और सब के नीचे रामचरितमानस रख दिया. मंदिर बंद कर दिया गया प्रातः काल जब मंदिर खोला गया तो लोगों ने देखा कि रामचरितमानस वेदो के भी ऊपर रखा हुआ है." इस प्रसंग द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि यह पुस्तक वेदों से भी श्रेष्ठ है.

ग्रंथ की रचना के साथ और इस के रचनाकार के संबंध में जो अविश्वसनीय बातें और चमत्कारी प्रसंग जोड़ दिए गए हैं वे सब पुस्तक के अंदर वर्णित सामग्री को देखते हुए कुछ विशेष आपत्तिजनक नहीं रह जाते क्योंकि इसी तरह की अविश्वसनीय बातें पूरे ग्रंथ मे भरी पड़ी हैं. बुद्धि या तर्क से किसी चीज का कोई मेल नही, मन में जब भी जो कुछ आया कह डाला.

रही बात तुलसी की विचारधारा की, सो उस के बारे में यदि आज का चिंतनशील व्यक्ति यह कहे कि तुलसी ने हिंदुओ मे अंधविश्वास, कायरपन, दब्बूपन और गुलामी की भावना पैदा करने मे सब से अधिक योग दिया है तो ऐसा कहना अनुचित न होगा इस बात का विश्लेषण करने के लिए यदि हम एक सिरे से ही रामचरितमानस को ले कर चर्चा करते चलें तो सुविधा रहेगी

आत्महीनता की भावना को भक्त कवियो ने विशेष गुण माना है. तुलसीदास ने तो आत्महीनता के प्रदर्शन की कोई सीमा ही नहीं रखी. उन का हर ग्रंथ इस का प्रमाण है. 'विनयपत्रिका' मे तो सिवा इस के और कुछ है ही नहीं. यदि किसी व्यक्ति मे तनिक भी आत्मसम्मान है तो वह रामचरितमानस को पढ़ कर कुढ़े बिना नहीं रह सकता. मगलाचरण मे सभी देवीदेवताओ की वंदना कर के फिर 'पृथ्वी के देवता ब्राह्मणो की चरणवंदना' (बंदेउ प्रथम महीसुर चरना) करने के बाद सब को एक साथ संबोधित किया गया है कि मुझे अपने बुद्धिबल का भरोसा नहीं है, इसी लिए मैं सब से विनती करता हूं. पंक्तियां हैं:

निज बुधिबल भरोस मोहि नाही, तातें विनय करउ सब पाही.

साथ ही इस बात का अहसास भी तुलसी को है कि इस सीमा तक का हीनभाव प्रदर्शन देख कर लोगबाग हंसेंगे. तभी तो झेंप उतारते हुए वह झट से कह डालते हैं कि दुष्टों के हंसने से मेरा हित ही होगा (खल परिहास होई हित मोरा).

आत्मभर्त्सना के दौरे मे तुलसी ने यहां तक कह डाला है कि जो रामजी के भक्त कहला कर लोगो को ठगते हैं, जो धन, क्रोध और काम के गुलाम हैं और जो धींगामस्ती करने वाले, धर्मध्वजी यानी धर्म की झूठी ध्वजा फहराने वाले, दंभी और कपट के धंधो का बोझ ढोने वाले हैं, संसार के ऐसे लोगो में सब से पहले मेरी गिनती है. देखिए, जरा इन पंक्तियो को :

वचक भगत कहाइ राम के, किंकर कचन कोह काम के.
तिन्ह मह प्रथम रेख जग मोरी, धीग धरमध्वज धधक धोरी

रामायण अगर अलौकिक ग्रंथ है और उस पर तथाकथित भगवान के हस्ताक्षर हुए थे तो तुलसी के भगवान को क्या इतना भी भौगोलिक ज्ञान नहीं कि धरती कछुए की पीठ और शेषनाग के फन पर नहीं खड़ी? (कमठ सेष सम घर वसुधा के) उन्हें क्या यह भी मालूम नहीं कि पृथ्वी घूमती है, अचल नहीं है? (विस्व भार भर अचल छमा सी).

मुगल बादशाह की रियाया के रूप मे वसते हुए तुलसी क्या यह भी नहीं जानते थे कि मुसलमान हुक्मरानो ने कितनी बेरहमी के साथ हिंदुओ के कत्ले-आम करवाए, लूटपाट की, बलात्कार किए और जजिया कर लगाए. तुलसी तो अभी तक यही मानते चले जा रहे थे कि राजा ईश्वर के अंश से उत्पन्न होता है (ईश अंश भव परम कृपाला). इतना ही नहीं बल्कि वह अपने युग के ज्ञान-विज्ञान को नकराने का प्रयास करते हैं कि कलियुग मे न कर्म है, न भक्ति है और-न ज्ञान ही है (नहि कलि करम न भगति विवेकू). जव ज्ञान न होने का उलाहना देने वालो के ज्ञान का यह हाल हो तो फिर लुटतीपिटती और हर जुल्म सहती हुई जनता अपने वक्त के राजा के खिलाफ बगावत करने की प्रेरणा किन से पाएगी? तुलसी के अनुसार राजा तो ईश्वर का अंश था इसलिए ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह करने की सामर्थ्य भला किस मे हो सकती थी

कवि ने खुद अनेक स्थलों पर कहा है कि रामचरितमानस की रचना शिवजी ने की है : "रामचरितमानस एहि नामा . बिरचेउ संभु सुहावन पावन." अतः प्रभु की वाणी को तो अंध भक्त की तरह मानना ही चाहिए :

मातपिता गुरु प्रभु के बानी, बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी.

और तुलसी के प्रभु ने जो मनुष्य के रूप मे अवतार भी लिया तो मनुष्यो के लिए नहीं, बल्कि ब्राह्मण, गऊ, देवता और संतों के लिए (विप्र, धेनु, सुर, संत हित, लीन्ह मनुज अवतार) और उन्हें इतना भी ज्ञान नहीं कि सूर्य स्थिर है, चलता नहीं (कौतुक देख पतंग भुलाना, अर्थात यह कौतुक देख कर सूर्य भी अपनी चाल भूल गया). राम जव पैदा हुए तब महीना भर दिन ही रहा.' सूर्य अपने रथ सहित वहीं रुक गए और महीने भर बाद फिर से गुणगान करते हुए चले (मास दिवस कर दिवसा .रथ समेत रवि थाकेउ .दिनमान चले करत गुन गाना)

यो ऐसे कवि के लिए कुछ भी असभव नहीं रह जाता जिसे त्रेतायुग के व्यक्ति कलियुग मे भी आ कर मिलते हो और वह खुद भी त्रेता मे पहुच सकता हो. जव राम, लक्ष्मण और सीता वन को जाते समय यमुना पार उतरते हैं, "उसी अवसर पर वहां एक तपस्वी आया, जो तेज का पुज, छोटी अवस्था का और सुंदर था उस की गति कवि नहीं जानते, वह तो वैरागी वेष मे था और मन, वचन तथा कर्म से श्री रामचंद्रजी का प्रेमी था." इन पक्तियों को

पढ़ जाइए :

तेहि अवसर एक तापसु आवा, तेज पुंज लघु वयस सुहावा,
कवि अलखित गति वेषु विरागी, मन, क्रम, वचन राम अनुरागी.

तुलसी ने जातिवाद को विशेष बढ़ावा देना चाहा है. इस का कारण यह था कि मुसलमानों के काल तक आतेआते हिंदुओं में जाति भावना की बेड़ियां ढीली होने लगी थीं. फलस्वरूप तथाकथित श्रेष्ठतम जाति (ब्राह्मण) का थोपा गया मान घटने लगा था. मुफ्तखोरों की इस जाति का एकमात्र काम दूसरों की कमाई पर बढ़िया से बढ़िया खाना और उच्चता के नशे मे मस्त झूमते रहना था. अपना धंधा बनाए रखने के लिए जरूरी था कि लोगों की भावनाएं उभार कर फिर से उन्हें जातिवाद की संकीर्णता में जकड़ा जाता. इसी लिए तुलसी ने कहा है कि यद्यपि जगत में अनेक प्रकार के दारुण दुख हैं तथापि जाति अपमान सब से बढ़ कर कठिन है :

यद्यपि जग दारुन दुख नाना, सब ते कठिन जातिअपमाना.

इसी लिए बरात का स्वागत भी जनक ने जातिभेद के अनुसार करवाया. उत्तम, मध्यम, नीच और लघु स्त्रीपुरुषों को अपनेअपने योग्य स्थान पर बैठाया गया. (उत्तम, मध्यम, नीच, लघु, निजनिज थल अनुहारि).

मंथरा को कोसते समय भी उसे 'नीच जाति वाली' कह कर गाली देना कवि को आवश्यक लगा (करई बिचारु कुबुद्धि कुजाति) और साथ ही यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि नीच जाति के व्यक्ति कुबुद्धि भी होते हैं. केवल यही नहीं, तुलसी की दृष्टि में नीच जाति की सभी स्त्रियां 'पत्थर के कीड़े जैसे कठोर स्वभाव की' होती हैं.

वन हित कोल किरात किसोरी, रची विरंचि विषम सुख भोरी.

इस के अलावा यह भी कि नीच जाति की रचना भी भगवान ने की है और उन्हें जंगलों में रखना भी प्रभु द्वारा ही निश्चित किया हुआ है मतलब यह कि जंगलों में रहने के लिए ही उन्हें रचा गया था, इसी कारण उन का स्वभाव ऐसा कठोर बनाया गया है. इसी प्रकार निषाद जाति का वर्णन करते हुए कवि का कथन है कि यह जाति 'लोक और वेद दोनों मे सब प्रकार से नीच मानी जाती है' और इस की 'छाया के छू जाने से भी स्नान करना होता है.'

लोक वेद सब भांतिहिं नीचा, जासु छांह छुइ लेइअ सींचा

भरत जब अयोध्यावासियो को साथ ले कर वन मे राम से मिलने जाते हैं तब वन में रहने वाली कोल, किरात और भील आदि जातियों के लोग अयोध्यावासियों का सत्कार करते हैं. बढ़िया से बढ़िया शहद, कंदमूल, फल आदि खाने को देते हैं. उन के इस प्रेममय अतिथिसत्कार का बदला जब अयोध्यावासी दाम चुका कर देना चाहते हैं तो वे अपमानित अनुभव कर मना करते हुए कह उठते हैं, "मानत साधु प्रेम पहिचानी" मतलब यह कि साधु लोग प्रेम को पहचान कर उस का सम्मान करते हैं, अर्थात आप साधु हैं, आप हमारे प्रेम को देखिए,

दाम दे कर या वस्तुएं लौटा कर हमारे प्रेम का तिरस्कार न कीजिए.

मगर कवि को जब इतने से भी सब्र नहीं होता तो वह उल्टे उन्हीं के मुंह से अपनी जाति की बुराई कराने लगते हैं, "हमारी तो यही बडी भारी सेवा है कि हम आप के कपड़े और बरतन नहीं चुरा लेते हम लोग जड जीव हैं, जीवो की हिंसा करने वाले हैं, कुटिल, कुचाली, कुबुद्धि और कुजाति हैं. हमारे दिनरात पाप करते ही बीतते हैं. तो भी न तो हमारी कमर मे कपडा है और न पेट ही भरते हैं. हम मे स्वप्न मे भी कभी धर्म बुद्धि कैसी! यह सब तो श्री रघुनाथजी के दर्शन का ही प्रभाव है." देखिए निम्न पंक्तियां :

यह हमार अति बडि सेवकाई, लेहिं न बासन बसन चुराई.
हम जड़ जीव जीवगनघाती, कुटिल कुचाली कुमति कुजाती
पाप करत निसिबासर जाही, नहिं कटि पट नहिं पेट अघाही
सपनेहु धरमबुद्धि कस काऊ, यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ

यों जातिभावना पर तो रामचरितमानस का पूरा कथानक ही टिका हुआ है. रामरावण युद्ध भी जातियुद्ध ही है निशाचर जाति के लोग अनार्य थे जो आर्यों की अधीनता स्वीकार करना नहीं चाहते थे. फलस्वरूप तनातनी बनी रहती थी, लड़ाइया भी होती ही रहती थीं और छिटपुट वारदातें भी मगर आर्यों के पक्षधर कवियों ने अनार्यों को अछूत, नीच, दानव, राक्षस आदि नामों से पुकारना शुरू कर दिया था. वरना राक्षस भी मनुष्य ही थे, मानव से परे कोई अलग नस्ल के नहीं थे. जिस प्रकार 'कुरान' मे विश्वास न रखने वालों को काफिर कह दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार आर्य सभ्यता और वेदों की प्रभुता स्वीकार न करने वालो को आर्यों ने दानव या राक्षस कहना शुरू कर दिया था आर्य शासको ने उत्तर भारत पर हुकूमत जमा लेने के बाद अपने प्रचारक ऋषिमुनियो को दक्षिण भारत मे प्रचार करने के लिए भेजना शुरू किया तो दक्षिण भारतीय जातिया उस प्रचार का विरोध करने लगी थीं इसी विरोध के परिणामस्वरूप कई बार प्रचारक लोग मुठभेडों मे मारे भी जाते थे. ऐसी ही किसी मुठभेड़ मे मारे गए आर्यों के अस्थिपिंजर वन मे पडे देख कर राम ने मुनियो से पूछा होगा (प्रसंग अरण्य कांड का है) :

पुनि रघुनाथ चले बन आगे, मुनिवर वृंद बिपुल संग लागे.
अस्थि समूह देखि रघुराया, पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया

पूछे जाने पर मुनियो ने कहा, "हे स्वामी! आप तो सर्वदर्शी और अंतर्यामी हैं जानते हुए भी हम से कैसे पूछ रहे हैं? राक्षसो के दलो ने सब मुनियों को मार डाला है. यह सुनते ही राम की आखो मे पानी उतर आया, यानी अपनी जाति के प्रचारको की अनार्यो द्वारा यह दुर्गति हुई देख कर जातिअपमान का बदला लेने की भावना जोर मार उठी." देखिए :

जानतहू पूछिअ कस स्वामी, समदरसी तुम्ह अंतरजामी,
निसिचर निकर सकल मुनि खाए, सुनि रघुबीर नयन जल छाए.

फिर इसी जातिश्रपमान का वदला लेने के जोश में 'राम ने भुजा उठा कर प्रण किया कि मैं पृथ्वी को निशाचरों से रहित कर दूंगा' (निसचर हीन करऊं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह).

रावण भी इन्हीं निशाचरों में से था श्रौर श्रनार्यों का एक शक्तिशाली राजा था. वह मानव था, मानव के श्रलावा श्रौर किसी नस्ल का नहीं था. इस बात का प्रमाण भी स्वयं तुलसी के रामचरितमानस से हो दिया जा सकता है. पहला प्रमाण तो रावण द्वारा सीता स्वयंवर मे भाग लेना ही है. मनुष्यों को ही तो स्वयंवर में न्योता गया होगा! इस के श्रलावा एक श्रौर बड़ी बात यह कि तुलसी ने खुद माना है कि रावण उत्तम कुल का है, ऋषि पुलस्त्य का पौत्र है. वह कहते हैं, "उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती."

श्रव सवाल यह है कि जव उस के पितामह को तो उत्तम कहा गया है श्रौर उन के साथ 'रिषि' शब्द लगाया गया है तो फिर उन्हीं ऋषि पुलस्त्य का वंशज राक्षस या दानव क्यों कर हो गया! सीधी बात है कि पुलस्त्य ने श्रार्यों की श्रधीनता स्वीकार ली थी, इसलिए उमे 'उत्तम' श्रौर 'रिषि' की उपाधि दे दी गई, जव कि रावण ने रघुवंश के श्रधीन होना स्वीकार नहीं किया था, इसलिए उसे 'राक्षस' श्रौर 'दानव' कह कर गालियां दी गईं. हनुमान जव राम का दूत बन कर लंका में जाता है तो रावण से यही बात कहता भी है, "तुम राम के चरणकमल को हृदय मे धारण कर लो, श्रर्थात उन की श्रधीनता स्वीकार कर लो श्रौर लंका का श्रचल राज्य करो ऋषि पुलस्त्य का यश निर्मल चंद्रमा के समान है, उस चंद्रमा मे तुम कलंक न वनो, श्रर्थात जिस प्रकार पुलस्त्य ने श्रार्यों की दृष्टि में यश श्रर्जित किया था, उसी प्रकार तुम भी करो." जिस चौपाई का यह भावार्थ है, वह इस प्रकार है:

राम चरन पंकज उर धरहू, लका अचल राज तुम्ह करहू
रिषि पुलस्ति जसु विमल मयका, तेहि समि महुं जनि होहु कलंका

इस से स्पष्ट होता है कि श्रार्य जाति से राम का श्रभिप्राय केवल यही था कि किसी तरह लका का श्रनार्य राजा श्रधीनता स्वीकार कर ले. फिर चाहे श्रधीन होने के वाद वह लंका पर श्रवल राज्य करता रहे, उन्हें कोई श्रापत्ति नहीं.

लेकिन रावण वलवान राजा था, उस की प्रजा हर दृष्टि से संतुष्ट श्रौर समृद्ध थी. श्रार्यों में सर्वाधिक धनाढ्य कुबेर तक को रावण नीचा दिखा चुका था श्रौर कुवेर का पुष्पक विमान तक जीत कर ले गया था. लंका मे उस की प्रजा कितनी सुखी थी, वह तो इसी वात से प्रकट होता है कि उमे 'सोने की नगरी' कहा जाता था. वहां कोई गरीब नहीं था. इस तथ्य को खुद तुलसी-दास ने भी स्वीकार किया है कि योग्यता के श्रनुसार घरों को वांट कर रावण ने सव राक्षसों को सुखी किया:

जेहि जम जोग वांटि गृह दीन्हे, सुखी सकल रजनीचर कीन्हे.

लंका पर आर्य राजाओं की ललचाई नजर का कारण भी वहां की समृद्धि ही थी. तुलसी ने लंका का ब्योरा देते हुए उसे स्वर्गलोक की अमरावतीपुरी यानी इंद्र की नगरी और नागकुल की भोगावतीपुरी से भी अधिक सुंदर और बांकी नगरी बताया है:

भोगावति जसि अहिकुल बासा, अमरावति जसि सक्रनिवासा
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका, जग बिख्यात नाम तेहि लंका

यही लंका पहले आर्यों ने अनार्यों पर हमला कर के जीत ली थी और कुबेर वहां का राजा बन बैठा था. लेकिन बाद में रावण नामक बलवान अनार्य ने सेना संगठित कर के अपने पितामहों द्वारा हारा हुआ राज्य फिर से प्राप्त कर लिया था. इस बात के प्रमाण के लिए भी कहीं और जाने की जरूरत नहीं है, रामचरितमानस में ही इस का उल्लेख है:

हरि प्रेरित जेहि कलप जो जातुधानपति होई,
सूर प्रतापी अतुल बल दल समेत बस सोई

(भगवान की प्रेरणा से जिस कल्प में जो राक्षसों का राजा होता है, वही शूरवीर, प्रतापी, अतुल बलवान अपनी सेना सहित उस पुरी में बसता है)

रहे तहां निसिचर भट भारे, ते सब सुरन्ह समर संघारे
अब तहं रहहिं सक्र के प्रेरे, रच्छक कोटि जच्छपति केरे

(पहले वहां बड़ेबड़े योद्धा निशाचर लोग रहते थे देवताओं यानी आर्य जाति के लोगों ने उन सब को युद्ध में मार डाला. अब इंद्र की प्रेरणा से वहां कुबेर के एक करोड़ रक्षक यक्ष रहते हैं)

दसमुख कतहुं खबरि असि पाई, सेन साजि गढ़ घेरेसि जाई
देखि बिकट भट बड़ि कटकाई, जच्छ जीव ले गए पराई.

(रावण को खबर मिली तो उस ने सेना सजा कर किले को जा घेरा. उस बड़े विकट योद्धा और उस की बड़ी सेना को देख कर यक्ष लोग अपने प्राण बचा कर भाग गए)

इस प्रकार रामचरितमानस से ही प्रमाणित होता है कि रावण ने आर्यों द्वारा हथिया ली गई नगरी को जीत कर वहां अपनी राजधानी स्थापित की. दरअसल इसी बात की जलन आर्यों को थी जिसे उतारने के लिए राम ने लंका पर चढ़ाई की और बहाना बना लिया सीताहरण का. यों सच यह है कि सीताहरण होने के लिए भी राम खुद ही जिम्मेदार हैं. रावण की बहन का अकारण अपमान करना और उस के नाककान काट लेना ही तो सीताहरण का तात्कालिक कारण बना, वरना एक औरत को प्रणय निवेदन करने पर मारमार के अंगहीन कर डालना कहां की मर्यादा थी और कहां की बहादुरी! राम तो रावण के साथ लड़ाई करने का बहाना चाहते थे, सो बहाना इस तरह खुद पैदा कर लिया.

इस प्रकार रामरावण युद्ध सीधे तौर पर आर्य और अनार्य जातियों के बीच हुए युद्ध का प्रतीक था. रावण को राक्षस के रूप में कल्पना कर के कवि

ने जनसाधारण के अंधविश्वास को ही बढावा दिया है.

रामचरितमानस अंधविश्वासों को प्रश्रय देने मे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है. शिवविवाह के अवसर पर शिवजी के शृंगार का वर्णन ही देख लें: 'कुंडल कंकन पहिरे व्याला' (सांपो के कुंडल और कंकण पहने), 'ससि ललाट सुंदर सिर गगा, नयन तीनि उपवीत भुजंगा. गरल कंठ उर नर सिर माला...' (मस्तक पर चंद्रमा, सिर पर गंगा, तीन नेत्र, सांपो का जनेऊ, गले में विप सौर छाती पर नरमुंडो की माला.)

अब जरा शिव के बारातियों का हुलिया तो देखिए:

भूपन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें
खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन वेप अगनित को गनै.
बहु जिनस पिचास जोगि जमात वरनत नहिं बनै.

(भयंकर गहने पहने, हाथ मे कपाल लिए हैं और सब के शरीर पर ताजा खून मला हुआ है. गधे, कुत्ते, सुअर और सियार के से उन के मुख हैं. गणों के अनगिनत वेषों को कौन गिने. बहुत प्रकार के प्रेत, पिशाच और योगियो की जमातें हैं, उन का वर्णन करते नहीं बनता.)

क्या इस प्रकार के वीभत्स और भयानक देवताओ के प्रति जनता के मन मे श्रद्धा या भक्ति सहज रूप में उत्पन्न हो सकती है? वास्तविक स्थिति है भी यही कि मानवेतर किसी शक्ति के प्रति मनुष्यों को आस्थावान बनाने के लिए उस शक्ति का भय और आतक जमाया जाता है ताकि लोग डर कर उसे मानने लगें भय का ही दूसरा नाम भगवान है और भय पैदा करने के लिए इस प्रकार के भयंकर चमत्कारी चित्रणो द्वारा अंधविश्वास जगाना ही असल काम होता है जिसे तुलसी ने बडी खूबी के साथ निभाया है इस प्रकार के अविश्वसनीय चित्रणों के विरुद्ध कोई आवाज न उठा सके या तर्कबुद्धि द्वारा इन बातों पर अविश्वास या शंका का प्रश्न न उठा दे, इस चीज का इतजाम करने के लिए दलील दी जाती है कि 'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी.'

जब विष्णु के चार भुजाएं, ब्रह्मा के चार मुख, शिव का विकट वेप और पांच मुख हैं (विष्णु चारि भुज विधि मुख चारि, विकट वेप मुख पंच पुरारि) तब रावण के ही दस मुख वर्णित कर देने से वह राक्षस या दानव क्यो कर हो गया? वास्तव में यह सारी की सारी मनगढ़ंत उलटीसीधी अटकलें केवल चमत्कार प्रदर्शन हैं और जनता को अधविश्वासी तथा मूर्ख बनाए रख कर अपना हलवापूरी पाते रहने के ढंग हैं.

कोई इन मुफ्तखोरो को दान देते समय आनाकानी या कजूसी न करे, इसी लिए रामचरितमानस मे दान की महिमाएं बखानी गई हैं और मांगने वालो को मना कर देना निकृष्ट व्यवहार घोपित किया गया है. साथ ही जो लोग किसी भी मंगते को 'नहीं' कहते ही नहीं, ऐसे व्यक्तियों को 'विरले' और 'श्रेष्ठ' पुरुप की उपाधि दी गई है:

मंगल लहहि न जिन्ह कै नाही, ते नरवर थोरे जग माही

"इस के अलावा जितने भी छोटेबडे अंधविश्वास आज हिंदू समाज मे नजर आते हैं, उन्हें पैदा करने या बढ़ावा देने मे भी तुलसी की रामायण का बहुत बड़ा हाथ है. उदाहरण के लिए यदि हिंदू समाज मे पुरुष का दायां अंग और स्त्री का बायां अंग फडकना शुभ माना जाता है तो इस के अनेक प्रमाण रामचरितमानस मे उपलब्ध हैं. "फरकहि सुभद अग सुनु भ्राता" (हे भाई, सुनो, मेरे मंगलदायक दाहिने अंग फड़क रहे हैं) "मंजुल मंगल मूल वाम अग फरकन लगे." (सुदर मंगलो के मूल उन के—सीता के—बाएं अग फडकने लगे.)

शकुनअपशकुन सबंधी भी जितने अंधविश्वास हिंदुओ मे पाए जाते हैं, उन सब की जड भी इसी रामायण में है: "होहि सगुन सुंदर सुभदाता" (सुदर शुभदायक शकुन हो रहे हैं) फिर इन शकुनो का ब्योरा दिया गया है "दाहिनी ओर कौवा सुंदर खेत मे शोभा पा रहा है. नेवले के दर्शन भी सब ने किए. तीनो प्रकार की हवा अनुकूल दिशा मे चल रही है. श्रेष्ठ यानी सुहागिन स्त्रिया भरे हुए घडे और गोद मे बालक लिए चली आ रही हैं. लोमड़ी फिरफिर दिखाई दे जाती है गाएं सामने खड़े बछड़ो को दूध पिला रही हैं. हिरनों की टोली बाईं ओर से घूम कर दाहिनी ओर को आई, मानो सभी मगलो का समूह दिखाई दिया सफेद सिर वाली चील विशेष रूप से कल्याण कर रही है. श्यामा बाईं ओर सुंदर पेड पर दिखाई पडी. दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिए सामने आए" जरा निम्न पक्तिया पढिए.

दाहिन काग सुखेत सुहावा, नकुल दरसु सब काहू पावा
सानुकूल बह त्रिविध बयारी, सघट सबाल आव बर नारी
लोवा फिरिफिरि दरसु देखावा, सुरभी सनमुख सिसुहि पिआवा
मृगमाला फिरि दाहिनि आई, मगलगन जनु दीन्हि देखाई
छेम करी कह छेम बिसेषी, स्यामा बाम सुतरु पर देखी
सनमुख आयउ दधि अरु मीना, कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रवीना

जब राम की बारात चढने के समय इस तरह के शकुन होने से मगल हुआ दिखाया गया है तो फिर हिंदू परिवार मे उसी प्रकार का तामझाम बटोर कर रखा जाने का अंधविश्वास अगर घर कर गया है तो इस के लिए वही तुलसी उत्तरदायी हैं जो हर इस तरह के प्रसंग मे ऐसीऐसी टिप्पणिया देते चलते हैं. "सभी मंगलमय, कल्याणमय और मनोवाछित फल देने वाले शकुन सच्चे होने को एक साथ ही हो गए" पक्तिया इस प्रकार हैं

मगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार,
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार

अंधविश्वासो की ही कडी मे ज्योतिष भी आती है जिसे सच्चा सिद्ध करने के लिए अनेक प्रकार की उक्तियो से काम लिया गया है. उदाहरणार्थ, राम, लक्ष्मण और सीता जब वन मे जा रहे हैं तो उन्हें रास्ते मे मिले कुछ यात्री

कहते हैं:

राज लखन सब अंग तुम्हारें, देखि सोचु अति हृदय हमारें.
मारग चलहु पयादेहि पाए, ज्योतिषु झूठ हमारे भाए

(तुम्हारे सब अंगों में राजचिह्न देख कर हमारे हृदय मे बड़ा सोच हो रहा है. तुम लोग रास्ते में पैदल ही चल रहे हो, इस मे क्या हम यह समझें कि ज्योतिष शास्त्र झूठा ही है?)

स्पष्ट है कि भले ही वे तपस्वी वेश में थे मगर ज्योतिषशास्त्र के अनुसार राजाओं की शरीररचना ही कुछ अलग तरह की होती है इस भिन्न शरीररचना को पहचान कर यात्रियों को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि ये राजपुरुष पैदल ही क्यों चल रहे हैं? इस प्रकार तुलसी ने ज्योतिषशास्त्र को सच्चा सिद्ध कर दिया क्योंकि राम और लक्ष्मण तो वास्तव मे राजपुरुष ही थे.

फिर स्थानस्थान पर इस प्रकार के अंधविश्वासमूलक कर्मकाडीय उपदेश भी मानस में भरे पड़े हैं कि जो लोग अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं और ब्राह्मणों को भोजन करा कर बहुत दान देते हैं (तरपन होम करहिं बिधि नाना, बिप्र जेवांइ देहिं बहु दाना), उन लोगो के मनमदिरों मे सीता और राम दोनों बसते हैं. (तिन्ह के मनमंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ)

रामायण के कथानक का ढांचा ही तुलसी ने अंधविश्वासो की नींव पर खड़ा किया हुआ है. लगभग सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं के कारण मुनियो के शाप या वरदान ही रखे गए हैं. उदाहरण के लिए दशरथ को पुत्रवियोग (यानी रामवनवास) तपस्वी (यानी श्रवणकुमार) के अंधे पिता के शाप की वजह से हुआ. और तो और राम का जन्म ही शृंगी ऋषि के वरदानस्वरूप हुआ. इसी प्रकार रावण की मृत्यु का कारण भी शाप ही बतलाया गया है. इस के अलावा और भी बेशुमार छोटीबड़ी घटनाएं शाप या वरदान के चमत्कार दिखाने के लिए ही घटाई गई हैं. उदाहरण के लिए अहिल्या का प्रसंग, जटायु का प्रसंग, काकभुशुंडि का प्रसंग आदि

जहांतहां संस्कारो आदि के समय तरहतरह के दानपुण्य का वर्णन कर के तुलसी ने ब्राह्मणों की भिक्षावृत्ति को उन का धार्मिक अधिकार और अन्य वर्णों का कर्तव्य सिद्ध किया है. रामायण में कहा गया है कि पिता का दाहकर्म करने के बाद भरत ने विधिपूर्वक स्नान कर तिलांजलि दी. फिर वेद, स्मृति और पुराण, सब का मत निश्चय कर के उन के अनुसार भरत ने पिता का दशगात्रविधान यानी दस दिनो का कृत्य किया:

एहि बिधि दाहक्रिया सब कीन्ही, बिधिवत न्हाई तिलांजुलि दीन्ही.
सोधि स्मृति सब वेदपुराना, कीन्ह भरत दसगात बिधाना.

इस प्रकार के विधानों के कारण आज हिंदू परिवार कितनेकितने कर्जों के बोझ से लदे जाते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है. पुरोहित और पंडे जैसेजैसे हुक्म चलाते रहते हैं, उन्हें पूरा किए बिना जजमान की जान नहीं छूटती उन

भोलेभाले लोगों के सामने आतक यह रहता है कि जव रघुकुल के महाराजाओं को भी अपने पुरोहितों की मांग और आज्ञाओं का उल्लघन करने का साहस नहीं हुआ था तो, हो न हो, इस मे अवश्य कुछ वात होगी ही. और आज के कथावाचक पंडित भी रामायण की कथा वाचते समय इस प्रकार के प्रसंग पर विशेष समय और श्रम लगा कर व्याख्या करते हैं. "मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ने जहा जैसी आज्ञा दी, वहा भरतजी ने सब वैसा ही हजारो प्रकार से किया शुद्ध हो जाने पर सब दान दिए. गौएं तथा घोडे, हाथी आदि अनेक प्रकार की सवारियां दीं सिंहासन, गहने, कपडे, अन्न, पृथ्वी, धन और मकान भरतजी ने दिए भूखे ब्राह्मण दान पा कर परिपूर्ण हो गए यानी उन की सारी मनोकामनाए अच्छी तरह से पूरी हो गईं." देखिए यह वर्णन:

जह जस मुनिवर आयसु दीन्हा, तह तस सहस भांति सब कीन्हा
भए विसुद्ध दिए सब दाना, धेनु वाजि गज वाहन नाना
सिघासन भूषन वसन, अन्न धरनि धन धाम,
दिए भरत लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम"

और किसी भी वात के औचित्यअनौचित्य पर विचार करने लायक तो तुलसी ने आम आदमी को छोडा ही नहीं क्योंकि 'धर्मगुरुओ, की आज्ञा को न मानने से धर्म के चले जाने का भय दिखाया गया है और सिर पर पाप का भार चढने का आतंक बैठाने का भी सारा प्रबंध 'ब्राह्मणश्रेष्ठ तुलसीदास' कर गए हैं.

उचित कि अनुचित किए विचारू, धरम जाइ सिर पातक भारू

सहज स्वाभाविक ढंग से जो छींक या जमुहाई आती है, उस तक को शकुन-अपशकुन के साथ जोड कर अंधविश्वासो का जो बोझ तुलसी ने हमारे पूर्वजों की पीठ पर लाद दिया था, उसे हम अभी तक ढोए चले जा रहे हैं. उदाहरणार्थ मिलाप के लिए सेना सहित आते हुए भरत को देख कर राम और लक्ष्मण मुकावला करने को तैयार हो जाते हैं, तभी वाई ओर से किसी को छींक आती है:

"एतना कहत छीक भई बाए, कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाए"

(इतना कहते ही वाई तरफ छींक हुई. शकुन विचार करने वालों ने कहा कि खेत सुदर है यानी जीत निश्चित है)

तभी एक वूढे ने शकुन विचार कर राम से कहा, "भरत से मिल लें तो उन से लडाई नहीं होगी. भरत रामजी को मनाने आ रहे हैं. शकुन ऐसा कह रहा है कि विरोध नहीं है." देखिए ये पक्तिया :

वूढ एक कह सगुन विचारी, भरतहि मिलिअ न होइहि रारी.
रामहि भरतु मनावन जाहीं, सगुन कहइ अस विग्रहु नाहीं

इसी प्रकार जमुहाई लेते समय 'रामराम' कहने का उपदेश भी रामचरित-मानस मे ही दिया गया है

रामराम कहि जे जमुहाहीं, तिन्हहि न पाप पुज समुहाहीं

(जो लोग 'रामराम' कह कर जमुहाई लेते हैं, उन के सामने पाप आ ही

नहीं सकते.)

पुरुष के दाहिने और स्त्रियों के बाएं अंग फड़कने को आज तक भी रूढ़िवादी हिंदू शकुन मानते हैं और पुरुष के बाएं या स्त्रियों के दाएं अंग फड़कने को अशुभ समझते हैं. इस के विपरीत सच यह है कि नाड़ियों मे रक्तप्रवाह के कारण ही अंगों में फड़कन होती है, किसी शकुनअपशकुन के साथ इस का कोई संबंध नहीं. मगर क्योंकि तुलसी ने बारबार इसे शकुनोंअपशकुनों मे गिनाया है इसलिए झूठ कैसे हो सकता है! देखिए तुलसी का वर्णन:

मगल सगुन होंहि सब काहू, फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू.

अंधी राजभक्ति की प्रेरणा भी तुलसी की ही देन है. यों तो पूरी रामायण इस का प्रमाण है मगर एक खास नमूना पेश है:

नित पूजत प्रभु पावरी प्रीति न हृदय समाति,
मागिमागि आयसु करत राजकाज बहु भांति.

(भरत नित्य प्रति राम की पादुकाओ का पूजन करते हैं, हृदय मे प्रेम समाता नहीं. पादुकाओं से आज्ञा मांग कर वह सब प्रकार से राजकाज करते हैं.)

जब सिंहासन पर टिकी काठ की खड़ाऊं आज्ञा देदे कर राजकाज चलवा सकती है तो स्पष्ट है कि राजा चाहे जैसा काठ का उल्लू हो वह हुकूमत कर सकता है और उन का नित्य प्रति पूजन करना ही प्रजा का धर्म है, यानी उस की अवमानना का प्रश्न ही नहीं उठता. क्या इस तरह के प्रसंग राजा के प्रति अंधभक्ति को प्रोत्साहित नहीं करते? और क्या तत्कालीन (यानी तुलसी के काल की) परिस्थितियों मे इस प्रकार का प्रचार जनद्रोह नहीं कहा जा सकता? क्योंकि यदि तुलसी सरीखे उपदेशको ने जनता को नपुंसक न बना डाला होता तो कोई कारण नहीं था कि हिंदू प्रजा उन विदेशी राजाओं के खिलाफ बगावत कर के उन्हें देश से बाहर न निकाल डालती!

सुबहसुबह बंदर का मुंह देख लेने से दिन भर भोजन नसीब न होने का जो अंधविश्वास हिंदुओं मे प्रचलित है, उस की पुष्टि तुलसी ने स्वयं हनुमान के मुंह से कराई है:

प्रात लेइ जो नाम हमारा तेहि दिन ताहि न मिले अहारा.

चौथ के चांद को मनहूस माना जाने का उपदेश भी तुलसी से ही प्राप्त हुआ है:

जो आपन चाहे कल्याना, सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना.
सो परनारि लिलार गोसाईं, तजउ चउथि के चंद कि नाईं

(जो मनुष्य अपना कल्याण, सुंदर यश, सुबुद्धि, शुभ गति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह, हे स्वामी, परस्त्री के ललाट को चौथ के चांद की तरह त्याग दे.)

इसी प्रकार पदार्थो के मानवीय रूपों में अंधविश्वास भी तुलसी की ही देन है. राम के क्रोध से घबरा कर समुद्र का भयभीत हो राम के चरण पकड़ना

श्रौर क्षमा मांगना, नदियों श्रौर पहाड़ों को मानवीय पात्रों की तरह दिखाना, पशुपक्षियों का मानवीयकरण श्रादि श्रनेक प्रसंग इस बात के प्रमाणस्वरूप देखे जा सकते हैं. कहीं से भी रामायण खोल लें, एक न एक ऐसा प्रसग मिल ही जाएगा.

चाद के बारे मे जो तरहतरह के श्रंधविश्वास हिंदुश्रों मे पाए जाते हैं, उन का श्राधार भी रामचरितमानस मे ही मिल जाता है. राम ने एक दिन श्रपने साथियों से पूछा कि चंद्रमा मे जो कालापन है, वह क्या है? इस पर सुग्रीव ने कहा कि चाद मे पृथ्वी की छाया दिखाई दे रही है. किसी श्रौर ने कहा कि चाद को राहु ने पीटा था, सो उसी चोट का निशान है. कोई बोला, "जब ब्रह्मा ने रति (कामदेव की पत्नी) का मुख बनाया तो उस ने चद्रमा का सार भाग निकाल लिया था." इन सारी बातों के बाद राम ने खुद जो फतवा दिया वह तुलसी के शब्दों में प्रस्तुत है:

प्रभु कह गरल बधु ससि केरा, श्रति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा
विप सजुत कर निकर पसारी, जगत विरह वंत नरनारी

(प्रभु श्रीराम ने कहा, "विप चंद्रमा का प्यारा भाई है. इसी से उस ने विप को श्रपने हृदय मे स्थान दे रखा है विपयुक्त श्रपने किरण समूह को फैला कर वह वियोगी नरनारियो को जलाता रहता है.)

तो यह था उस 'प्रभु' का ज्ञान श्रपनी तयाकथित सृष्टि के विपय मे! श्रौर इसी प्रकार की श्रवैज्ञानिक श्रौर कपोलकल्पित बातें लिखलिख कर तुलसी जैसे पाखडियों ने जनता को श्रधविश्वास के गर्त मे डाले रखा इस का दुष्परिणाम यह हुश्रा कि हिंदू हर श्रन्याय को चुपचाप सहते चले जाने के श्रादी बनते गए.

हाल मे समाचारपत्रो मे एक खबर छपी थी कि एक पुलिस इंस्पेक्टर ने श्रपने छ:सात साल के लड़के को भगवान की मूर्ति के श्रागे गला घोट कर बलि चढा दिया. छानबीन करने पर पता चला कि किसी ब्राह्मण ने उन्हें ऐसा करने की राय दी थी श्रौर यह विश्वास दिलाया था कि बलि चढाने के कुछ ही घटे बाद बच्चा फिर से जी उठेगा. इस प्रकार की बलियां चढाने की घटनाए श्राज तक भी हिंदुश्रो मे श्राए दिन सुनाई देती रहती हैं. उन का कारण भी हमारे धर्मग्रथो मे बखाना गया बलि का महात्म्य ही है तुलसी ने बलि प्रथा को पुष्ट किया है. रावण ने श्रमर होने का वरदान ही श्रपने सिर की बलि चढाचढ़ा कर पाया था.

मिर सरोज निज करन्हि उतारी, पूजेऊ श्रमित बार त्रिपुरारी

(सिर रूपी कमल को श्रपने हाथो से उतारउतार कर मैं ने श्रगणित बार त्रिपुरारी की पूजा की है)

श्रौर श्राज तक भी जो गोवध श्रादोलन चलाए जाते हैं श्रौर उन के नाम पर लडामरा जाता है या धर्म के नाम पर जराजरा सी बात को ले कर दगे-फसाद हो जाते हैं, उन की तह तले भी तुलसी द्वारा फैलाए हुए श्रधविश्वास

ही हैं. उदाहरणार्थः

हरिहर निंदा सुनइ जो काना, होइ पाप गोघात समाना

इन अंधविश्वासो ने आज भी हिंदू जाति को काहिल और निकम्मा बना कर रखा हुआ है. इसी लिए हिंदू लोग बिना परिश्रम किए ही सब कुछ हासिल कर लेना चाहते है क्योंकि तुलसीदास कह गए हैं:

उपजइ रामचरन बिस्वासा, भव निधि तर नर बिनहिं प्रयासा.

जब ऐसी स्थिति है तो क्या जरूरत है परिश्रम या प्रयास की! राम के चरणों मे विश्वास उत्पन्न कर लेने भर से सारे कार्य सिद्ध हो सकते हैं. इसलिए :

सब भरोस तजि जो भज रामहिं, प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहिं

यही नहीं, तुलसीदास तो यहां तक उपदेश देते हैं कि दुनिया के सारे कामधंधे छोड़ दो, कुछ मत करो और सिर्फ राम का नाम भजो : "राम भजिअ सब काज बिसारी." और फिर अंत मे अपनी किताब के पाठक पैदा करने के लिए भी तुलसी ने वही अंधविश्वास उपजाने का हथकडा अपनाया है कि 'जो मनुष्य इस ग्रंथ की पांचसात चौपाइयो को भी पढ़ लेगा, उस के भी पाच प्रकार की अविद्याओं से उत्पन्न हुए विकारो को रामजी हरण कर लेते हैं.' देखिए निम्न पंक्तियां :

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै,
राहन अविद्या पच जनति विकार श्रीरघुबर हरै

मगर जिन मे रत्ती भर भी तर्कशक्ति है या अक्ल का कोई अंश है, उन के लिए रामचरितमानस अनुपयोगी पुस्तक है क्योंकि अंधविश्वास की महामारी तो केवल वहीं प्रहार कर सकती है जहां अंधभक्ति के कीटाणु हों. इस तथ्य को ध्यान में रख कर ही तुलसी ने अपने पाठको को आग्रह किया है कि 'जिन के हृदय में राम भक्ति नहीं है, उन के सामने इस ग्रंथ को कभी भी नहीं पढ़ना चाहिए' देखिए तुलसी की ये पंक्तियां :

राम भगति जिन्ह के उर नाही, कबहु न तात कहिअ तिन्ह पाही.

साथ ही इस बात की चेतावनी भी दी गई है कि जो लोग ब्राह्मणों की सत्ता अस्वीकार करते हो, उन्हें भी रामकथा कभी नहीं सुनानी चाहिए : "द्विज द्रोहिहिं न सुनाइअ कबहूं."

सिर्फ यही नहीं कि जिन लोगो को साधुसंतों, देवीदेवताओ के पाखंडो में अंधविश्वास न हो, उन्हें यह कथा सुननेसुनाने के अधिकार से वंचित किया गया है, बल्कि तुलसी ने यहां तक उपदेश दिया है कि जो लोग अपवाद करें उन की जीभ काट लो और अगर जीभ न काट सको तो कानो मे उंगलियां दे कर उन के पास से भाग जाओ क्योंकि शास्त्रों मे ऐसी मर्यादा या इजाजत है :

सन संभु श्रीपति अपवादा, सुनिअ जहां तहं असि मरजादा.
काटिअ तासु जीभ जो बसाई, श्रवन मूंदि न त चलिअ पराई

अपवाद और निंदा का भय भी तुलसी को अकारण ही नहीं हो गया था तुलसीदास अच्छी तरह जानते थे कि जैसीजैसी अविश्वसनीय बातें वह लिख रहे हैं, उन्हें पढ़ कर कोई भी समझदार व्यक्ति अपवाद किए बिना नहीं रह सकेगा लेकिन साथ ही वह यह भी जानते थे कि समझ और अक्ल से खारिज कर के लोगों को मूर्ख बनाया जा सकता है इसी लिए चमत्कारपूर्ण बातें और अतिशयोक्तियां जहांतहां भर कर उन्हें दैवी गुणों से जोड़ दिया गया, वरना कौन मान लेता कि 'सत्तासी हजार वर्ष बीत जाने पर अविनाशी शिव ने समाधि खोली' (बीतें संवत सहस सतासी, तजी समाधि सभु अविनासी) तुलसी के अनुसार एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल और फल खाए, फिर सौ वर्ष साग खा कर बिताए. कुछ दिन जल और वायु का भोजन किया और फिर कुछ दिन कठोर उपवास किया. फिर तीन हजार वर्षों तक उन्होंने पेड़ों से गिरे सूखे पत्ते खा कर बिता दिए देखिए निम्न पंक्तियां :

संवत सहस मूल फल खाए, सागु खाइ सत बरष गवाए.
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपवासा.
बेल पाति महि परइ सुखाई, तीन सहस संवत सोई खाई

इसी प्रकार एक राजारानी का प्रसंग आता है. राजा स्वयंभू मनु और उन की रानी शतरूपा जब बहुत बूढ़े हो गए तो राजपाट अपने पुत्र उत्तानपाद को सौंप कर नैमिषारण्य में चले गए. वहां जा कर उन दोनों ने सिर्फ पानी पीपी कर 6,000 वर्ष काट दिए फिर और 7,000 साल तक वे सिर्फ हवा के सहारे जिंदा रहे उस के बाद 10,000 वर्षों तक उन्होंने न पानी पिया, न हवा खाई और दोनों पतिपत्नी 23,000 वर्ष तक एक पैर के बल खड़े रहे.

एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार,
संवत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार.
बरष सहस दस त्यागेउ सोऊ, ठाढे रहे एक पद दोऊ

तुलसी ने रावण को इतना अधिक बलवान बताया है कि उस की मार से राम भी मूर्छित हो गए थे. साथ ही रावण के चलने से धरती तक डोलती बताई गई है. लेकिन आश्चर्य है कि वही रावण शिव धनुष को उठाने तो क्या छूने की भी हिम्मत न कर सके (रावनु बानु महाभट भारे, देखि सरासन गवहिं सिधारे) और दस हजार राजा एक साथ मिल कर भी जिस धनुष को हिला तक न सके (भूप सहस दस एकहि बारा, लगे उठावन टरइ न टारा), उसी धनुष को तुलसी के भगवान रामचंद्र ने इतनी फुरती से उठा कर तोड़ डाला कि उसे उठाते, चढ़ाते और खींचते हुए कोई देख भी न सका[1] (अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा लेत चढ़ावत खैंचत गाढें, काहु न लखा देख सबु ठाढे .. तेहि छन राम मध्य धनु तोरा.)

भालू और बंदर खेल ही खेल में पहाड़ उखाड़उखाड़ कर समुद्र में फेंक देते हैं और भारत से लंका तक के समुद्र पर पुल बन जाता है. और फिर वही धनुष

तोड़ने वाला राम अकेले रावण का मुकाबला नहीं कर सका तथा एक ही बार में एक लाख बाण छोड़ कर भी रावण को नहीं मार सका. (सत्यसंघ छांडे सर लच्छा) राम ने रावण के भाई कुंभकरण का मुंह बाणों से भर डाला तो भी वह गिरा तक नहीं:

"बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ, तदपि महाबल भूमि न परेऊ"

फिर राम ने खास किस्म के 30 बाण मार कर रावण के दसों सिर और बीसो भुजाएं काट डालीं. उस ने एक बार नहीं कई बार भुजाएं और सिर काटे मगर कटते ही वे तुरंत फिर जुड जाते थे:

प्रभु बहु बार बाहु सिर हए,कटत झटिति पुनि नूतन भए

यही नहीं कि जितने सिर कटते हों उतने ही रहते हों, बल्कि जैसेजैसे वह सिर काटते जाते वैसेवैसे सिरों की संख्या अनगिनत होती चली जाती (जमि-जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमितिमि होंहि अपार). फिर रावण ने क्रुद्ध हो कर जो वार किया तो राम मूर्च्छित हो कर गिर पड़े. (पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छांड़ी सक्ति प्रचड .. लागि सक्ति मुरुछा भई ..)

हास्यास्पद बात तो यह है कि राम रावण के सीने पर बाण इस कारण नहीं चलाते कि रावण के दिल में सीता बसी हुई है और जानकी के हृदय मे खुद राम का निवास है: "एहि के हृदय बसि जानकी, जानकी उर मम बास."

जब राम थक कर हताश हो गए और रावण को मार सकने की कोई तर-कीब उन्हे नहीं सूझी तो विभीषण का मुंह ताकने लगे:

मरेइ न रिपु श्रम भयऊ बिसेषा, राम बिभीषन तन तब देखा.

तब फिर विभीषण के निर्देश पर ही रावण की नाभि में बाण चला कर राम उसे मार सके. मतलब यह कि छलपूर्वक पहले तो भाई को भाई से फोड़ा और सिंहासन का लालच दे कर उसे अपने साथ मिला कर लंका के सारे भेद जाने और अत मे जब बलपूर्वक रावण से लोहा न ले सके तब धोखे से उसे मारा सो यहां भी तुलसी ने ऐसी अविश्वसनीय आड़ डाल दी है कि रावण के नाभिकुंड मे अमृत का निवास होने के कारण वह मर नहीं पा रहा था. पहली बात तो यह कि अमृत क्या होता है? और चलो एक मिनट के लिए इसे भी मान लें, तो फिर मनुष्य या किसी भी जीवधारी के शरीर मे अमृत का वास कहां के जीवशास्त्र के अनुसार विश्वसनीय हो सकता है?

रावण के मरने से पहले 'असुभ होन लागे तब नाना, रोवहि खर सृगाल बहु स्वाना बोलहि खग जग आरति हेतू, प्रगट भए नभ जहतह केतू' मतलब यह कि उस समय नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे. बहुत से गधे, स्यार और कुत्ते रोने लगे. अशुभ को सूचित करने के लिए ही पक्षी चीखने लगे आकाश मे जहांतहा पुच्छल तारे प्रकट होने लगे. साथ ही दसों दिशाओं मे आग जल उठी. बिना ही योग के सूर्य ग्रहण लग गया, मूर्तियां रोने लगीं, आकाश से वज्रपात होने लगा, अत्यंत प्रचंड वायु बहने लगी, पृथ्वी हिलने लगी, बादल

खून, बाल और धूल बरसाने लगे इस प्रकार इतने अधिक अमंगल होने लगे कि उन का वर्णन ही नहीं किया जा सकता.

दस दिसि दाह होन अति लागा, भयउ परब बिनु रवि उपरागा
प्रतिमा रुदहिं पविपात नभ, अति बात वह डोलति मही,
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज -अशुभ अति सक को कही

फिर रावण के गिरते ही पृथ्वी हिल गई. समुद्र, नदियां, दिशाओं के हाथी और पर्वत क्षुब्ध हो उठे. रावण के धड के दोनो टुकड़े फैल कर भालुओं और वानरों के समुदायों को रौंदते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े. देखिए निम्न पंक्तियां:

डोली भूमि गिरत दसकंधर, छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर
धरनि परेउ द्वौ खंड बढाई, चापि भालु मर्कट समुदाई

धड के इन दो टुकड़ों का रहस्य यह बताया गया है कि सिर कटने के बाद जब रावण का धड प्रचंड वेग से दौडा तो धरती धंसने लगी तब राम ने बाण मार कर उस के दो टुकड़े कर दिए (धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा, तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा.) और सिरों तथा भुजाओं की स्थिति यह हुई कि राम का बाण उन्हें ले कर रावण की पत्नी मंदोदरी के सामने डाल आया और फिर से राम के तरकस में आ घुसा. यह चमत्कार देख कर देवताओं ने नगाडे बजाए.

मंदोदरि आगें भुज सीसा धरि सर चले जहां जगदीसा
प्रविसे सब निषंग महु जाई, देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई

तभी "रावण का तेज प्रभु (राम) के मुख में समा गया यह देख कर शिवजी और ब्रह्माजी हर्षित हुए ब्रह्मांड भर मे 'जयजय' की ध्वनि भर गई. प्रबल भुजदंड वाले श्री रघुवीर की जय हो! ..देवताओं और मुनियों के समूह फूल बरसाते हैं और कहते हैं, कृपालु की जय हो! मुकुंद की जय हो! जय हो" जरा गौर कीजिए इस वर्णन पर .

तासु तेज सामान प्रभु आनन, हरषे देखि संभु चतुरानन
जयजय धुनि पूरी ब्रह्मांडा, जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा
बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा, जय कृपाल जय जयति मुकुंदा

इसी प्रकार की फूहड अभिव्यक्ति के प्रति अंधविश्वासस्वरूप यदि आज हिंदुओं के घरों में भजनकीर्तन सुनते समय इस तरह के वाक्य सुनाई देते हैं तो आश्चर्य क्यों हो! 'लाल लंगोटा, चुत्तड़ मोटा, जय बजरंग बली!' क्या इसी किस्म की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के आधार पर हम अपने धर्म और सभ्यता पर फूले नहीं समाते?

खैर, तो तुलसी के मानस की समीक्षा करते समय एक और प्रसंग ध्यान खींचता है. वह यह कि जहां तुलसी ने वाल्मीकि रामायण के धोबी वाले प्रसंग और सीता के त्यागे जाने आदि के बारे में बातें टाल दी हैं, वहीं विकल्पस्वरूप कथानक में जो परिवर्तन किया गया है वह एकदम अविश्वसनीय हो गया है इस प्रकार रामचरितमानस द्वारा फैलाए गए अंधविश्वासों की शृंखला में एक

महत्त्वपूर्ण कडी के रूप मे वह घटना गिनाई जा सकती है जब वनवास के दौरान एक दिन राम ने सीता से कहा, "हे प्रिये! हे सुंदर पातिव्रत धर्म का पालन करने वाली सुशीले! सुनो, अब मैं कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूंगा इसलिए जब तक मै राक्षसो का नाश करूं तब तक तुम अग्नि मे निवास करो. विश्वास न हो तो तुलसी के निम्न पक्तियां पढ़ जाइए:

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला, मैं कछु करब ललित नर लीला.
तुम्ह पावक महु करहु निवासा, जौ लगि करौ निसाचर नासा

और फिर हुआ यह कि राम ने ज्यो ही सब समझा कर कहा, त्यो ही सीताजी प्रभु के चरणो को हृदय में धर कर अग्नि मे समा गई. और सीता ने अपनी ही छाया वहां रख दी, जो उसी जैसी शील और रूप वाली थी:

जबहि राम सब कहा बखानी, प्रभु पद धरि हिय अनल समानी.
निज प्रतिबिंब राखि तह सीता, तैसइ सील रूप सुबिनीता.

इस बात से दो बातें स्पष्ट होती हैं. एक तो यह कि उक्त घटना के बाद से राम को मनुष्यो की तरह आचरण करता दिखाया जाना चाहिए था जिस मे कि कवि सफल नहीं हो सका (हालांकि कवि यह मानता भी है कि 'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा' यानी जैसा स्वांग भरा जाए वैसा नाचना भी चाहिए. मतलब यह कि यदि मनुष्य का रूप धरा है तो मनुष्योचित व्यवहार करना चाहिए) और दूसरी बात यह कि सीता तो रावण द्वारा हरण होने से पहले ही आग मे जलवा दी गई थी, फिर रावण क्या उस की छाया को हर ले गया था? और अगर वह छाया ही थी तो फिर उस के खो जाने पर राम जंगलजगल भटकते क्यो फिरे? राम ने रावण पर हमला किस के लिए किया? युद्ध क्यो हुआ? फिर वह कौन थी जो अशोक वाटिका मे दिखाई गई है? वह कौन थी जिसे युद्ध के बाद राम के सामने लाया गया और राम ने जिसे देख कर कड़े वचन कहे, जिन्हें सुन कर सब राक्षसिया विषाद करने लगी थीं? (तेहि कारन करुना-निधि कहे कछुक दुर्बाद, सुनत जातुधानी सबं लागीं करन विषाद.) और फिर दूसरी बार जो लंका मे चिता पर बैठाई गई थी वह औरत कौन थी? (श्रीखंड सम पावक प्रवेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली...).

अगर वह छाया थी तो क्या छाया भी कोई पदार्थ है जो आग मे जल सकता है? अगर वह सीता थी तो दोदो बार आग मे जल कर बच कैसे गई? क्या यही मनुष्य लीला है? या कोई ऐयारीतिलस्मी उपन्यास की घटना?

राम की मनुष्य लीला यानी तिलस्म के करिश्मे पूरे 'मानस' मे भरे पड़े हैं. यहा तक कि लंका के रणक्षेत्र में इंद्र ने अपना रथ और सारथि तक को राम के लिए भेज दिया रावणवध के बाद वहां ब्रह्माजी, इंद्र आदि तो स्वयं जा भी पहुचे. और तो और वर्षों पहले मर चुके राजा दशरथ भी लंका मे आ गए और पुत्र को देख कर उन के नेत्रों मे आंसू आ गए:

तेहि अवसर दशरथ तहं आए, तनय बिलोकि नयन जल छाए.

इतना ही नहीं, फिर राम और लक्ष्मण पिता के चरण छूते हैं और काफी लंबी वातचीत तक होती दिखाई गई है.

मगर बात तो यह है कि 'चरित राम के सगुन भवानी, तर्कि न जाहि बुद्धि बल बानी.' मतलब यह कि राम के बारे मे बुद्धि और वाणी के बल से तर्क तो किया ही नहीं जा सकता. इसलिए तुलसी अगर कहते हैं तो बुद्धि और तर्क को ताक पर रख कर यह भी मानना ही पड़ेगा कि रामराज्य मे सुदर बाजार और दुकानें तो सजी हुई थीं मगर उन दुकानो पर चीज मुफ्त मिलती थीः 'बाजार रुचिर न बनइ बरनत वस्तु बिनु गाथ पाइए.' प्रश्न यह है कि ये चीजें आती कहां से थीं? इन के तैयार करने में जो दाम लगता था उस का भुगतान कहा से होता था? या ये सब चीजें बिना मजदूरी दिए तैयार की जाती थीं? यदि राज्य की ओर से मुफ्त सप्लाई की जाती थीं तो पैसा कहां से आता था?

और न ही इस बात पर कोई शक किया जा सकता है कि राम के राज्य मे न कोई अपराधी था, न किसी को दंड दिया जाता था, न किसी से कोई भेद-भाव बरता जाता था.

दड जतिह कर भद जह नर्तक नृत्य समाज,
जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचद्र के राज

कारण यह कि वहां के सभी नरनारी उदार और परोपकारी थे और एक-मात्र कारण यही था कि वे थोडा ब्राह्मणों के चरणों की सेवा किया करते थेः

सब उदार सब पर उपकारी, विप्र चरन सेवक नरनारी

हिंदुओ की गोब्राह्मण प्रधान संस्कृति के आधारस्तभो मे तुलसीदास की गणना की जाती है इस मे कोई अतिशयोक्ति भी नहीं है. तुलसी वास्तव मे इस उपाधि के अधिकारी हैं उन्होंने अपनी जाति के हित के लिए जो कुछ किया और कहा वह और किसी के वस का नहीं हो सकता.

तुलसी का कथन है, "तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान रहते हैं उन के क्रोध से रक्षा करने वाला कोई नहीं है हे नरपति! यदि तुम ब्राह्मणो को वश मे कर लो तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी तुम्हारे अधीन हो जाएंगे." राजाओ को दिया गया तुलसी का यह उपदेश उन्हीं की भाषा मे इस प्रकार हैः

तपबल विप्र सदा बरिआरा, तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा
जौं विप्रन्ह बस करहु नरेसा, तौ तुअ बस बिधि विष्नु महेसा

तुलसी के जीवनकाल मे तो अकबर का राज था, लिहाजा मुसलमान होने की वजह से वह ब्राह्मणो को महत्त्व कैसे दे सकता था! इस के बाद बहादुर-शाह तक भी उसी के वशज मुगल सम्राट भारत पर राज्य करते रहे. फिर आ गए अंगरेज. सो उन की हुकूमत मे भी तुलसी की यह नसीहत किसी ने न सुनी. मगर अफसोस तो इस बात का है कि सन १९४७ मे भारत के इतिहास मे पहली बार जब ऐसा सुयोग आया कि एक ब्राह्मण के हाथ मे भारतवर्ष की राजनीतिक

बागडोर आई तब भी तुलसी की सम्मति पर ध्यान नहीं दिया गया और उक्त चौपाई को राष्ट्रगीत बनाने की बजाए उलटे भारत को ही धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित कर डाला गया!

ब्राह्मणों की महिमा का पूरापूरा ज्ञान शायद आप को न हो इसलिए हम महाकवि तुलसीदासजी के रामचरितमानस के प्रमाणों द्वारा आप को विप्र महात्म्य बताते हैं. पहले केवल कुछ सूक्त वाक्य सुन कर अपना जीवन सफल कर लें. हम अपनी बातें बाद मे कह लेंगे. तो, लीजिए, सुनिए :

सत्य नाथ पद गहि नृप भाषा, द्विज गुरू कोप कहहु को राखा.
राखइ गुरू जौं कोप विधाता, गुरू विरोध नहिं कोउ जग त्राता.

(राजा ने ब्राह्मण के चरण पकड़ कर कहा, "हे, स्वामी, सत्य ही है कि ब्राह्मण·गुरु के क्रोध से कहिए कौन रक्षा कर सकता है? यदि ब्रह्मा भी क्रोध करें तो ब्राह्मण बचा लेता है पर ब्राह्मण से विरोध करने पर जगत मे कोई भी तो बचाने वाला नहीं है!")

किए अन्यथा होई नहिं विप्र शाप अति घोर.

(ब्राह्मणों का शाप बहुत ही भयानक होता है, यह किसी तरह भी टाले नहीं टलता.)

रावण जैसे राजा भी 'यद्यपि पुलस्त्य ऋषि के पवित्र, निर्मल और अनुपम कुल मे उत्पन्न हुए, तथापि ब्राह्मणों के शाप के कारण पाप रूप हुए.' तुलसी की निम्न पंक्तिया देखिए :

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप,
तदपि महीसुरशापवस भए सकल अघरूप.

राम ने भी केवल ब्राह्मणों को निर्भय करने के लिए ही राक्षसो को मारा. (मारि असुर द्विज निर्भयकारी.)

लक्ष्मण को परशुराम से·अपमानित हो कर अपना क्रोध पी जाना पड़ा था और वह यह कहे बिना नहीं रह सका था :

भृगुकुल समुझि जनेउ विलोकी, जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई, हमरे कुल इन्ह पर न सुराई
बधे पाप अपकीरति हारे, मारतहू पा परिअ तुम्हारे

(क्योकि आप भृगुवंशी हैं और आप ने जनेऊ पहन रखा है, इसलिए मैं क्रोध नहीं कर सकता. देवता, ब्राह्मण और भगवान के भक्त तथा गऊ पर वीरता नहीं दिखाई जा सकती. क्योंकि इन्हें मारने से पाप लगता है और इन से हार जाने पर अपकीर्ति होती है, इसलिए आप मारें तो भी आप के पैर ही पड़ना चाहिए.)

कवध नामक राक्षस के मुंह से उस के शाप की कथा सुन कर राम ने कहा, "मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही." (ब्राह्मणकुल से द्रोह करने वाला मुझे नहीं सुहाता) और सिर्फ इतना ही कह देना राम को पर्याप्त नहीं लगा तो वह कहने लगे :

मन क्रम वचन कपटतजि जो कर भूसुर सेव,
मोहि समेत विरंचि सिव बस ताके सब देव

(मन, वचन और कर्म से कपट छोड कर जो व्यक्ति भूदेव ब्राह्मण की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि देवता उस के वश मे हो जाते हैं)

और फिर शायद राम को यह लगा कि वात कहीं अभी भी अस्पष्ट न रह गई हो. मतलब यह कि ब्राह्मण से अभिप्राय कहीं ज्ञानवान और गुणी व्यक्ति से ही न समझ लिया जाए, इसलिए तुरत वात खोल कर कह देते हैं, "ब्राह्मण चाहे शाप दे, चाहे मार डाले, चाहे गालिया दे, वह फिर भी पूजनीय ही है. और चाहे वह शीलरहित भी क्यो न हो, चाहे उस मे कोई भी गुण न हो, चाहे वह एकदम ज्ञानरहित यानी अज्ञानी हो, फिर भी अगर वह ब्राह्मण है तो केवल इसी कारण पूजनीय है. शूद्र चाहे गुणगणो से युक्त और ज्ञान मे निपुण हो, फिर भी पूजनीय नहीं है." शायद आप को यह लगे कि तुलसी जैसा महाकवि राम के मुह से ऐसी वात कभी नहीं कहला सकता और हम ने जो यह व्याख्या की है वह मनगढंत है, इसलिए हम मानस की चौपाई पूरे संदर्भ सहित नीचे उद्धृत कर रहे हैं :

सापत ताडत परुष कहता, विप्र पूज्य अस गावहिं संता
पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना

(संदर्भ : रामचरितमानस, पृष्ठ 638. अरण्यकाड, गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित चौदहवा सस्करण)

तो यह है 'मर्यादापुरुषोत्तम' राम के विचार जिन्हें अंधविश्वासी हिंदू भक्तिभाव से पढते हैं और पढपढ कर झूमते हैं! इन्हीं मानवविरोधी और अमानवीय विचारो का जहर फैलाने के लिए लाउडस्पीकर लगा कर अखड पाठ करवाए जाते हैं व धर्मनिरपेक्ष पड़ोसियो की रातों की नींद हराम की जाती है. यहा हम इस वात को खास तौर पर उठाना चाहते हैं और आग्रहपूर्वक भारत की धर्मनिरपेक्ष सरकार से यह पूछना चाहते हैं कि सविधान की धर्मनिरपेक्षता वाली धारा रामचरितमानस पर लागू क्यो नहीं की जाती? क्या शासक वर्ग को मालूम नहीं कि इस सव से भारतीय सविधान की जड (मानवमानव के बीच जाति, धर्म, रग आदि के आधार पर भेद न मानना और समान अधिकार वाले आधारभूत सिद्धात) पर प्रहार हो रहा है? फिर इस पर कोई कारवाई क्यो नहीं की जा रही?

तुलसी के विचार केवल भारतीय सविधान को ही चुनौती नहीं देते वल्कि मानवीय अधिकारो के अंतर्राष्ट्रीय विधान को भी नकारते हैं और यही नहीं कि ये विचार सिर्फ जनविरोधी हैं, वल्कि उतने ही घातक पूजीवाद के लिए भी हैं कारण यह कि ब्राह्मणवाद तो सामंतवाद का ही सास्कृतिक रूप है, और कुछ नहीं. आज भी जो लोग इस प्रकार के विचारों वाले ग्रथो का प्रचारप्रसार कर रहे हैं, वे वही हैं जो इतिहास का रुख मोड़ कर उसे पीछे की ओर ले जाना

चाहते हैं. ब्राह्मणवाद रामराज्य के रूप में एक आदर्श सामंतवादी कल्पना में उलझा कर मानवीय प्रगति और विकास के सारे रास्ते बंद करने का एक षड्-यंत्रकारी नारा है

इस नारे का विरोध भी आज कोई नया नहीं शुरू हुआ, बल्कि 2,500 वर्ष पूर्व गौतम बुद्ध ने भी इसी ब्राह्मणवाद या पुरोहितवाद को चुनौती दी थी और वेदशास्त्रों की सत्ता को मानने से साफ इनकार कर दिया था. मगर वह चुनौती इसलिए उपयोगी सिद्ध न हो सकी क्योंकि बुद्धमत क्षत्रिय पुरोहितवाद का रूप ले बैठा दो मोर्चों पर एक साथ लड़ने के कारण वह निष्फल हुआ. एक मोर्चे पर तो उसे ब्राह्मण उच्चवर्ग के मुकाबले मे क्षत्रिय उच्चवर्ग के हितों के लिए लड़ना पड़ा और दूसरी तरफ शूद्रों यानी दासों के विद्रोह शांत करने पड़े. ये दोनों मोर्चे परस्पर विरोधी थे. इसी अंतर्विरोध ने बुद्धमत को लंबी उमर तक नहीं जाने दिया.

ऐतिहासिक विश्लेषण करते समय बुद्ध धर्म के बाद जैन धर्म पर निगाह पड़ती है. जैन धर्म का जन्म भी उसी संक्रांति काल में हुआ था और वह वैश्यों का धर्म था. वैश्य भारतीय समाज का तीसरा उच्च वर्ग मान जाता था वैश्यों को क्योंकि व्यापार के लिए शांति चाहिए थी इसी लिए जैनियों ने अहिंसा पर बौद्धो से भी अधिक जोर दिया. राजा चाहे कोई हो, जैनियो को तो व्यापार के लिए सुविधा से मतलब था.

यही कारण है कि जैन धर्म ने राजाश्रय चाहे कभी नहीं लिया मगर साथ ही यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जैनियों ने वक्त की हर हुकूमत के साथ हमेशा समझौता किया हिंदू राजा थे तो ये उन के भक्त रहे, मुसलमान बादशाह आए तो इन्होंने उन के आगे सिर झुका दिया, अंगरेज हाकिम हुए तो राजभक्ति का तबादला लंदन मे हो गया और फिर कांग्रेस के हाथ मे सत्ता आई तो जैनियों ने गांधी टोपियां पहननी शुरू कर दीं इसी लिए जैन धर्म इतिहास को गति को प्रभावित करने में कोई भी भूमिका अदा नहीं कर सका.

बुद्ध धर्म अपने उभार के 20 वरस बाद ही समाज के ऊंचे वर्णों के हाथों में खेलने लगा. इस प्रकार वह प्रतिक्रिया की लपेट मे आ गया इसी कारण वह अपने मुख्य लक्ष्य पूरे न कर सका. न तो वह दासप्रथा ही तोड सका, न ही गणराज्यो को टूटने से बचा पाया. दासप्रथा जब टूटी तो बुद्ध धर्म के खंडहरो पर टूटी और नंद ने शूद्र राज्य स्थापित किया.

लेकिन ब्राह्मणों की सहायता से क्षत्रिय सामतवाद की नींव डालने की ऐति-हासिक भूमिका निबाही चंद्रगुप्त ने

अशोक द्वारा कलिंग विजय प्राप्त करने के बाद बुद्ध धर्म को जो राज्याश्रय प्राप्त हुआ वह तो सिर्फ ऐतिहासिक परिस्थितियो से पैदा हुई मजबूरी के कारण था, न कि बुद्ध धर्म मे राजा की आस्था के कारण संक्षेप मे स्थिति यह थी कि अशोक के सामने कलिंग विजय के बाद राज्य विस्तार की कोई और खास

गुंजाइश भी नहीं रही थी और साथ ही अशोक के सामने मजबूरी यह भी आ चुकी थी कि श्रेष्ठियो ने युद्ध के लिए धन देना बंद कर दिया था तीसरी मजबूरी यह थी कि इतने बड़े साम्राज्य को सिर्फ तलवार के बल पर कायम नहीं रखा जा सकता था और उस काम के लिए जनता को भावनात्मक स्तर पर काबू मे रखना एक कूटनीतिक अनिवार्यता थी इस के लिए यह जरूरी था कि अहिंसा का प्रचार किया जाता. लेकिन अपनी हिंसक हरकतों के लिए मशहूर हो चुके राजा के लिए अहिंसा का प्रचार राजनीतिक दृष्टि से खतरे से खाली नहीं था. इसलिए सहसा 'हृदय परिवर्तन' हो जाना घोषित कर के यह प्रचारित करा दिया गया कि सम्राट अशोक को बुद्ध धर्म से वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो चुका है. इस तरह बुद्ध धर्म अशोक को राजनीतिक संकट से उबार कर राजधर्म बन जाने का इनाम पा गया.

निहित स्वार्थवश क्षत्रिय पुरोहितवाद और ब्राह्मण पुरोहितवाद के बीच हो चुका मुकम्मिल समझौता भी अंत मे खुल कर सामने आया. यह भी एक ऐतिहासिक सचाई है जिसे झुठलाया नहीं जा सकता. क्या बुद्ध धर्म का हीनयान संप्रदाय ब्राह्मण धर्म का ही दूसरा चेहरा नहीं था?

और इस ऐतिहासिक सचाई से भी कौन इनकार कर सकता है कि बुद्ध धर्म जिस ब्राह्मण धर्म मे निकला था, आहिस्ताआहिस्ता उसी मे फिर गर्क हो गया. ब्राह्मण धर्म के पीछे निहित स्वार्थों की शक्ति का एक बहुत बड़ा गुट इस बीच फिर से पूरी ताकत के साथ संगठित हो चुका था. विदेशी आक्रमणकारी जातियों —शक, हूण, कुषाण, आभीर, यवन आदि—के साथ भी हर संभव समझौता कर के ब्राह्मण धर्म ने अपनी सत्ता बनाए रखी इन आक्रमणकारियो मे से जो अधिक खतरनाक साबित हो सकते थे, उन्हें क्षत्रित्व प्रदान कर के ब्राह्मण वर्ग ने उन की पुरोहिताई कबूल कर ली और इस प्रकार अपने पुरोहितवाद की शक्ति और अधिक मजबूत बना ली हूणो और गौडो को क्षत्रिय घोषित करने के पीछे ब्राह्मण धर्म की केवल यही चाल थी नीची जातियो के विद्रोह शांत करने के लिए उन दिनो दोतरफा चालें चली गईं

एक चाल यह थी कि उन की अलग बिरादरिया और अलगअलग पंचायतें स्थापित करवा कर उन मे परस्पर फूट डलवानी शुरू कर दी गई ताकि वे आपस मे ही उलझे रहें और ब्राह्मणो के खिलाफ विद्रोह करने के लिए एकजुट हो ही न सकें. दूसरी चाल ज्यादा गहरी थी और भविष्य को ध्यान मे रख कर चली गई थी चाल यह थी किबहुत बड़े पैमाने पर ब्राह्मण पुरोहितवाद का प्रचार करने के लिए पुस्तकें लिखवाई गईं और उन पुस्तकों को पुराण साहित्य के नाम से प्रसारितप्रचारित किया गया देश के कोनेकोने मे इस प्रचार के गढ, मठ, मंदिर आदि खोले गए क्योंकि प्रेस द्वारा पुस्तकें छपवा कर वितरित करने की आज जैसी सुविधा तो तब उपलब्ध थी नहीं. दूसरी बात यह है कि अधिकांश जनता अशिक्षित थी, खुद पढ़ भी नहीं सकती थी, इसलिए कथावाचकों,

धर्म प्रचारकों और साधुसंतों के माध्यम से ही यह प्रोपेगेंडा सफलतापूर्वक और अधिक प्रभावशाली ढंग से कराया जा सकता था.

अब यहां प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि आखिर वह कौन सी छिपी हुई शक्ति थी जो यह सब करवा रही थी? वे कौन लोग थे जो ब्राह्मण पुरोहितवाद को फैला रहे थे? केवल ब्राह्मण जाति के किए ही तो यह सब हो नहीं सकता था. क्योंकि ब्राह्मण के पास न तो धन था, न राजनीतिक सत्ता और फिर यदि ब्राह्मण सिर्फ अपनी जाति को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने वाले होते और केवल ब्राह्मणो के हितों को ही ध्यान मे रख कर खुद अपने तौर पर ही प्रचार करते तो राजनीतिक सत्ताधारी क्षत्रिय और सामंत उन्हें चींटियो की तरह कुचल कर रख सकते थे.

स्पष्ट है कि सारा का सारा पौराणिक साहित्य लिखा नहीं गया बल्कि लिखवाया गया था. यह साहित्य अपनेआप प्रचारित भी नहीं हुआ, बल्कि प्रचारित करवाया गया था. क्यों? इसलिए कि राजाओं और सामंतों के स्वार्थ इसी में निहित थे कि जनता को धोखे मे रखा जाए, सत्य पर अधिक से अधिक परदे डाले जाएं और ज्ञान के नाम पर अज्ञान का अंधाधुंध प्रचार किया जाए. कहना न होगा कि यह सब तभी हो सकता था जब कि धार्मिक मान्यताओं को रूढ बनाया जाता, ईश्वर का भय बढ़ाया जाता, राजाओ के दैवीय अधिकारों के प्रति जनता को आस्थावान बनाया जाता, सामंती जुल्मों को सहते चले जाने के लिए लोगों में तथाकथित किस्मत या भाग्य के प्रति विश्वास मजबूत किया जाता, और सब से बड़ी बात यह है कि यह सब खुद न कह कर दूसरी जाति के लोगों के मुंह से कहलवाया जाता और उन्हीं की कलम से लिखवा कर उन्हीं के द्वारा प्रचारित करवाया जाता.

इस प्रकार पुराणो को सांमती साजिश के दस्तावेज कहा जा सकता है. और यह साजिश केवल भारत मे ही नहीं, बल्कि किसी न किसी कालावधि में विश्व के हर देश में हुई है. ऐतिहासिक विश्लेषण करते समय इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि कालांतर मे संसार मे पूंजीवाद ने उभर कर सब से पहली चोट इसी साजिश पर की और मानवविकास की एक ऐतिहासिक कड़ी के रूप मे नए युग का सूत्रपात किया सामंतवाद की गलाजत से मनुष्य जाति को छुटकारा दिलाने का ऐतिहासिक श्रेय पूंजीवाद को दिया गया है. इतिहास का हर पाठक यही मानेगा. पूंजीवाद कोई ऐसी व्यवस्था नहीं थी जो किन्हीं शैतानों द्वारा संसार पर थोप दी गई, बल्कि ऐतिहासिक विकास के एक अनिवार्य युग के रूप में इसे स्वीकार किया गया.

यदि पूंजीवाद न आया होता तो आज भी तुलसी की तरह यही माना जाता कि भगवान ने ही राजा को भेजा है, लिहाजा उस की आलोचना करने या उसे बदल सकने का सवाल ही पैदा नहीं होता. साथ ही लोग आज भी यही मानते हैं कि जो कुछ राम ने रच रखा है, वही होगा, तर्क करने से कुछ लाभ नहीं.

पूंजीवाद का उदय न होता तो आज भी हम सामंतों के दास बने उन के हुक्के-चिलम भर रहे होते और दिन भर की शरीर तोड़ देने वाली बेगार करने के बाद हमें शाम को यह उपदेश सुनने को मिलता.

राम कीन्ह चाहहिं सोई होई, करै अन्यथा अस नहिं कोई.

(राम जो करना चाहते हैं वही होता है. ऐसा कोई नहीं जो अन्यथा कर सके)

'जीव करम बस सुखदुख भागी.' मतलब यह कि जीव जो भी सुखदुख भोगता है वह तो उस के कर्मों का फल है पिछले जन्म मे बुरे कर्म किए थे तभी अब शूद्र के घर पैदा हुए. गरीब हैं तो भी अपने कर्मो के फल भोग रहे हैं. परिश्रम कर के ही क्या होगा! बीमार हैं तो दवादारू क्यो की जाए! तुलसी ने साफ तो कहा है, "श्री रघुनाथजी की भक्ति संजीवनी जडी है. श्रद्धा मे पूर्ण बुद्धि ही अनुपान यानी दवा के साथ लिया जाने वाला शहद है. यदि इस प्रकार का संयोग हो जाए तो रोग भले ही दूर हो जाए, नहीं तो करोड़ों जतन कर लो, रोग जा ही नहीं सकते." देखिए निम्न पंक्तिया :

रघुपति भगति सजीवन मूरी, अनूपात श्रद्धा मति पूरी
एहि विधि भलहिं सो रोग नसाही, नाहिं त जतन कोटि नहिं जाही

अधिकांश अंधविश्वासी बूढ़ेबुढ़ियां बीमारी मे इलाज कराने से आनाकानी करते मिलते हैं. डाक्टरी इलाज मे उन का विश्वास न होने के पीछे भी प्रकारातर से तुलसी ही कारण हैं जिसे उद्धरित करते हुए ऐसे रूढ़िवादी लोग बडी ज्ञान बघारती मुद्रा मे कह उठते हैं, "राम कृपा नासहिं सब रोगा.' इन लोगों के साथ अगर तर्क करो तो ये उल्टे आप ही के अज्ञान पर तरस खाते हुए समझाने लगेंगे, "सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा." (जो कुछ भी दैव सहावे, वह सब सहना ही पडता है.) और "प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई" (प्रभु की आज्ञा का उल्लघन हो ही नहीं सकता, ऐसा तो वेद भी कहते हैं'

लोगबाग बडी से बड़ी बेवकूफी कर जाएगे और उस की वजह से चाहे जितनी हानि उठानी पड़ी हो, मगर अपनी भूल स्वीकार कर भविष्य मे सुधार कर लेने की बजाए बहुधा यही सोच कर टाल जाते हैं कि 'अब ईस अधीन जगु काहु न देइअ दोषु' (जगत तो ईश्वर के अधीन है इसलिए किसी बात के लिए किसी को भी दोष नहीं देना चाहिए.) या फिर यह कि 'मेटि जाइ नहिं राम रजाई' (राम की आज्ञा मिटाई नहीं जा सकती)

बडी से बडी दुर्घटना घट जाएगी मगर,उस की सहीसही जाच करने और कारण जान कर कोई काररवाई करने के स्थान पर तुलसी जैसे अंधविश्वासी भक्त के मन मे यह दोहा कौंध जाएगा

तुलसी जसि भवतव्यता तैसी मिलाई सहाइ,
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहा लै जाइ

(तुलसीदास जी कहते हैं,"जैसी होनहार होती है, वैसी ही सहायता मिल

जाती है. या तो वह आप के पास आती है या आप को वहां ले जाती है")

इस प्रकार के निर्यातवादी उपदेशों को अपनीअपनी सुविधा के अनुसार और हालात के मुताबिक लोगवाग फिट कर लेते हैं और अपने को कर्मण्यता तथा मेहनत करने से साफ बरी कर ले जाते हैं. 'भगवान जब देता है तो छप्पर फाड़ कर देता है' जैसी जनउक्तियां भी तुलसी के इसी नियतिवाद की ही देन हैं. लोगों को निकम्मा तथा काहिल बनाने में नियतिवाद की यह घातक भूमिका किसी भी विचारशील व्यक्ति से छिपी नहीं रही

थोड़ी देर पहले हम जिस सामंती साजिश का जिक्र कर रहे थे, उसी संदर्भ को फिर से उठा कर एक बात और स्पष्ट करना चाहते हैं कि जनता के दिमाग को बौना बनाने के लिए मध्ययुग में व्यापक प्रचार के जो अड्डे स्थापित किए गए थे, उन्हें प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए प्रचार साहित्य यानी पुराणों मे उन अड्डों का बारबार उल्लेख कराया गया और उन्हें तीर्थस्थानों की संज्ञा दी गई. चाहे जो पुराण उठा कर देख लें, इन तीर्थों की महिमा का बखान अवश्य मिलेगा. मगर तुलसी ने प्रचार के इन अड्डों की महत्ता प्रतिपादित करने में सब प्रचारकों से बढ़चढ़ कर योग दिया. मानस में इन शब्दों पर तो जरा गौर कीजिए :

आकर चारि जीव जग अहही, कासी मरत परम पद लहही

(संसार मे चार वर्णों के जीव हैं. काशी मे मरने से सभी परम गति को प्राप्त होते हैं)

इस दोहे मे तुलसी ने एक तीर से दोदो शिकार किए हैं. एक तो यह सिद्ध करना चाहा कि यह वर्णव्यवस्था केवल भारत में या हिंदुओं में ही नहीं वल्कि पूरे संसार में है, दूसरे यह कि परम गति के लालच में सभी लोग काशी के प्रचार अड्डे की तरफ भागेंगे जहां उन्हें सभी तरह से मूंडा जा सकेगा—धन से भी, बुद्धि से भी.

फिर यही काशीमहात्म्य शिव के मुंह से भी वर्णित कराया गया है. पार्वती से शिवजी कहते हैं, "हे, पार्वती, राम के नामवल से काशी मे मरते हुए प्राणी को देख कर उसे मैं शोक रहित कर देता हूं." (काशी मरत जंतु अवलोकी, जासु नाम वल करउं विसोकी.) इस मे शिवजी रामचंद्र की महिमा गाते भी जो दिखाए गए हैं, इस संदर्भ में खास वात गौर करने की यह है कि सभी देवताओं को एकदूसरे की तारीफ करते दिखाने की टंकनिक पूरे पौराणिक ग्रंथों मे अपनाई गई है. इस से एक तो वहुदेववाद को वढावा देने मे मदद मिली, दूसरे यह कि अपने मुंह अपनी तारीफ करने की हास्यास्पद स्थिति उत्पन्न होने से यथासंभव वचा ली गई ठीक उसी चाल का यह रूपांतरण है जिस के द्वारा क्षत्रिय सामंतों ने अपनी महिमा खुद न गा कर ब्राह्मणों द्वारा अपना प्रचार कराया और ब्राह्मणों ने भी यथासभव अपनी तारीफ अपने ग्रंथों के क्षत्रिय पात्रों द्वारा ही कराई है. फिर इन ग्रंथों को भी स्वरचित न कह कर दैवीय ग्रंथ घोषित

करने के पीछे भी उन का यही प्रचार हथकंडा था

रामचद्र, गणेशजी और शिवजी का नाम जप कर तथा गगाजी को सिर नवा कर ही आगे बढते दिखाए गए हैं . "तब गनपति सिव सुमरि प्रभु नाई सुरसरिहि माथ."

एकएक तीर्थ की महिमा बखानने मे कईकई पन्ने रगे गए हैं अयोध्याकाड मे गगा नदी और प्रयाग तीर्थ की तारीफ मे दरजनो चौपाइया और दोहे लिखे गए हैं प्रयाग को तीर्थराज और गगा को नदियो की रानी साबित किया गया है

वन को जाते समय जिस जगह से राम ने गंगा पार की थी, उस जगह पर भरत द्वारा प्रणाम करवा कर उसे भी 'रामघाट' नामक तीर्थ घोषित कर दिया : "राम घाट कह कीन्ह प्रनामू."

राम से मिलते जाते समय भरत जो तीर्थजल ले कर गए थे, उसे उन्होंने एक पहाड के समीप जिस कुए मे डाला था, उसे 'भरतकूप' कह कर पावन तीर्थ की सज्ञा देते हुए तुलसी कहते हैं :

भरत कूप अब कहहि लोगा, अति पावन तीरथ जल जोगा

लका पर चढाई करने जाते समय राम द्वारा 'रामेश्वरम्' नामक स्थान पर शिवलिंग की स्थापना करा के उसे भी तीर्थ बनवा डाला और खुद राम के मुंह से उस की महत्ता बखान करा दी :

जे रामेस्वर दरसनु करिहहि, ते तनु तजि मम लोक सिधारिहि
जो गगाजल आनि चढाइहि, सो सासुज्य मुक्ति नर पाइहि

(जो मनुष्य रामेश्वरजी का दर्शन करने आएगे, वे शरीर छोडने के बाद स्वर्गलोक को जाएगे और जो गंगाजल ला कर इस पर चढ़ाएगे, वे मनुष्य तो बस मुक्त ही हो जाएगे)

साथ ही राम द्वारा शिव की तारीफ और जनता को चेतावनी दिलवाने का मौका भी हाथ से नहीं जाने दिया कि जो ऐसा नहीं करेगा वह घोर नरक मे जाएगा .

सकर प्रिय ममद्रोही सिवद्रोही मम दास,
ते नर करहि कलप भरि घोर नरक महु वास

(जिन को शकर प्रिय हैं पर जो मेरे द्रोही हैं, और या जो शिव के द्रोही हो कर मेरे दास बनना चाहते हैं, वे मनुष्य कल्प भर घोर नरक मे निवास करेंगे.)

इस धमकी के माध्यम से रामेश्वरम् मे गंगाजल ले जाने की बात पर जो बल दिया गया है, सो भी अकारण नहीं. रामेश्वरम् है दक्षिण भारत मे और वह भी अंतिम छोर पर, जब कि गंगा उत्तर भारत की नदी है. उत्तर के ब्राह्मणवाद को दूर दक्षिण की अनार्य जातियों के बीच प्रचारित कराने के लिए गंगाजल ले जा कर रामेश्वरम् के शिवलिंग पर चढवाने की चाल बड़ी गहरी

थी और इसे मनवाने के लिए नरक की धमकी भी जरूरी थी.

लंका विजय कर के लौटते हुए राम ने खुद और सीता के द्वारा उसी रामेश्वरम् स्थित महादेव के लिंग को प्रणाम करवा के उस के महात्म्य की पुष्टि करा दी : "सीता सहित कृपानिधि सभुंहि कीन्ह प्रनाम."

रास्ते में जब यमुना और गंगा पड़ीं तो राम द्वारा ही सीता से कहलाया गया कि प्रणाम करो :

बहुरि राम जानकिहि देखाई, जमुना कलि मल हरनि सुहाई,
पुनि देखी सुरसरी पुनीता. राम कहा प्रनाम करु सीता.

(फिर राम ने जानकी को कलयुग के पापों का हरण करने वाली सुहावनी यमुना के दर्शन कराए और इस के बाद पवित्र गंगा के दर्शन कराए. राम ने कहा, "हे सीता, इन्हें प्रणाम करो.")

उस के बाद जब वे प्रयाग पहुंचे तो फिर से उस का महात्म्य राम के मुंह से ही बखान करवाया, "अब फिर से इस तीर्थराज प्रयाग को देखो, जिस के दर्शन से ही करोड़ों जन्मों के पाप भाग जाते हैं. फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी के दर्शन करो, जो शोकों को हरने वाली और हरि के परमधाम तक पहुंचने के लिए सीढ़ी के समान है." वर्णन है :

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा, निरखत जन्म कोटि अघ भागा.
देखु परम पावनि पुनि बेनी, हरनि सोक हरि लोक निसेनी.

लगे हाथों उन्होंने अवधपुरी के लिए भी प्रमाणपत्र ले लिया, "अब फिर अत्यंत पवित्र अयोध्यापुरी के दर्शन करो जो तीनों प्रकार के पापों और आवागमन रूपी रोग का नाश करने वाली है. (पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि, त्रिविध ताप भव रोग नसावनि.) और "ऐसा कह कर राम ने सीता सहित अवधपुरी को प्रणाम किया." (सीता सहित अवध कहुं कीन्ह कृपाल प्रनाम.)

फिर त्रिवेणी में आ कर प्रभु ने हर्षित हो कर स्नान किया और वानरों सहित ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिए :

पुनि प्रभु आइ त्रिवेनी हरपित मज्जनु कीन्ह.
कपिन्ह सहित विप्रन्ह कहु दान विविध विधि दीन्ह

स्पष्ट है कि जब स्वयं 'प्रभु' इन तमाम तीर्थों और नदियों को झुकझुक कर प्रणाम करते फिरे तथा उन मे डुबकियां लगालगा कर गुणगान करते रहे और वहां के बंदरों व ब्राह्मणों को अनेक प्रकार की दानदक्षिणा देदे कर प्रसन्न होते रहे तो फिर अन्य तीर्थयात्री वही सब किए बिना कैसे रह सकते हैं! किसी भी यात्री की क्या मजाल जो ब्राह्मणो को दान दिए बिना लौट जाए!

इस सारे कर्मकांड का मकसद सिर्फ यह था कि साधारण जनता को अंध विश्वासों में घेर कर और भय दिखा कर काबू में रखा जा सके ताकि क्षत्रिय राजा और सामंत निर्भय हो कर हुकूमत करते रह सकें, ब्राह्मणों को हलवापूरी उपलब्ध होती रहे और उन की पुरोहिताई भी बनी रहे.

लेकिन उस सामंती षड्यंत्र और ब्राह्मणवाद के प्रचार का कुप्रभाव अब जो भारत की बहुसंख्यक जनता यानी हिंदुओं पर पड़ रहा है, उस की वजह से हमारा देश विश्व प्रगति की दौड़ में पिछड़ रहा है. तुलसी आदि ब्राह्मण पुरोहितवादियों के उपदेशों ने हिंदुओं को कायर और दब्बू बना कर रखा हुआ है और उन में आत्मविश्वास ही पैदा नहीं हो पाता. आर्थिक संकट के इस युग मे भी लोग दब्बूपन और आतंकवश ब्राह्मणों को दानदक्षिणा देते हैं तथा तीर्थाटन आदि में अपना धन लुटाते रहते हैं फलस्वरूप वे और अधिक गरीबी और अधिक अशिक्षा के चंगुल मे फंसते जा रहे हैं. राजनीतिक रूप से स्वतंत्र हो चुकने के बावजूद वे दिमागी गुलामी से मुक्त नहीं हो पा रहे

कायरपन, व गुलामी भी कई तरह की होती है लेकिन संस्कारों की गुलामी हर प्रकार की गुलामी के मुकाबले कहीं ज्यादा तबाही पैदा करती है. कारण यह कि इस गुलामी की जड़ें बहुत गहरी होती हैं और वे कई दिशाओं में फैली होती हैं—एक तरफ धर्म को छूती हुई, दूसरी ओर से नैतिकता को और तीसरी तरफ सामाजिक सीमांतों को जहां कि व्यक्ति को अपने लोगों के बीच मान-प्रतिष्ठा आदि के प्रश्न जुड़े होते हैं, पीढ़ियों के रस्मरिवाज और रिवायतें होती हैं.

तुलसी ने इन सारी जड़ों को इस कदर जहरीला बना के छोड़ा है कि हिंदू समाज की दशा आज जहरबाद के रोगी की सी हुई पड़ी है.

नियतिवाद का प्रचार करकर के लोगो को अकर्मण्य और कामचोर बना दिया गया है, जातिवाद फैला कर आपसी फूट पैदा कर दी गई है, अंधविश्वासों के द्वारा हिंदुओ को जहालत के अंधे कुएं मे फेंक दिया गया है, तीर्थाटनों की आड़ मे उन्हें कंगाल बना दिया गया है, ब्राह्मण वर्ग को उच्चत्व के दंभ में आलसी और मुफ्तखोर बना कर फेंका गया है और लाखों साधुओभिखारियों की भीड़ तथा अनगिनत पडोमुस्टडों के दल क्या हमारे देश के लिए बोझ नहीं बने हुए हैं?

और सब से बडा जुल्म जो तुलसी ने हिंदू जाति के साथ किया वह यह कि आधी से अधिक जनसंख्या को एकदम जड तथा हीन बना कर घरों मे बांध के पटक दिया हमारा इशारा नारी जाति की ओर है जो तुलसी के कोप का सर्वाधिक शिकार हुई है. फलस्वरूप उस का न मान रहा, न मरतबा. न ही वह सिर उठा कर समाज के विकास मे सहायक हो सकी.

जिस समाज के धर्मगुरुओ की यह मान्यता हो कि स्त्री स्वभाव से ही मूर्ख, नासमझ और जड़ होती है, वह समुदाय क्या कभी भी अपनी नारियो को चेतन मनुष्य का दरजा दे सकता है? और फिर भला नारी जाति को जड़ बना कर कभी कोई समाज प्रगति कर सकेगा?

'नारि सहज जड अ य' जैसा फतवा तुलसी ने खुद सती के मुह से दिलवा कर किसी बहस की गुंजाइश ही नहीं रहने दी. भला सती की उक्ति के विरुद्ध

तर्क कौन दे! जिस प्रसंग में यह उक्ति कही गई है, वह भी नारी को शवकी सिद्ध करने के लिए ही रखा गया है.

पार्वती का शिव से विवाह हो जाने पर मैना (पार्वती की मां) ने दामाद के पैर पकड़ कर कहा, "हे, नाथ, यह उमा मुझे अपने प्राणों के समान प्यारी है. आप इसे अपने घर की टहलनी बना कर रखिएगा." (नाथ उमा मम प्रान सम, गृह किंकरी करेहु)

जब पार्वती जैसी नारियों को पति के घर की नौकरानियां बनाने की याचना की गई तो फिर सामान्य हिंदू घरों में नारी को टहलनी से अधिक पद भला किस प्रकार मिल सकता है!

टहलनियों को अकारण त्याग कर अपने पुरुषार्थ का प्रदर्शन करने वालों की प्रशस्तियां गाते हुए तुलसी कहते हैं, "शिवजी के समान रघुनाथजी का व्रत धारण करने वाला कौन है जिस ने सती जैसी स्त्री को बिना पाप के त्याग दिया?"

सिव सम को रघुपति व्रतधारी, बिनु अघ तजी सती असि नारी.

तुलसी ने नारी को किसी तरह से भी ज्ञानार्जन का अधिकार नहीं दिया है. प्रमाणस्वरूप पार्वती के मुंह से ही यह बात कहलवाई भी गई है. वह पति के मुह से राम का यश वर्णन सुनने की इच्छा प्रकट करती है तो कहती है, "यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण उसे सुनने की अधिकारिणी नहीं हूं, तथापि मैं मन, वचन और कर्म से आप की दासी तो हूं.

जदपि जोपिता नहिं अधिकारी, दासी मनक्रम वचन तुम्हारी.

और शिव की दृष्टि में तथा तुलसी के अनुसार दासी शायद नारी भी नहीं रह जाती इसलिए शिव ने पार्वती की बात मान ली. पार्वती को केवल आश्वासन पा कर ही फिर से आत्महीनता की अभिव्यक्ति का दौरा पड़ जाता है, "हे, नाथ, आप की कृपा से अब मेरा विषाद जाता रहा और आप के चरणों के अनुग्रह से मैं सुखी हो गई, यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञानी हूं तो भी अब आप मुझे अपनी दासी जान कर राम का यश वर्णन कीजिए."

नाथ कृपा अब गयउ विषादा, सुखी भयउ प्रभु चरन प्रसादा.
अब मोहि आपनि किंकर जानी, जदपि सहज जड़ नारि अयानी.

मगर इतने पर शिवजी पार्वती को कोई विशेष गूढ़ ज्ञान की बात नहीं बताते बल्कि बच्चों को बहकाने के लिए जिस प्रकार माताएं या नानियां पशु-पक्षियों की कही हुई कहानियां सुनाने लगती हैं उसी तरह शिव कहने लगते हैं, "जिस कथा को काकभुशुंडि ने गरुड़ से कहा, वही सुनो." साथ ही इस बहाने तुलसी ने शिव के मुंह से रामचरितमानस का प्रोपेगेंडा भी करवा दिया: "सुनु सुभ कथा भवानि रामचरितमानस विमल, कहा भुसुंडि बखानि सुना विहग नायक गरुड़."

राम आदि भाइयो का सीता आदि बहनों के साथ विवाह हो चुकने के बाद जनक और उन के भाई भी हाथ जोड कर दशरथ से कहते हैं, "इन लड़कियो को टहलनिया मान कर दयापूर्वक इन का पालन कीजिएगा. (ए दारिका परि-चारिका करि पालिबीं करुना नई.) फिर राम के हाथों सीता को सौंपते हुए उन से भी इसी तरह कहते हैं. "तुलसी सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी." (हे, तुलसी के स्वामी, इस के शील और स्नेह को देख कर इसे अपनी दासी कर के मानिएगा.)

स्त्री को तुलसी इस योग्य नहीं समझते कि उस का विश्वास किया जाए स्त्री पर विश्वास का क्या फल होता है, उसे दशरथ के मुह से ही कहलवाया गया है, "हा, किस अवसर पर क्या हो गया! स्त्री का विश्वास कर के मै वैसे ही मारा गया जैसे योग का सिद्धिरूपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है."

कवने अवसर का भयउ गयउ नारि विस्वास,
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास.

इस प्रकार यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि स्त्री पर विश्वास करना अज्ञान और अविद्या के वश मे होना है.

मगर तुलसीदास के मतानुसार इस प्रकार अगर ज्ञान जाता भी रहे तो इस के लिए दोषी पुरुष नहीं है. राजा दशरथ के बारे में तुलसी की टिप्पणी उद्धरित है:

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु, अबला बिबस ग्यानु गुन गाजनु
एक धरम परमिति पहिचाने, नृपहि दोसु नहिं देहि सयाने

(जो हठ कर के—कैकई की बात को पूरा करने मे अड़े रह कर—खुद सब दुखो के पात्र हो गए. स्त्री के विशेष वश मे होने के कारण मानो उन का ज्ञान और गुण जाता रहा. जो लोग धर्म की मर्यादा जानते हैं और सयाने हैं, वे राजा को दोष नहीं देते.)

तुलसी के अनुसार. "स्त्रियों के हृदय की गति विधाता भी नहीं जान सका. स्त्री तो सपूर्ण कपट, पाप और अवगुणो की खान है (बिधिहुं न नारि हृदय गति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी) और स्त्री के स्वभाव के बारे मे तो सब सत्य ही कहते हैं कि उस के हृदय मे आठो अवगुण सदा मौजूद रहते हैं वे आठ अवगुण हैं: साहस, झूठ, चचलता, माया (छल), भय (डरपोकपन), अविवेक (मूर्खता), अपवित्रता और निर्दयता."

नारि सुभाउ सत्य सब कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं
साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक असौच अदाया.

इसी लिए नारी के लिए तुलसी ने यह आदेश दिया है.

ढोल गवार सूद्र पसु नारी, सकल तारना के अधिकारी.

मगर मार खाती रहने के बावजूद नारी को यह अधिकार नहीं है कि वह

अपने अपमान का प्रतिकार कर सके क्योंकि इस से भी पति का अपमान होता है और पति चाहे बूढ़ा हो, रोगी हो, मूर्ख हो या अंधा, बहरा, जालिम, दरिद्र चाहे जैसा हो उस का भी अपमान करने से नारी नरक मे जाएगी और वहां यमपुरी मे उसे भांतिभांति के दुख झेलने पड़ेंगे.

वृद्ध रोगवस जड धनहीना, अंध वधिर क्रोधी अति दीना.
ऐसेहु पति कर किएं अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना.

अतः नारी का तो सिर्फ एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है, यानी उस के जीवन का एक मात्र लक्ष्य यही एक है कि वह शरीर, बचन और मन से पति के चरणों मे ही पड़ी रहेः

एकइ धर्म एक व्रत नेमा, काय वचन मन पति पद प्रेमा.

और मजे की बात यह कि सिर्फ इस प्रकार चरणो में पड़ी रहना भी काफी नहीं है. धर्म और नैतिकता के निर्वाह के लिए ही जो स्त्री पतिव्रता बनी रहती है, तुलसी की दृष्टि में वह भी 'अधम' है उस के लिए भी रौरव नरक का ही विधान है. स्वर्ग तो जैसे स्त्री के लिए है ही नहीं क्योंकि वह तो स्वभाव और जन्म से ही अपावन और अपवित्र होती है (सहज अपावनि नारि.)

ऊपर के पैरा में जो बात हम ने कही है, उस के प्रमाण स्वरूप तुलसी की पंक्तिया उद्धरित करना आवश्यक हैः

विनु अवसर भय तें रह जोई, जानेसु अधम नारि जग सोई

(अवसर न रहने पर तथा भय वश भी जो पतिव्रता बनी रहती है, वह जगत मे अधम स्त्री है.)

स्त्री को वह स्वभाव से ही अपवित्र मान कर चलते हैं और उन को विश्वास है कि स्त्री किसी भी पुरुष को देखते ही विवश हो जाती है, चाहे वह पुरुष उस का सगा भाई, पिता व पुत्र ही क्यों न हो! नारी किसी भी पुरुष को देखते ही अपने मन पर नियंत्रण खो बैठती है, ठीक उस प्रकार जैसे सूर्यकांतमणि सूर्य को देखते ही पिघल जाती हैः

भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुष मनोहर निरखत नारी.
होइ विकल सक मनहि न रोकी, जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी

नारी जाति को ही सारे अवगुणों और दुखो की जड़ सिद्ध करने के लिए तुलसी ने एक लंबा प्रसंग और जोड़ा है. नारद मुनि राम से पूछते हैं, "जब मैं विवाह करना चाहता था तब आप ने मुझे करने क्यों नहीं दिया था?"

तव विवाह मैं चाहउं कीन्हा, प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा?

नारद के इस प्रश्न का उत्तर देते हुए राम कहते हैं, "काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि मोह अथवा अज्ञान की प्रबल सेना है इन मे मायारूपिणी स्त्री तो अत्यंत दारुण दुख देने वाली है. जपतप नियमरूपी संपूर्ण जल के स्थानों को स्त्री ग्रीष्मरूप हो कर सर्वथा सोख लेती है. स्त्री ही एक मात्र कारण है जिस से काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) उत्पन्न होते हैं. सभी बुरी वासनाएं

बढ़ाने वाली भी एक मात्र स्त्री ही है. स्त्री तो धर्म के सारे कमल जला डालती है. पाप और अंधकार का कारण भी केवल नारी ही है. स्त्री ही बुद्धि, बल, शील और सत्य का नाश करने वाली है. वह सारे अवगुणों की मूल है, पीडा देने वाली है और सारे दुखों की खान है. इसी लिए हे, मुनि, मैं ने तुम्हें विवाह करने से रोका था," तुलसी के ही शब्दों मे:

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह के धारि
तिन्ह मह अति दारुन दुखद मायारूपी नारि
जपतप नेम जलाश्रय झारी, होइ ग्रीष्म सोषइ सब नारी
काम क्रोध मद मत्सर भेका, इन्हहि हरपप्रद बरषा एका
दुर्वासना कुमुद समुदाई, तिन्ह कह सरद सदा सुखदाई.
धर्म सकल सरसीरुह वृंदा, होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा.
पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड रजनी अंधियारी
बुधि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना.
अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि,
ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि

अब जरा इन विचारो के कुप्रभाव पर विचार कर लें स्पष्ट है कि सामान्य धर्मभीरु और तुलसी प्रेमी या रामभक्त के मन मे यह विश्वास जम सकता है कि औरत जब इस कदर गलत और बुरी चीज है तो उस से ब्याह ही नहीं करना चाहिए और अगर किया भी जाए तो उसे ढोल, गंवार, शूद्र और पशु की तरह हरदम मारते ही रहना चाहिए.

दूसरी तरफ समाज का आधा भाग अपने बारे में ऐसे फतवे सुनसुन कर आत्मविश्वास खो बैठता है. बचपन से ले कर बुढ़ापे तक हिंदू औरतों से जिस प्रकार का व्यवहार किया जाता है, वह उन्हें परावलंबी, आत्महीन, दब्बू और नाकारा बना देता है.

हिंदू नारी की ऐसी स्थिति के कारण ही समाज में यह भावना पनपी कि जब इतनी गलत और बुरी चीज अपनाई जाए तो साथ मे क्षतिपूर्ति स्वरूप बहुत सा धन और सामान लिया जाए क्षतिपूर्ति के इस माध्यम को दहेज का नाम दिया गया और इस की महत्ता का बखान भी किया गया.

तुलसी ने जहांतहां अवसर निकाल कर दहेज प्रथा की पुष्टि करने में भी कोई कसर नहीं छोडी. उदाहरणार्थ, शिव के विवाह के समय पार्वती के दहेज का प्रसग देख लें या राम के विवाह के समय सीता के दहेज के लंबेचौड़े विवरण पढ लें. बेशुमार दासदासियां, असंख्य रथ, हाथीघोडे, गाएं तथा गाड़ियो मे लादलाद कर सोना, कपड़ा आदि देने के बावजूद जब पार्वती जैसी लड़की का बाप अपने दामाद के आगे हाथ जोड़ता है और लड़की की मां अपने जमाई के पैर पकड़ती है तो फिर सामान्य हिंदू लडकी के मांबाप की क्या बिसात! इतना कुछ देने पर भी जब हिमाचल कहता है कि मैं जमाई को दे ही क्या सकता हूं,

तब कोई हिंदू बाप अपनी बेटी को दहेज देते समय यह बात भला कैसे भूल सकता है कि:

दासी दास तुरग रथ नागा, धेनु वसन मनि वस्तु विभागा.
अन्न कनक भाजन भरि जाना, दाइज दीन्ह न जाइ वखाना
दाइज दियो वहु भांति पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यो,
का देउ पूरन काम संकर चरन पंकज गहि रह्यो.
सिव कृपा सागर ससुर कर संतोषु सब भांतिहि कियो,
पुनि गहे पद पाथोज मयनाः प्रेम परिपूरन हियो.

इसी प्रकार राम आदि भाइयों के विवाह के प्रसंग में दहेज की महिमा बखानी गई है :

जसि रघुवीर ब्याह विधि वरनी, सकल कुंअर ब्याहे तेहिं करनी.
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी, रहा कनक मनिमडप पूरी.
कंवल वसन विचित्र पहोरे, भातिभाति वहु मोल न थोरे.
गज रथ तुरग दास अरु दासी, धेनु अलंकृत कामदुहा सी.
वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा, कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा.
लोकपाल अवलोकि सिहाने, लीन्ह अवधपति सवु सुखु माने.

(राम के विवाह की जैसी विधि वर्णन की गई है, उसी रीति से सब राजकुमार व्याहे गए. दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती सारा मंडप सोने और मणियों से भर गया. बहुत से कंवल, वस्त्र और तरहतरह के विचित्र रेशमी बहुमूल्य कपड़े और हाथी, घोड़े, दासदासियों और गहनों से सजी हुई कामधेनु सरीखी गाएं. इतनी सारी चीजें हैं कि उन की गिनती ही नहीं की जा सकती, न ही वर्णन किया जा सकता है. जिन्होंने देखा है, वही जनते हैं. दहेज देख कर तो लोकपाल भी सिहर गए. अवधराज दशरथ ने सुख मान कर प्रसन्न मन से सारा दहेंज ग्रहण किया.)

फिर जब बारात विदा हुई तो जनक ने एक बार और दहेज दिया. दहेज का ब्योरा देते हुए तुलसीदासजी कहते हैं:

भरिभरि वसह अपार कहारा, पठई जनक अनेक सुसारा
तुरग लाख रथ सहस पचीसा, सकल संवारे नख अरु सीसा.
मत्त सहस दस सिंधुर साजे, जिन्हहि देखि दिसिकुंजर लाजे.
कनक वसन मनि भरिभरि जाना, महिषी धेनु वस्तु विधि नाना.
दाइज अमित न सकिअ कहि दीन्ह विदेह वहोरि,
जो अवलोकत लोकपति लोक सपदा थोरि
"सवु समाज, एहि भांति वनाई, जनक अवधपुर दीन्ह पठाई.

(अनगिनत बैलों और कहारों पर लादलाद कर सारी खाने की सामग्री भेजी गई. साथ ही जनक ने अनेक सुंदर शैयाएं (पलंग) भेजीं एक लाख घोड़े और 25,000 रथ, जो सब के सब नख से शिख तक सजे हुए थे. 10,000 मतवाले

हाथी थे जिन्हें देख कर दिशाओं के हाथी भी लजा जाते हैं. गाडियों मे भर-भर कर सोना, वस्त्र और हीरेजवाहरात और भैंसें, गाएं और नाना प्रकार की चीजें दीं इस प्रकार जनक ने फिर से अपरिमित दहेज दिया. इस दहेज का वर्णन नहीं किया जा सकता और इसे देख कर लोकपालों के लोकों की सपदा भी थोडी जान पडती है. इस तरह से सारा सामान सजा कर जनक ने अयोध्यापुरी को भेज दिया)

ऊपर के उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि तुलसी ने एक ही व्याह मे दोदो वार दहेज देने की प्रथा को समर्थन दिया है शादीविवाह मे अपनी सामर्थ्य से भी आगे वढ़ कर खर्च करने का उपदेश ग्रहण कर आज जितने हिंदू परिवार कर्ज के वोझ तले पिस रहे हैं, उन सव की दुर्गति का दायित्व तुलसी की सडी-गली विचारधारा पर है.

दहेज प्रथा के खिलाफ कानून वना देने भर से ही कुछ हासिल न होगा. इस सामाजिक कोढ को दूर करने के लिए सव से पहली जरूरत यह है कि धर्म और सामाजिक मर्यादा के नाम पर फैलाए जा रहे उन कीटाणुओ को नष्ट किया जाए जो तुलसी की रामायण सरीखे ग्रथो मे भरे पडे हैं और जिन के प्रचारप्रसार के विरुद्ध कोई कानून अभी तक नहीं वनाया जा सका.

व्राह्मण पुरोहितवाद के प्रचार की इस सामंती साजिश का भंडाफोड़ करना भी आज के हर जागरुक व्यक्ति का कर्तव्य है यह भी ठीक है कि इस प्रकार की कडवी सचाइया जान कर कुछ लोगो को वुरा लगेगा लेकिन सिर्फ इस कारण सत्य पर परदा पड़ा रहने देना वौद्धिक कायरता का प्रतीक है.

अंधविश्वासो और परंपराओ मे भले ही वहुत कम अतर है, फिर भी उस अतर को समझ कर स्वस्थ परपराओ को आगे वढाने और अंधविश्वासो व रुढियो को त्यागते चलने मे ही मानव प्रगति का रहस्य छिपा हुआ है.

परंपराओ के अंतर्गत इतिहास और ज्ञानविज्ञान की वे सीढिया हैं जिन पर एकएक कदम भरते हुए हम दिनोदिन ऊपर चढे हैं, जव कि अंधविश्वास उन व्यावहारिक कुरीतियो से जुडे होते हैं जो अपना उद्योग खो चुकने के वावजूद अज्ञात तथा अभ्यासवश हमारी व्यवहार नीति मे हस्तक्षेप करते चलते हैं व्यवहार मर्यादा हमेशा ही तात्कालिक स्थितियों के अनुरूप निर्धारित की जाती है उस कोसर्वकालिक महत्त्व या उपयोगिता नहीं होती. साथ ही उस का सवध तत्कालीन समाज के विभिन्न वर्गो मे से किसी एक और राजनीतिक या आर्थिक स्वार्थों वाले मानव समूहो की आपसी होड़ के साथ भी होता है. इसलिए व्यवहार मर्यादा को सभी लोगो के लिए हर युग मे एक सी मान कर चलना भी गलत होगा.

इसी प्रकार एक विशेष युग के मर्यादा पुरुओत्तम आदर्श व्यक्ति का उदाहरण किसी दूसरे जमाने के व्यक्ति के लिए भी हितकार हो हो, यह जरुरी नहीं, वल्कि आम तौर से अहितकर ही होता है. अत. उसे त्याग देने में ही भला है यों भी राम मे इतनी खामिया थीं कि उन की मर्यादा पर और उन के

पुरुषोत्तम होने पर हंसी आती है.

व्यवहार मर्यादा के तथाकथित आदिम ग्रंथ 'रामचरितमानस' की असंगतियों की एक हलकी सी झांकी प्रस्तुत है:

तव मयना हिमवंतु अनंदे, पुनिपुनि पारवती पद बंदे

(तब मैना और हिमवान ने आनंद मे मग्न हो कर बारबार पार्वती के चरणों की वंदना की.)

मातापिता द्वारा पुत्री की चरण वंदना कौन से समाज की व्यवहार मर्यादा है, यह समझ में नहीं आता!

इसी प्रकार ('गणपतिहि पूजेउ संभु भवानी') यानी शिव और पार्वती द्वारा अपने पुत्र की पूजा दिखाने मे किस लोकमर्यादा का पालन कराया गया है, यह रहस्य भी तुलसी ही जानें!

कौशल्या का राम के चरणों में सिर नवाना (नयन मूंदि चरननि सिरु नावा) भी शायद तुलसी को मर्यादा का उल्लंघन नहीं लगा. इसी तरह अनेक प्रसंग ऐसे गिनाए जा सकते हैं जहां सामाजिक रूप से नियत व्यवहार मर्यादा के गलत आदर्श सामने लाते हैं.

भरत अपनी माता को संबोधित करते हुए उसे 'पापिनी' और 'कुल नाशिनी, तक कह डालते हैं: ''पापिनि सबहि भांति कुल नासा '' केवल इतना ही नहीं, पुत्र के मुंह से माता को यहा तक कहलवाया गया है कि 'अरी, कुमति! तेरी जीभ नहीं गली? तेरे मुंह मे कीड़े नहीं पड़े? तू तो पाप, कपट और अवगुणो की खान है. तू पैदा ही क्यों हुई? हुई भी तो वांझ क्यो न हुई?' (जव तैं कुमति जिय ठयऊ... गरि न जीह मुंह परेउ न कीरा.. सकल कपट अघ अवगुण खानी...कैकई कत जनमी जग माझा, जो जनमि त भई का न बांझा.)

(स्त्री पर हाथ उठाना और उसे बेतरह पीटना, घायल कर डालना आखिर किस व्यवहार मर्यादा में शामिल है?

मगर राम और लक्ष्मण पहले तो सूर्पणखा से छेड़छाड़ और मजाकठट्ठा करते हैं, फिर उस के नाककान काट डालते हैं इसी प्रकार लक्ष्मण का छोटा भाई शत्रुघ्न मंथरा को लातो से मारमार कर उस की कमर तोड़ डालता है, सिर फोड़ देता है, दांत निकाल देता है और उसे खून मे लथपथ कर डालता है:

हुमगि लात तकि कूबर मारा, परि मुह भर महि करत पुकारा

कूबर टूटेउ फूट कपारू, दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू

'मर्यादा पुरुषोत्तम' राम से ऐसीऐसी हरकतें करवाई गई हैं कि मर्यादा का सिर भी शर्म से झुक जाए! सूर्पणखा वाला उदाहरण तो बहुचर्चित है ही, सीता को बिना दोष के ही बुराभला कहने वाले प्रसंग भी किसी से छिपे नहीं हैं. रावण के रहते हुए विभीषण को राजतिलक कर देना भी सरासर अनीति थी और इस राजतिलक के बाद पहली ही जो बात उस से पूछी गई, वह बताए कि समुद्र पार करने का उपाय क्या है? स्वार्थ साधन के लिए गिरा मनुष्य जोजो

हरकतें कर सकता है, वही 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के चरित्र से उभरती हैं

(सिर्फ राम ही नहीं, उस के सेवक और भक्तों की भी यही हरकतें हैं. हनुमान रावण से कहता है, "मैं तेरी स्त्रियों सहित सीता को ले जाऊंगा" (तव जुवतिन्ह समेत सठ जनकसुतहि ले जाऊं.)

और राम के सैनिक केवल ऐसी धमकी ही नहीं देते बल्कि व्यवहार मे भी सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन करते हुए स्त्रियों को बाल से पकड कर घरों से बाहर घसीट लाते हैं :

घरि केस नारि निकारि बाहिर तेऽतिर्द न पुकारही

इस सब के विपरीत रावण की व्यवहार मर्यादा यह रही कि वह सीता को उस की इच्छा के विरुद्ध छू भी नहीं सकता, बाल पकड कर घसीटना या बलात्कार करना तो बड़ी दूर की बातें हैं. लेकिन फिर भी रावण को दानव और राम को देवता क्यों कहा गया?

दो जीवनदर्शनों के संघर्ष के रूपक स्वरूप ही रामायण को लिया और समझा जा सकता है एक दृष्टि भौतिक चिंतन की है जिस का प्रतिनिधित्व रावण के माध्यम से हुआ है और दूसरा है शरीर और आत्मा को अलगअलग मानने वाला दर्शन जिस का प्रतिनिधि राम है आर्यों ने भारत पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी इस प्रकार भारत के मूल निवासियों के मुकाबले मे उन्होंने अपने को उच्च और अच्छा मान लिया था. 'आर्य' शब्द का अर्थ 'अच्छा' और 'भला' है भी आर्यो को अपनी शक्लसूरत का भी बड़ा गुमान था क्योंकि वे मूल भारतीयो की अपेक्षा गोरे रंग और तीखे नक्श वाले थे. साथ ही उन्हें अपनी सभ्यता पर भी गर्व था, हालांकि मूल भारतीयों की नागरिक सभ्यता आर्यो की सभ्यता की तुलना मे कहीं अधिक बढीचढी और उन्नत थी. यह तथ्य अब सिंधु घाटी सभ्यता के मोहनजोदड़ो और हड़प्पा मे प्राप्त अवशेषों से पूर्णतया स्थापित हो चुका है

आर्यों को भारत मे आए तीन हजार वर्ष से कुछ ही ऊपर का समय बीता है, जब कि सिंधु घाटी सभ्यता के अवशेष लगभग पौने चार हजार साल पुराने हैं आर्य सभ्यता का प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद भी ईसा पूर्व 1200 मे रचा गया माना जाता है, जब कि सिंधु सभ्यता कम से कम 2500 ईसा पूर्व की तो प्रमाणित हो ही चुकी है इस बात मे भी अब कोई सदेह नहीं रहा कि भारत के मूल निवासी, जिन मे द्रविड़ मुख्य थे, आर्यों की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य, सुशिक्षित और उन्नत थे भाषा, कला, स्थापत्य, नगर सयोजना और अन्य क्षेत्रों मे भी उन का ज्ञान अधिक विकसित था विदेशी आक्रमणकारियों ने द्रविडो को हरा कर दक्षिण मे खदेड़ दिया और उत्तर भारत में अपना राज्य स्थापित कर के अपने को उच्च और विकसित घोषित कर दिया. उन्होंने मूल निवासियो के नगरो को ध्वस कर डाला, उन्हें असभ्य, काले, नीच, दानव और राक्षस तक कहना शुरू कर दिया. यही कारण था कि मूल निवासियों ने भी आर्यों को कभी

अच्छी दृष्टि से नहीं देखा.

लेकिन जब भी दो संस्कृतियां लंबी अवधि तक एकदूसरे के संपर्क मे रहती हैं तो प्रभाव ग्रहण करने की स्वाभाविक प्रक्रिया भी शुरू हो ही जाती है. अंगरेजों को हम शुरू से नफरत की निगाह से देखते रहे हैं मगर इस के बावजूद हम उन की सस्कृति और सभ्यता से किस कदर प्रभावित हुए हैं, इसे बताने की जरूरत नहीं. इसी तरह मूल भारतीयो के रहनसहन और व्यवहार के ढग धीरेधीरे आर्यों का प्रभाव ग्रहण करने लगे और आर्य लोग भारतीय तौरतरीके अपनाने लगे. उदाहरणार्थ, त्याग और ब्रह्मचर्य आदि चीजो से आर्यों का कोई सबंध न था, मगर भारतवासियो मे त्याग और ब्रह्मचर्य को महत्त्वपूर्ण माना जाता था. इसी प्रकार आर्य लोग केवल यज्ञशालाओं में ही आपस मे मिल बैठते थे, जब कि भारतीयों के मिलनस्थल नदियों के किनारे हुआ करते थे धीरेधीरे यज्ञ और तीर्थ दोनों मिल गए.

वर्ण व्यवस्था का इतिहास भी वैसा नहीं है जैसा कि साधारणतया समझा जाता है. अस्पृश्यता भी कब शुरू हुई, यह ठीकठीक तो नहीं कहा जा सकता मगर इतना निश्चित है कि पहले सिर्फ आर्थिक आधार पर समाज का विभाजन किया गया था, जन्मगत रूप बहुत बाद में आया.

धर्मशिक्षकों के वर्ग को ब्राह्मण, व्यापारियो को वैश्य, राजाओं और योद्धाओं को क्षत्रिय तथा किसानों और मजदूरों को शूद्र कहा जाता था जाति और रंगभेद के आधार पर वर्ण विभाजन का उल्लेख महाभारत में ही सब से पहले मिलता है, यानी लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व क्योंकि महाभारत का रचनाकाल 400 से 2·0 ईसा पूर्व का ही माना गया है. (हालांकि कुछ लोग इसे बौद्धकाल से भी पहले की रचना मानते हैं पर इस मान्यता का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता] महाभारत में भृगु द्वारा वर्णो का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है. वह भारद्वाज को संबोधित कर कहते हैं, "ब्राह्मण गोरे रंग के, क्षत्रिय लाल, वैश्य पीले और शूद्र काले होते हैं" (महाभारत, शांति पर्व-188 5,)

दक्षिण भारत में छूतछात क्योंकि आज भी उत्तर भारत की अपेक्षा अधिक है इस आधार पर कुछ लोग अस्पृश्यता को वैदिक युग से पहले की चीज मानते हैं. लेकिन यह कोई ठोस आधार नहीं माना जा सकता क्योंकि बाद मे ग्रहण की हुई चीज भी अधिक प्रभावशाली हो सकती है. उदाहरणार्थ उत्तर भारत के हिंदुओ मे आर्यकालीन यज्ञों के स्थान पर द्रविड़ो के प्रभाव से मूर्तिपूजा की प्रथा या इंद्र आदि देवताओं की अपेक्षा दक्षिण भारतीय देवता शिव का प्रभाव, या फिर यज्ञशालाओ के स्थान पर नदी किनारे के तीर्थ स्थानो की महत्ता आदि

स्वयं भक्ति की भावना भी अनार्य प्रभाव है. 'पद्मपुराण' मे इस का स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि भक्ति की लहर दक्षिण भारत की द्रविड जाति के संसर्ग से ही उत्तर भारत की आर्य जातियो में आई इसी के कारण वैदिक आचार्यों के स्थान पर नए प्रकार के गुरुओं का महत्त्व उभर कर सामने आया. मंदिरों

ग्रौर मूर्तियों का भी ग्रस्तित्व द्रविड जाति के संपर्क का ही प्रभाव है

ग्राक्रमणकारी व विजेता होने के बावजूद ग्रार्य लोग क्योंकि ग्रल्पसंख्यक थे, इसलिए उन की चतुराई का ही प्रमाण था जो उन्होंने बहुमत के सामान्य विश्वासों को स्वीकृति प्रदान कर के ग्रपना मत फैलाना उचित समझा. हालांकि यह सूझ भी ग्रार्यों को पहले से ही नहीं ग्रा गई थी, बल्कि बहुत लड़भिड़ कर ही वे इस नतीजे पर पहुंचे थे कि जनभावना को शोषित करने का सर्वोत्तम ढंग यही होगा कि उसे जनता की मान्यताग्रों के माध्यम से ही मरोड कर ग्रपने विचार उन पर थोप दो, तभी वे उन्हें ग्रपना सकेंगे.

यही प्रवृत्ति बढ़ती हुई मध्ययुग तक पहुंचतेपहुंचते ग्रपनी पकड इस कदर मजबूत कर गई कि तुलसी ग्रादि सामंतवादी प्रचारकों ने ग्रपनी रचनाग्रों में खुल कर एक ग्रवैज्ञानिक चिंतन की विजय घोषित कर दी. शरीर ग्रौर ग्रात्मा को ग्रलगग्रलग मान कर चलना निस्संदेह एक ग्रवैज्ञानिक विचारधारा थी राम की रावण पर विजय दिखाना इसी विचारधारा की जीत सिद्ध करने का प्रयास था ग्रौर इस काम के लिए यह जरूरी था कि राम को ग्रवतार के रूप मे पेश किया जाता क्योंकि ग्रवतारवाद भी द्रविड मान्यता थी, वैदिक नहीं

साथ ही यह चाल भी ग्रनिवार्य थी कि राम के द्वारा दक्षिण भारतीय देवता शिव को महान घोषित करवाया जाता ग्रौर रामेश्वरम् मे शिवलिंग स्थापित करा के उस की पूजा करवाई जाती. द्रविड मान्यताग्रों के ग्रनुरूप ही तीर्थ स्थानों की महिमा का बखान करवाया गया लेकिन इन सब बातों का ग्रभिप्राय यही था कि शिव जैसे सर्वश्रेष्ठ देवता के मुंह से राम की बड़ाई कराई जाए ताकि ग्रनार्य लोग उस के बडप्पन को स्वीकार कर लें. शिव द्वारा राम की पूजा ग्रौर भक्ति के पीछे भी यही मंतव्य स्पष्ट है.

राम द्वारा शिवधनुष तुडवाया जाना भी राम को शिव से ग्रधिक शक्तिशाली सिद्ध कराना है ग्रौर शिव से ग्रमरत्व का वरदान प्राप्त करने वाले रावण को राम के हाथों हत्या दिखा कर भी यही बात प्रमाणित की गई है. वरना वेदो मे ग्रवतारों का कहीं कोई उल्लेख नहीं है मनुष्य ग्रौर तथाकथित भगवान के बीच ग्रवतार नाम के बिचौलिए का ग्रस्तित्व किसी वेद ने नहीं स्वीकारा

इस के ग्रलावा तुलसी ने मूल रामकथा के तथ्यों को भी बेतरह तोडमरोड कर प्रस्तुत किया है वाल्मीकि ने तो रामकथा के माध्यम मे राम के चरित्र पर परोक्ष रूप से व्यंग्य ही किया है. दूसरे शब्दों मे हम वाल्मीकि 'रामायण' को ग्रप्रत्यक्ष शैली में लिखी गई एक व्यंग्य रचना भी कह सकते हैं उस में वर्णित राम ग्रारभ से ग्रंत तक कुंठाग्रों से घिरा एक मनस्तप्त व्यक्ति है जो ग्राखिर ग्रपनी कुंठाग्रों से तंग ग्रा कर सरयू नदी मे डूब कर ग्रात्महत्या कर लेता है. इस के ग्रतिरिक्त इस प्रकार के कुंठित पात्र के निकट सपर्क मे जितने भी व्यक्ति ग्राते हैं, उन सब की दुर्दशा होती है. सीता जैसी पत्नी के चरित्र पर भी उसे बारबार परीक्षाएं ले कर जब विश्वास नहीं होता तो वह उसे गर्भ-

वती होने पर भी जंगलों मे छुड़वा देता है ताकि जंगली पशुओं द्वारा उस का अंत हो जाए सीता इस प्रकार बारबार अपमानित हो कर खड्डे मे कूद कर आत्महत्या कर लेती है.

इसी तरह एक जरा सी बात पर राम ने लक्ष्मण जैसे भाई को देशनिकाले का दंड दे कर जब उस का अपमान किया तो वह भी सह न सका और उस ने भी सरयू में डूब कर आत्महत्या कर ली. अपने जीवन की सारी हरकतों और अपने पूरे जीवनदर्शन का खोखलापन महसूस कर के ही तो अंत में राम को खुद भी आत्महत्या के अतिरिक्त कोई मार्ग न सूझा था लेकिन वाल्मीकि का व्यंग्य केवल इसी बात से पूरा नहीं होता. वह तो कुल मिला कर यह सिद्ध करना चाहता था कि इस प्रकार के कुंठित और अवैज्ञानिक विचारधारा वाले राजा खुद तो डूबते ही है, साथ ही सारी प्रजा को भी ले डूबते हैं. इसी लिए रामायण के अंत मे राम अकेला नहीं डूबता बल्कि अयोध्या के सभी नागरिकों सहित सरयू में समाता हुआ दिखाया गया है.

इस के विपरीत तुलसी ने राम को मनुष्य से हटा कर अवतार बना डाला है और वे सभी प्रसंग जानबूझ कर टाल दिए है जिन मे व्यंग्य ध्वनित होता था. रामचरितमानस मे न तो सीता के त्याग का प्रसंग है, न लक्ष्मण के त्याग का. उस में न ही राम द्वारा सरयू मे डूब कर आत्महत्या करने का उल्लेख है, न अयोध्यावासियों को ले डूबने का. यहां तक कि सीता, लक्ष्मण राम आदि किसी की भी मृत्यु का कोई जिक्र उस में नहीं है तुलसी ने रामराज्य के गुण-गान करतेकरते और ब्राह्मणपुरोहितवाद को प्रशस्तियां गातेगाते ही अपना ग्रंथ समाप्त कर डाला है सच तो यह है कि रामराज्य एक आदर्श कल्पना या 'यूटोपिया' के सिवा और कुछ नहीं है.

अवैज्ञानिक चिंतन पर आधारित राज्यव्यवस्था कोरी कल्पना के अलावा और हो भी क्या सकती है! विचार की अलग सत्ता स्वीकार कर चलना, आत्मा और शरीर में भेद मान कर चलना, परलोक और पुनर्जन्म की कल्पना मे ही जीवन नष्ट कर डालना आदि बातें उस अवैज्ञानिक चिंतन का अंग हैं जिस का प्रतिनिधि पात्र राम है

वाल्मीकि ने इसी अवैज्ञानिक विचारधारा की स्पष्ट शब्दों में आलोचना भी कई स्थलों पर की है. उदाहरणार्थ, जाबाली नामक एक विद्वान राम को संबोधित कर के कहता है "मैं उन व्यक्तियों के लिए चिंतित हू जो इस लोक की चिंता छोड़ कर परलोक की चिंता मे डूबे रहते हैं और अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं. मैं और किसी व्यक्ति के लिए चिंतित नहीं हूं. चिंत्य वे लोग हैं जो हर वर्ष अपने मरे हुए पितरों का श्राद्ध करने के नाम पर अन्न नष्ट करते हैं.

"हे, राम, क्या कभी मृत व्यक्ति भोजन खा सकता है? तो फिर यात्रा पर जाते समय लोगबाग अपने साथ अन्न बांध कर क्यों ले जाते हैं? क्यों नहीं उन के संबंधी लोग घर बैठे हुए ही किसी ब्राह्मण को भोजन करा देते ताकि यात्रा

पर निकले हुए व्यक्तियों का पेट भर सके?

"हे, राम, ये सारे के सारे धर्म और आदेश उन चतुर व्यक्तियों द्वारा दिए गए हैं जो भोलेभाले लोगों को पथभ्रष्ट करने मे सिद्धहस्त थे और इस प्रकार औरो को दानदक्षिणा देने के लिए उकसा कर स्वय धन कमाने के सहज आविष्कार करते रहते थे उन का तो सिद्धांत यही था कि दूसरों से कहें, 'यज्ञ करो, बलिदान करो, दान करो, स्वयं को भूखो रखो अर्थात व्रतउपवास करो यानी हमे दो . ' हे, राम, आप बुद्धि से काम लें. इस जीवन के अतिरिक्त अन्य कोई जीवन मिलने वाला नहीं, यह निश्चित मानें." (वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काड, 108)

भारत की धार्मिक विचारधारा कई तरह के दर्शनों के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है हिंदू दर्शन को ठीक तरह से समझने के लिए सूत्र युग के कुछ दार्शनिक चिंतनों का उल्लेख करना जरूरी है लगभग ये सभी दर्शन ईसवी सन 200 के बाद ही पूरी तरह विकसित हुए, हालांकि इन का उद्गम किसी न किसी रूप मे बहुत पहले से भी खोजा जा सकता है. कुछ दर्शनप्रणालियां तो ईसा पूर्व 800 तक प्राचीन हैं.

सूत्र युग की छः दार्शनिक प्रणालियां प्रसिद्ध हैं : न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व मीमासा और वेदांत. इन मे न्याय और वैशेषिक दर्शन एक कोटि के हैं, साख्य और योग में भी बहुत कुछ समानता है तथा पूर्व मीमांसा और वेदात परस्पर सबद्ध हैं. न्याय दर्शन मुख्य रूप से तर्क के आधार पर टिका है और वैशेषिक मे संसार की प्रकृति का उल्लेख है, मगर दोनों मे एकदूसरे के निष्कर्षों को स्वीकार लिया गया है. न्याय की विश्लेषणात्मक पद्धति का वैशेषिक दर्शन मे प्रयोग किया गया है और वैशेषिक मे संसार की आणविक बनावट का जो सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है उसे न्याय ने मान लिया है

न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान के चार स्त्रोत हैं : प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इस मे तर्क की प्रक्रिया का ब्योरेवार विश्लेषण किया गया है. यह अरस्तू की दार्शनिक विचारधारा से बहुत मेल खाता है. कह नहीं सकते कि न्याय दर्शन अरस्तू से प्रभावित है या अरस्तू ने न्याय से प्रभाव ग्रहण किया? हो सकता है कि यह समानता मात्र एक संयोग हो (मैक्समूलर का भी यही विचार है)

वैशेषिक दर्शन के अनुसार सभी भौतिक पदार्थ चार प्रकार के अणुओं से बने हैं धरती, जल, अग्नि और वायु के इन अणुओं के विभिन्न रूप से संयोग होने के कारण ही अलगअलग तरह के पदार्थ बनते हैं. भौतिक अणुओं के अतिरिक्त यह दर्शन पाच अन्य तत्त्वो को भी स्वीकारता है. अंतरिक्ष, समय, आकाश, मन और आत्मा.

इस दर्शन के अनुसार भगवान इस सृष्टि का रचयिता तो माना जाता है मगर इन तत्त्वों और अणुओ को भगवान द्वारा विरचित नहीं माना जाता.

न्यायिकों का कहना है कि भगवान ने तो सिर्फ इन तत्त्वों को तरतीब दी है. इसी लिए इस विचारधारा वालों को वेदांती लोग 'अर्धवैनाशिक, मानते हैं. सांख्य दर्शन के अनुसार विश्व में दो ही आधारभूत कोटियां हैं: प्रकृति और पुरुष (स्व). पुरुष के प्रभाव से ही प्रकृति का विकास होता है और संसार का इतिहास इसी विकास का इतिहास है. सांख्य दर्शन की एक अन्य महत्त्वपूर्ण देन है त्रिगुण सिद्धांत, यानी प्रकृति की तीन द्वंद्वात्मक विशेषताएं : सत्व, रजस, तमस.

'सत्व गुण के द्वारा प्रकृति प्रकट होती है, उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है. रजस गुण गतिविधि को शक्ति प्रदान करता रहता है तमस गुण बाधाएं प्रस्तुत कर के विकास की गति को प्रेरित करता रहता है. विकास के कोई चरण हैं. बुद्धि का विकास सर्वप्रथम और महान है. सांख्य दर्शन के अनुसार सारे बंधन अज्ञान के फल हैं, सिर्फ ज्ञान के द्वारा ही मुक्त हुआ जा सकता है. इस दर्शन को निरीश्वरवादी दर्शन भी कहा जाता है. कपिल के 'सांख्य प्रवचन सूत्र' के अनुसार भगवान की कल्पना अनावश्यक है क्योंकि किसी भी प्रमाण के आधार पर भगवान का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता.

योगदर्शन के आधारभूत सिद्धांत तो सांख्य से ही मेल खाते हैं मगर इस में निजी भगवान की कल्पना कर ली गई है. व्यवहार में योग मन और शरीर को अनुशासित करने की क्रियाओं का दर्शन माना जाता है. स्वस्थ तन मे स्वस्थ मन के माध्यम से ही मुक्ति संभव मानी गई है पूर्व मीमांसा दर्शन में मुख्य रूप से वेदों की ही व्याख्या की गई है और वेदो को ही धर्म की धुरी माना गया है. वेदांत दर्शन उपनिषदों के ब्रह्म को ही सत्य और जगत को मिथ्या मानता है. इस का प्रधान प्रणेता शंकर था वेदांत की दो धाराएं थीं: अद्वैत और द्वैत. शंकर अद्वैत के पक्षधर थे. वेदांत दर्शन ने ही आगे चल कर भक्ति की विचारधारा को जन्म दिया जिस के अनुसार ज्ञान, विवेक और तर्क अनावश्यक वस्तुएं घोषित कर दी गईं.

चाहे ब्रह्म और जीव को एक मानने वाले वेदांती हों, चाहे दो मानने वाले, मगर उन सब की दृष्टि मे सत्य तो ब्रह्म ही है, जीव और जगत नहीं इसी विचारधारा ने हमारे देश का सब से अधिक अहित किया है इसी के फलस्वरूप अंधविश्वास, जहालत, काहिली, अकर्मण्यता, गुलामी और हीनभाव तथा दब्बूपन फैले और इन बातों ने हिंदुओं को दुनिया में प्रगति की दौड़ में बेतरह पीछे धकेल दिया है.

पुरुष (स्व) के प्रभाव से प्रकृति का विकास मानने वाले सांख्य दर्शन जैसी वैज्ञानिक विचारधारा भी इसी देश की सांस्कृतिक धरोहर है मगर इसे विकसित करने की बजाए ब्रह्म के चक्रव्यूह मे फंसाने का सारा जाल जिन निहित स्वार्थों ने बिछाया उसी साजिशी शतरंज के महत्त्वपूर्ण मोहरो मे थे हमारे तुलसीदास.

ज्ञान के मार्ग पर चलते हुए जो शंकाएं उत्पन्न होती थीं और कर्म के पथ

पर जो श्रम करना पडता था, उन सब से छुट्टी पाने का सहजतम उपाय यही सुझाया गया कि मस्तिष्क के सारे किवाड़ बंद कर के केवल भक्ति मे लग जाओ. हिंदुओ मे भक्ति की धारा मुख्य रूप से विष्णु और शिव की ओर ही बहती रही. विष्णु वैदिक देवता था और शिव द्रविड देवता था. राम को भी विष्णु का ही अवतार माना गया. इस प्रकार तुलसी ने उत्तर और दक्षिण भारत मे एक साथ ब्राह्मण पुरोहितवाद का प्रचार करने के उद्देश्य से रामचरितमानस के माध्यम से राम की शिव के मुंह से प्रशंसाएं कराई हैं और शिव की राम के मुह से.

उन दिनो शैवों और वैष्णवों का जो झगड़ा चल रहा था, वह ब्राह्मण पुरोहितवाद के प्रचार कार्य में बहुत बडी बाधा उत्पन्न कर रहा था. इसलिए उस बाधा को दूर करना भी कूटनीतिक दृष्टि से अनिवार्य था. राम के मुंह से यह कहलवाना भी उसी बाधा की ओर इंगित करता है कि :

सकर प्रिय मम द्रोही, सिव द्रोही मम दास,
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक मह वास

जिन राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थों ने भारतीय समाज के एक वर्ग को बिलकुल निठल्ला पाल कर उस से केवल प्रचार कार्य कराया, उन्हीं स्वार्थों ने विदेशों पर भी धार्मिक धावे बुलवाए जावा, सुमात्रा, कंबोडिया, बर्मा, मलाया, थाईलैंड आदि देशो मे भी प्रचारक और सैनिक एक साथ भेजे गए और जिस प्रकार भारत मे छोटेमोटे मतभेद भुला कर अन्य धार्मिक संप्रदायों के साथ साठगाठ की गई उसी तरह विदेशो मे भी. उदाहरणार्थ, जावा और दक्षिणपूर्व एशिया के कई देशो मे हिंदू और बुद्ध के बीच समझौते हुए. यहां तक भी हुआ कि एक ही देश मे शैवो और वैष्णवो के मदिर बनाए गए फलस्वरूप दक्षिण-पूर्व एशिया के हिंदू राजाओं ने अपनी दैवीय शक्ति की स्थापना कर ली, जब कि उस काल के भारतीय राजा निज को दैवीय दूत के रूप मे स्थापित नहीं कर सके थे.

ईसा की तेरहवीं शती मे जावा मे शैवों और बौद्धो ने मिल कर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया संयुक्त दलो की हुकूमतो सरीखी इस धार्मिक राजनीति के पीछे सुनियोजित ढंग से निहित स्वार्थों के षड्यत्र स्पष्ट देखे जा सकते हैं और इस अतर्राष्ट्रीय षड्यत्र का नियत्रण होता था भारत के तत्कालीन धर्म शिक्षा के केंद्रो से जिन्हें इतिहासकार ने भी भूल से विश्वविद्यालय मान लिया. ऐसे केंद्रो मे नालंदा का नाम खास तौर पर लिया जा सकता है पूर्वी बिहार के इसे केंद्र मे देशविदेश के प्रचारको को प्रशिक्षित किया जाता था

किसी देश मे विजय प्राप्त करने के बाद वहा पर भी इस प्रकार के प्रशिक्षण केंद्र खोल दिए जाते थे जिस से कि वहां की आम जनता को सास्कृतिक रूप से गुलाम बनाए रखा जा सके. उदाहरणार्थ, सुमात्रा मे 'श्रीविजय',नामक केंद्र था जहां सस्कृत पढ़ाई जाती थी स्मरण रहे कि संस्कृत का सबंध सिर्फ धर्म से

था श्रौर धर्मग्रंथ पढ़नेपढ़ाने के लिए ही संस्कृत पढ़ीपढाई जाती थी. सुमात्रा स्थिति श्रीविजय प्रशिक्षण केंद्र का जो प्रधान पुजारी था उस का नाम धर्मकीर्ति था. इसी धर्मकीर्ति के द्वारा सन 1011 से 1023 तक प्रशिक्षण दे कर श्रीज्ञान नामक एक प्रचारक तिब्बत मे धर्मप्रचार के लिए भेजा गया था. स्मरण रहे कि श्रीज्ञान भारतीय था श्रौर उसे शिक्षा पाने के लिए सुमात्रा भेजा गया, फिर वहा से प्रचार कार्य के लिए तिब्बत मे भी उसे बुद्ध धर्म मे सुधार करने के उद्देश्य से भेजा गया.

इसी प्रसंग मे एक बात श्रौर ध्यान देने की है कि श्रंतर्राष्ट्रीय मंच पर जिस बुद्ध धर्म के साथ कंधे मिला कर हिंदू धर्म चला, उसे वह श्रपने देश में स्वीकार नहीं कर सका. चीन श्रौर जापान में बुद्ध धर्म के प्रचार का इतिहास देखने से स्पष्ट पता चलता है कि इस में हिंदुश्रों की भूमिका लगभग वैसी रही जैसी कि यहूदियो की ईसाई धर्म के प्रति. ईसाई धर्म पैदा किया यहूदियो ने मगर उसे स्वीकारा कभी नहीं. लेकिन दक्षिणपूर्व एशिया मे हिंदुश्रों की भूमिका बुद्ध धर्म के प्रति श्रलग रही. हो सकता है, यह उस समय की राजनीतिक स्थितियों के कारण कोई विवशता रही हो या कोई गहरी चाल

जो भी हो, बुद्ध धर्म के साथ इतना विरोध होते हुए भी राजनीतिक मोर्चे में मजबूती लाने के विचार से ही शायद पुराणों की दशावतार सूची मे गौतम बुद्ध का भी नाम जोड़ना पड़ा हो!

इस पृष्ठभूमि के बाद श्रब हम मध्ययुग मे श्राते हैं, यानी सूफियो श्रौर संतो के युग में. राजनीतिक भाषा मे श्रब हम 'मुसलिम काल' मे श्राते हैं जब कि हिंदू राजा श्रपनी सत्ता खो चुके थे. हार की खीझ के साथसाथ फिर से शक्ति प्राप्त करने की लालसा उन मे मौजूद थी. धर्म श्रौर समाज के क्षेत्र की स्थिति यह थी कि पुरानी श्रास्थाएं एक के बाद एक टूटटूट कर गिर रही थीं. राजाश्रो की दैवीय शक्ति के प्रति जनता के वहम भी भंग हो रहे थे. वैदिक मंत्रों मे विश्वास कम होने लगा था. देवीदेवताश्रों के श्रासन डोलने लगे थे

जिस प्रकार पहले श्रार्यों ने द्रविड़ो श्रादि पर दमन करने की नीति मे विफल हो कर बाद मे मेलमिलाप श्रौर सांस्कृतिक श्रादानप्रदान द्वारा भारतीय जनता पर शासन करने की चाल चली थी, उसी तरह श्रब मुसलिम बादशाहों ने एक प्रकार का सांस्कृतिक क्रांति का श्रांदोलन शुरू कर दिया था. सूफी मत का भारत में श्रायात करने से ले कर श्रकबर के 'दीनए इलाही' तक सब इसी दिशा में किए गए प्रयास थे. इस में कोई सदेह नहीं कि मुगल बादशाह इस में बहुत हद तक कामयाब भी हुए. भारत के ही लोगों ने श्रौर यहीं की पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से संत परंपरा के कवियो ने गांवगांव श्रौर नगरनगर मे घूम कर जो प्रचार किया वह निश्चित रूप से इस की सफलता का प्रमाण है.

मगर इस सब का एक हितकर पक्ष भी सामने श्राया. वह यह कि जनसामान्य मे पनप रहे कई श्रंधविश्वास समाप्त होने लगे श्रौर श्रनगिनत रूढियां

टूटने लगीं. ईसा की पंदरहवीं शती के रामानंद और उस के शिष्य रामानुज की शिष्य परंपरा मे दरजनों कवि, प्रचारक ब्राह्मण पुरोहितवाद पर कुठाराघात करने लगे थे कबीर जाति का जुलाहा था. दादू भी उसी जाति का था. इसी प्रकार दादू के चेलों मे से रज्जब आदि थे सभी ने जातपांत और अंधविश्वासों के खिलाफ जेहाद सा बोल दिया. उन्होंने हिंदू और मुसलिम तक के भेद मिटा देने की कोशिश की और मूर्तिपूजा के विरुद्ध प्रचार किया, ब्राह्मणों और मुल्लाओं की पोलें खोल कर रख दीं तथा कर्मकांड की धज्जिया उडानी शुरू कर दीं.

फलस्वरूप तीर्थों आदि का महत्त्व घटने लगा ब्राह्मण और पंडेपुजारी भूखों मरने लगे जनता मे सांस्कृतिक जागरण शुरू हुआ तर्कशक्ति पैदा होने लगी. आलस्य और अकर्मण्यता घटने लगी. मेहनत के प्रति आकर्षण और आगे बढने की ललक पैदा होने लगी नतीजा यह हुआ कि जनता पराजित राजाओं, रजवाड़ों और सामंतों को भूलने लगी. अकबर के शासनकाल तक पहुंचतेपहुचते भारत की लगभग कायापलट हो चली थी. इस बात की साक्षी हमें इतिहास से मिलती है कि हिंदुओं और मुसलमानों के बीच रोटीबेटी तक के रिश्ते होने शुरू हो गए थे थोडीबहुत शाति और सुखसमृद्धि भी स्थापित होने लगी थी. अल्लाह और राम तथा 'वेद' और 'कुरान मे भेद भुलाया जाने लगा था और धार्मिक सकीर्णता तथा जातीय घेरो मे दरारें पड़ चुकी थीं.

पर ये सब स्थितिया भारतीय सामतों और अपदस्थ हिंदू राजाओं तथा निठल्ले ब्राह्मण वर्ग के हितों के विरुद्ध थीं. इसलिए सोलहवीं शताब्दी में उन्हें यह फिर से अनिवार्य लगा कि जनता को गुमराह किया जाए, धर्म की ध्वजा फहराई जाए, वर्णव्यवस्था को फिर जीवित किया जाए, राजाओं के दैवी अधिकार प्रमाणित किए जाएं, लोगों के मन में तीर्थो और व्रतउपवासों के प्रति आस्था जगाई जाए, देवीदेवताओं के टूटे हुए बुत फिर से खड़े किए जाएं संक्षेप मे यह कि अवैज्ञानिक चितन का जोरशोर मे प्रचार करा के जनता को फिर से अंधकार की चादर से ढक कर अपना उल्लू सीधा किया जाए, यानी खोई हुई सत्ता प्राप्त कर ली जाए.

राजनीतिक स्तर पर तो कोई तर्क ऐसा था नहीं जो जनता को आश्वस्त कर सकता, क्योंकि पुराने हिंदू राजाओं की अपेक्षा अकबर का शासनकाल सामान्य जनता के लिए कहीं अधिक सुखकर सिद्ध हो चुका था इसलिए अब एक मात्र क्षेत्र धर्म का ही बचा था जिस की चाड़ मे निहित स्वार्थों का नाटक हो सकता था

अत ऐसी परिस्थितियों मे चमत्कारी ढग से रामचरितमानस की रचना और उस के व्यापक प्रचार की बात पर यदि विचार किया जाए तो हर चीज शीशे की तरह साफ हो कर सामने आने लगती है.

राजनीति, धर्म, नैतिकता, समाजशास्त्र, साहित्य और ज्ञानविज्ञान की जितनी भी शाखाएं हैं, सब की सब धर्मग्रंथो मे ही सम्मिलित मान कर चलने

की भारतीय परंपरा से लाभ उठा कर रामचरितमानस की आड़ मे आज से कोई चार सौ वर्ष पूर्व जो षड्यंत्र रचा गया था, उस के कुपरिणाम आज तक हम भुगत रहे हैं. आत्महीनता, अंधविश्वास, दब्बूपन, कायरता, नियतिवाद और अकर्मण्यता नामक जितनी भी घातक बीमारियो के जरासीम आज हिंदुओ के दिमाग की रगों मे बह रहे हैं, उन मे से अधिकांश का स्रोत तुलसी कृत रामचरितमानस ही है. ●

रामचरितमानस में नारी

रामचरितमानस का उत्तर भारत मे ही नहीं, अन्यत्र भी जहां कहीं इस का पारायण होता है, अद्भुत प्रभाव है. इस का वही प्रभाव, इस की वही सामर्थ्य इस बात का जोरदार तकाजा करती है कि अपनी जिन मान्यताओ को तुलसीदास ने रामचरितमानस मे स्थापना की है, जिन आदर्शों को जीवन का ध्रुव-तारा बना कर उन की ओर निर्देश किया है, उन का न केवल इतिहास के एक विद्यार्थी की दृष्टि से ही, बल्कि एक सामान्य जीवन शोधक और जीवन आराधक की दृष्टि से भी हम उन मान्यताओं तथा उन आदर्शों का नए सिरे से मूल्यांकन करें. निश्चय ही रामचरितमानस की गिनती उन मुर्दा ग्रंथों मे नहीं की जा सकती जिन की कोई भी इतिहास का विद्यार्थी बैठाबैठा शव परीक्षा करता है. यह तो उन जीवित सद्ग्रंथों मे है जो न केवल आज के युग को प्रभावित कर रहे हैं, बल्कि जिन का प्रभाव सुदीर्घ भविष्य तक बना रहने वाला है.

हम यहा इस बात का अध्ययन करना चाहते हैं कि मातृशक्ति अथवा स्त्रियों के संबध मे तुलसीदास की क्या मान्यताएं थीं और जिन आदर्शों की ओर उन्होंने सीधे अथवा व्यंजना से सकेत किया है, आधुनिक मान्यताओं की कसौटी पर कसे जाने पर वे किस हद तक प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय हैं.

प्रत्येक महान ग्रंथ के कुछ मंत्र होते हैं जो उस ग्रंथ अथवा उस के रचयिता की मूल भावनाओ को समझने मे सहायक होते हैं. रामचरितमानस के ऐसे अनेक मंत्रो मे एक है :

कीन्हे प्राकृत जन गुन गाना, सिर धुनि गिरा लगति पछिताना

—बाल काड, 20-4

(साधारण जनो का गुणगान करने से सरस्वती सिर धुनधुन कर पछताने लगती हैं)

यह चौपाई पुकारपुकार कर कह रही है कि तुलसीदास को जनसाधारण का गुणगान करना एकदम अभिप्रेत नहीं था. रामचरितमानस मे जहांजहां

भी जनसाधारण अथवा उन के प्रतिनिधियों का चरित्रचित्रण है, वह तुलसीदास के अद्भुत काव्यकौशल का परिचायक होते हुए भी प्रसगवश ही है. तुलसीदास के रामचरितमानस का आध्यात्मिक उद्देश्य राम का गुणगान है और सामाजिक उद्देश्य मर्यादा पुरुषोत्तम रामचद्र तथा वैसे ही कौशल्या, सीता, भरत, हनुमान, आदि आदर्श पात्रो की रचना.

आगे की पंक्तियों में हम तुलसीदास के स्त्री पात्रों की ही चर्चा करेंगे. अन्यों की चर्चा भी प्रसंगवश अनिवार्य होगी ही.

बाल कांड का आरंभ ही है. तुलसीदास सब छोटेबड़ों की वंदना कर रहे हैं सियापति रामचंद्र की ओर संकेत करते हैं :

सिय निंदक अघओघ नसाए, लोक बिसोक बनाइ बसाए.

—बाल कांड, 31-2.

(उन्होने सीता की निंदा करने वाले धोबी के पापसमूह का नाश कर उसे शोक रहित वैकुंठ लोक में बसा दिया.)

कथा कुछकुछ यही तो है न कि एक धोबी ने रामचंद्र की निंदा की कि जिस सीता को रावण गोद में उठा कर ले गया था और जो बहुत दिन तक उस के घर में रही, उसी को रामचंद्र ने पुनः अंगीकार कर लिया. यह स्थल उस प्रसंग की विस्तृत आलोचना करने का नहीं है, किंतु यदि यह प्रश्न पूछा जाए कि मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र के इस त्याग के मूल में राजनीति की नहीं, लोकाराधना की नहीं, किंतु स्वच्छ नीति की कौन सी उदात्त भावना है, तो सचमुच उत्तर आसान नहीं. मातृशक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व की इतनी अवहेलना! इस वंदनक्रम में है :

जनकसुता जगजननि जानकी, अतिसय प्रिय करुणानिधान की.
ताके जुग पदकमल मनावों, जासु कृपा निरमल मति पावों.

—बाल कांड, 33 4

(जनक की कन्या, जगत की माता और करुणानिधान रामचंद्र की अत्यत प्यारी जानकी के दोनों चरणकमलो को मैं प्रणाम करता हूं. उन की कृपा से मैं निर्मल बुद्धि पाऊं.)

यहां जो प्रणाम है, वह जगत की माता जानकी को है. किसी प्राकृत देवी की तो कभी हो ही नहीं सकता.

तुलसीदास के रामचरितमानस की यह विशेषता है कि यह अध्यात्म के ऊंचे से ऊंचे स्तर से प्राकृत जनों के स्तर तक चढ़ताउतरता रहता है. रामचंद्र के प्रकृत रूप का वर्णन पढ़िए :

नारि बिरह दुखु लहेउ अपारा, भयउ रोषु रन रावनु मारा.

—बाल कांड, 67-4.

(उन्होंने—रामचंद्र ने—स्त्री वियोग का अपार दुख पाया था और क्रोधित हो कर रावण को रण में मारा था.)

विषयांतर न हो जाए, इसलिए यह आगे की कथा विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है :

एक बार त्रेता युग माही, संभु गए कुभज रिषि पाही,
सग सती जगजननि भवानी, पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी.

—बाल काड, 69-1.

(त्रेता युग मे एक बार महादेवजी अगस्त्य मुनि के पास गए. उन के साथ सती जगतजननी भवानी भी थीं ऋषि ने उन को सारे जगत का ईश्वर जान कर उन की अच्छी तरह पूजा की.)

इस स्थल पर महादेवजी तथा रामचंद्र के आपसी सबध को ले कर जगत-जननी भवानी के मन मे एक संदेह पैदा हो जाता है

संकर जगत वद्य जगदीसा, सुर नर मुनि सब नावत सीसा,
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परमाना, कहि सच्चिदानंद परधामा

—बाल काड, 72-3,4

(जिन शिवजी की वंदना सारा जगत करता है, जो सारे जगत के स्वामी हैं और जिन को देवता, मनुष्य, मुनि सब सिर नवाते हैं, उन्होंने एक राजपुत्र को सच्चिदानंद और मोक्षधाम कह कर प्रणाम किया)

यह एक प्रकार से सारे अवतारवाद पर ही की गई शका है. स्वयं तुलसीदास ने इसे अत्यंत स्पष्ट रूप मे व्यक्त किया है:

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद,
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद

—बाल काड, 73.

(जो ब्रह्म सब मे व्याप्त तथा माया, जन्म, कला, चेष्टा और खड से रहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते,वह क्या देह धारण कर के मनुष्य हो सकता है?)

अंतरयामी शिव ने भवानी की यह शका जान ली, बोले:

सुनहु सती तव नारि सुभाऊ, संसय अस न धरिय उर काऊ

—बाल काड, 73-3

(हे सती, सुनो, तुम्हारा स्त्री का स्वभाव है ऐसा सदेह मन मे कभी नहीं करना चाहिए.)

ज्ञान का इतिहास साक्षी है कि संदेह ही उस का जनक है. किंतु यहा संदेह करना ही मना नहीं किया गया है किंतु उसे स्त्री स्वभाव कह कर स्पष्ट रूप से स्त्रीजाति की भी अवमानना की गई है

इस संदेह को मिटाने के लिए शिव, भवानी को राम की परीक्षा लेने का आदेश देते हैं. भवानी सीता का रूप धारण कर रामचद्र की परीक्षा लेने का प्रयास करती हैं. इस पर तुलसीदास की टीका है:

"सती कीन्ह चह तहहु दुराऊ, देखहु नारि सुभाऊ प्रभाऊ"

—बाल काड, 75-3

(स्त्रियों के स्वभाव का प्रभाव तो देखो कि सती ने उन—सर्वज्ञ—से भी छिपाव करना चाहा.)

यह सती का व्यक्तिगत दोष नहीं है—यह स्त्रियों का स्वभाव ही है.

वापस लौटने पर जब भवानी से शिव ने पूछा कि बताओ तुम ने कैसे क्या परीक्षा ली, तो भवानी यथार्थ बात प्रकट न कर थोड़ा झूठ बोल बैठती हैं:

कछु न परीछा लीन्हि गोसाईं, कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं

—बाल कांड, 781

(स्वामिन, मैं ने कुछ परीक्षा नहीं ली. आप ही की तरह उन्हे प्रणाम किया.)

किंतु शिव सब जान लेते हैं. तब भवानी को स्वाभाविक दुख होता है. यह दुख यों व्यक्त हुआ है:

सती हृदय अनुमान किय सब जानेउ सर्वज्ञ,
कीन्ह कपटु मैं संभु सन नारि सहज जड़ अज्ञ"

—बाल कांड, 80

(सती ने अपने जी मे अनुमान किया कि सर्वज्ञ शिव ने सब जान लिया. मैं ने शिव से कपट किया है. स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख और नासमझ होती हैं)

यहां फिर स्त्रियों का साधारणीकरण कर के एक स्त्री के ही मुंह से उन्हें मूर्ख और नासमझ कहलाया गया है. जो स्वभाव से ही मूर्ख और नासमझ हैं, क्या उन्हे किसी भी विधि से विज्ञ और समझदार बनाया जा सकता है? नहीं.

शिव ने स्वयं ही भवानी को रामचंद्र की परीक्षा लेने के लिए भेजा था. वह पति की अनुज्ञा पा परीक्षा लेने चली गई—यही उन का महान अपराध हो गया. क्योंकि रामचंद्र की परीक्षा लेने के लिए भवानी ने सीता का रूप धारण कर लिया था इसलिए शिव ने अब उन्हें पत्नी रूप मे ग्रहण करना अनुचित जान भवानी को त्याग दिया. निरसंदेह यह रामभक्ति की पराकाष्ठा और शायद उस की एक आदर्श कसौटी भी है. किंतु इस सारे कथानक मे मातृशक्ति नारी की क्या स्थिति रहती है, यह भी तो विचारणीय है. भवानी का दुख और उन की समझ के अनुसार उन का मूल कारण इस प्रकार व्यक्त हुआ है:

मैं जो कीन्ह रघुपति अपमाना, पुनि पति वचन मृषा करि जाना
सो फल मोहि बिधाता दीन्हा, जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा

—बाल कांड, 82-1,2

(मैं ने रामचंद्र का अपमान किया. फिर पति के वचन को झूठा माना. सो उस का फल विधाता ने मुझ को दिया और जो उचित था वही किया.)

भवानी सीता का रूप धारण कर रामचंद्र के आगेपीछे चलने लगी थी. यही भवानी द्वारा रामचंद्र का अपमान हुआ. हमें लगता है अवमान शब्द पर्याप्त होता, अपमान कुछ अधिक गंभीर है, किंतु आत्मग्लानि मे ऐसा होता ही है. जो बात यहां ध्यान देने की है, वह यह कि भवानी को अपना मिथ्याभाषण

करने का अनुताप नहीं है, उन्हें सब से अधिक अनुताप पति के वचन को ही झूठा मानने का है. पति के हर वचन को बिना सोचेसमझे त्रिकाल सत्य मानने में कौन सी और कहां की आदर्शवादिता है? हो सकता है कि इस की कोई पराध्यात्मिक व्याख्या की जा सके, किंतु सामाजिक दृष्टि से तो यह कोई बड़ा कल्याणकारी आदर्श प्रतीत नहीं होता. यह तो पति के किसी भी कथन पर प्रश्नचिन्ह लगाना ही पाप हो गया.

भवानी के इस अपराध से शिव भवानी की ओर से एकदम विमुख हो गए. निस्संदेह यह शिव के त्याग का ज्वलंत उदाहरण है. किंतु इस त्याग का भवानी के लिए यही अर्थ था कि उन्हें सत्तासी हजार वर्ष तक अकथनीय दारुण दुख सहन करना पड़ा.

अब आगे दक्ष के प्रजापति बनने की कथा और भवानी के वहां जाने की कथा बड़ी ही कारुणिक है. शिव ने भवानी को समझाया:

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा, जाइअ बिनु बोलेहु न संदेहा.
तदपि बिरोध मान जहं कोई, तहां गए कल्यानु न होई

—बाल कांड, 45-2

(इस में संदेह नहीं कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बुलाए भी जाना चाहिए. परंतु जहां कोई विरोध मानता हो उस के घर जाने में भलाई नहीं होती.)

असंभव नहीं था कि यदि शिव ने भवानी को त्यागा न होता तो भवानी शिव की बात अवश्य मान लेतीं. किंतु जब नारी को पति सर्वथा त्याग दे, तो वह पिता के घर भी कैसे न जाए! किंतु यह जाना सुखद नहीं हुआ. लिखा है:

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता, सुतिहि बिलोकि जरे सब गाता

—बाल कांड, 86-2

(दक्ष प्रजापति ने अपनी पुत्री सती भवानी की कुछ कुशलवार्ता नहीं पूछी. उलटे उन्हें देख कर उस का सारा शरीर जल गया.) लिखा है:

सती को क्रोध आना स्वाभाविक था. यद्यपि पति ने उन्हें त्याग दिया था, तो भी वह पति की अवहेलना कैसे सहन कर सकती थीं? लिखा है

जगदातमा महेसु पुरारी, जगतजनक सब के हितकारी,
पिता मंदमति निंदत तेही, दच्छ सुक्र संभव यह देही
तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू उर धरि चंद्रमौलि वृषकेतू,
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा, भयउ सकल मख हाहाकारा,'

—बाल कांड, 87-4,3.

(त्रिपुर के शत्रु शिव महाराज सारे जगत की आत्मा हैं. वह सब के उत्पन्न करने वाले और हितकारी हैं. मेरा मूर्ख पिता दक्ष उन की निंदा करता है. और यह मेरा शरीर उसी पिता के अंश से उत्पन्न हुआ है, इसलिए चंद्रमा को धारण करने वाले और वृषकेतु शिव का ध्यान करते हुए मैं इस शरीर को अभी छोड़

देती हूं. इतना कह कर सती ने योग की अग्नि से अपना शरीर भस्म कर डाला. यह देख कर सारे यज्ञ मंडप में हाहाकार मच गया.)

यदि शिव के ईश्वरत्व की तथा भवानी के जगदंबा होने की बात को थोड़ी देर के लिए भूल कर दोनों को सामान्य पति और पत्नी के रूप मे ग्रहण किया जाए, तो इस पौराणिक कथानक का इतना ही सार निकलता है कि पति परित्यक्ता तथा पिता द्वारा अनादृत नारी के लिए तुलसीदास की कल्पना के अनुसार जल मरने के अतिरिक्त—भले ही वह योगाग्नि हो—दूसरा मार्ग नहीं.

अब भवानी पर्वतराज की कन्या हो कर जन्म ग्रहण करती है. जन्मांतरवाद समस्त भारतीय चिंतन की सामान्य मान्यता है. तदनुसार पार्वती की इस जन्म में भी सब से बड़ी आकांक्षा यही है कि वह अपने पूर्वजन्म के पति शंभु को ही प्राप्त करे. काश, शंभु की भी कुछ ऐसी ही प्रार्थना होती. शंभु के लिए भी पार्वती के प्रिया होने मे संदेह नहीं है. किंतु तपस्या पार्वती को ही करनी पड़ती है और वह तपस्या कैसी है?

संवत सहस मूल फल खाए, सागु खाइ शत बरष गंवाए.
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपवासा
बेलपाति महि परै सुखाई, तीन सहस संवत सोइ खाई.
पुनि परिहरे सुखानेउ परना, उमहि नाम तब भयउ अपरना.'

—बाल कांड, ७-२,४

(एक हजार बरस तक उन्होंने फलमूल खाए और फिर सौ बरस सागपात खा कर बिताए. कुछ दिन जल और वायु पर ही बीते. फिर कुछ दिन कठिन उपवास किया. तीस हजार बरस तक उन्होंने धरती में पड़े हुए सूखे बेलपत्र ही खाए. फिर सूखे पत्ते (पर्ण) भी छोड़ दिए. उस से उमा का नाम अपर्णा हुआ.)

इतनी तपस्या करने पर भी शिव के पार्वती से दूरदूर रहने के संकल्प में कोई अंतर नहीं पड़ता. तब स्वयं रामचंद्र को आग्रह करना पड़ता है:

अब बिनती मम सुनहु सिव जौ मो पर निज नेहु,
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि मागे देहु.

—बाल कांड, १००

(उन्होंने कहा कि हे शिव, यदि मुझ पर तुम्हारा स्नेह है तो तुम अब मेरी बिनती सुनो. तुम मुझे यही मांगने दो कि जा कर पार्वती के साथ विवाह कर लो.)

शिव के गले यह बात उतरती नहीं. किंतु वह उसे स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि:

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी, बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी.

—बाल कांड, १००-२

(माता, पिता, गुरु तथा प्रभु की आज्ञा का बिना विचारे ही उसे शुभ मान कर पालन करना चाहिए.)

बालको के लिए तो यह बात निसंदेह व्यावहारिक है, क्योंकि उन मे अपने हितअहित को स्वयं जाननेसमझने का विवेक जाग्रत नहीं होता. किंतु सभी के लिए यह विचारहीन आज्ञापालन का उपदेश तो कुछ विशेष विवेकवर्धक बात नहीं मालूम देती.

यह सब होने पर भी शिव का मन संतुष्ट हुआ प्रतीत नहीं होता. अभी भी वह सप्त ऋषियों से कह रहे हैं:

पारवती पहिं जाइ तुम्ह प्रेम परीछा लेहु
गिरिहिं प्रेरि पठयेहु भवन दूरि करेहु सदेहु.

—बाल कांड, 101

(तुम पार्वती के पास जा कर उस के प्रेम की परीक्षा लो और हिमवान को भेज, पार्वती को घर भिजवा कर मेरे संदेह को दूर करो.)

यदि हम शिव को पुरुष पक्ष का और पार्वती को स्त्री पक्ष का प्रतिनिधि मानें तो सचमुच जन्मजन्मांतर तक तपस्या करते रहने के बाद स्वयं रामचंद्र के आग्रह करने के बाद भी यह प्रेम परीक्षा और संदेह की बात बडी ही निर्मम और अत्यंत विघातक है.

जो भी हो, शिवपार्वती विवाह रामचरितमानस का एक बड़ा ही सरस, कुतुहलवर्धक प्रकरण है.

पार्वती की माता मैना पार्वती को शिव को सौंप रही है. उन की विनम्र प्रार्थना है.

नाथ उमा मम प्रान सम गृह किंकरी करेहु,
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न वरु देहु

—बाल कांड 125

(हे नाथ, यह उमा मुझे मेरे प्राणों के समान है. अब इसे अपने घर की दासी बनाइए. अब इस के सब अपराधो को क्षमा करना बस, प्रसन्न हो कर यही वर दीजिए)

और पार्वती को भी गोद मे बैठा कर सस्नेह कहा है:

करेहु सदा संकर पद पूजा, नारि धरम पति देव न दूजा.

—बाल कांड, 125-2

(हे पुत्री, तू सदा शिव के चरणों की सेवा करना. नारियों के धर्म मे पति के सिवा दूसरा देवता नहीं है)

समय और स्थानभेद से भले ही कुछ अंतर हो, अन्यथा न केवल भारतीय समाज, बल्कि सर्वत्र ही नारी की स्थिति बहुत कुछ ऐसी ही रही है, विशेष रूप से जब से मातृसत्ता युग समाप्त हुआ है. तभी तो अगली ही चौपाई मे तुलसी दास की भी पीड़ा पार्वती की माता मैना के मुख से फूट पड़ी है:

कत विधि सृजी नारि जग माही, पराधीन सपनेहु सुख नाही

—बाल कांड, 125-3

(पता नहीं विधाता ने नारी को यह कैसा जन्म दिया है. बेचारी पराधीन का स्वप्न मे भी सुख नहीं.)

अब शिव और पार्वती पतिपत्नी के रूप मे रह रहे हैं. कैसा प्राकृत वर्णन है:

करहिं विविध विधि भोग बिलासा, गनन्ह समेत बसहिं कैलासा.
हर गिरिजा बिहार नित नएऊ, एहि बिधि बिपुल काल चलि गएऊ

बाल कांड, 126-3

(शिव और पार्वती तरहतरह के भोगविलास करते हुए अपने गणो के साथ कैलाश पर रहने लगे. शिव और पार्वती नित्य नए बिहार करते थे इस प्रकार बहुत सा समय बीत गया.)

कैलाश निवास के समय पार्वती शिव से रामकथा सुनना चाहती हैं. वह शिव से बहुतबहुत निहोरा करती हुई कहती हैं:

जदपि जोषिता नहिं अधिकारी, दासी मनक्रम वचन तुम्हारी
गूढउ तत्व न साधु दुरावहिं, आरत अधिकारी जह पावहिं

—बाल कांड, 133-1

(यद्यपि कोई भी स्त्री इस के सुनने की अधिकारी नहीं है, किंतु मैं तो मन, वचन और कर्म से तुम्हारी दासी हूं. साधुजन जब सुनने के लिए आतुर किसी अधिकारी को पाते हैं तो गूढ बात भी छिपा कर नहीं रखते.)

पार्वती को अपनी प्रार्थना दोहरानी पड़ती है:

अब मोहि आपनि किंकरि जानी जदपि सहज जड नारि अयानी
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू, जो मो पर प्रसन्न प्रभु अहहू

—बाल कांड, 143-2-3.

(यद्यपि स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन होती हैं पर अब आप मुझे अपनी दासी जान कर, यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो कुछ मैं ने आप से पूछा है वह सब कहें)

यह हर स्त्री पात्र का स्वयं अपने ही मुंह से स्त्रियो को स्वभाव से ही अनधिकारिणी, मूर्खा और अज्ञानी कहना तथा बारबार कहना किसे नहीं खटकेगा?

रामजन्म हो चुका है. चारों भाइयों के जन्म की कथा इस बात का प्रमाण है कि प्रायः सभी संप्रदायों ने अपनेअपने इष्टदेवों के जन्म को कुछ न कुछ अलौकिक परिधान पहनाया है. रामलक्ष्मण बड़े होते हैं. विश्वामित्र अपने यज्ञों के रक्षार्थ राजा दशरथ से याचना कर रामलक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं. लिखा है:

चले जात मुनि दीन्हि देखाई, सुनि ताड़का क्रोध करि धाई
एकहि बान प्राण हरि लीन्हा, दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा

बाल कांड, 241-3

(जातेजाते मुनि ने ताड़का राक्षसी दिखा दी. वह राक्षसी इन तीनों का

उस रास्ते निकलना सुन कर क्रोधित हो दौडी. रामचंद्र ने एक ही वाण से उस के प्राण हर लिए और उसे गरीवनी जान निज पद दे दिया)

यदि रामचंद्र को ईश्वर मान, तुलसीदास के 'ईस' के बारे मे कुछ विचार ही न किया जाए, तब तो खैर कुछ कहना ही नहीं. अन्यथा इस मे कहां का आर्य शौर्य है कि निशस्त्र दौडी चली आती एक अबला को दूर से ही बाण मार कर उस की हत्या कर दी गई? और फिर आगे यह लिखना क्या जले पर नमक छिड़कने के समान नहीं है कि उसे गरीवनी जान अपना पद अर्थात वैकुंठ दे दिया?

ताड़का वध की बात को यहीं छोड़ हम आगे बढ़ें. थोड़ी ही दूर जाने पर लिखा है:

आश्रम एक दीख मग माहीं, खग मृग जीव जतु तह नाही
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी, सकल कथा मुनि कही विसेखी

—बाल कांड, 242-6

(मार्ग मे उन्होने एक आश्रम देखा जिस मे कोई पशुपक्षी और जीवजंतु नहीं थे. वहां एक शिला को देख कर रामचंद्र ने मुनि से पूछा. मुनिवर ने सारी कथा विस्तार से कह सुनाई)

कथा का सक्षेप इतना ही है:

गौतम नारि साप वस उपल देह धरि धीर,
चरण कमल रज चाहती कृपा करहु रघुवीर

—बाल काड,243

(हे रघुवीर, गौतम की स्त्री ने शाप के कारण बड़े धीरज से पत्थर का शरीर धारण कर रखा है यह आप के चरणकमलों की धूल चाहती है. इस पर कृपा कीजिए.)

विस्तृत कथा इतनी ही है कि इंद्र और चंद्रमा ने मिल कर गौतम ऋषि तथा गौतम नारी दोनो को ठगा. गौतम नारी ने इद्र को गौतम ऋषि समझ कर ही उस से सहवास किया था. बाद में गौतम ऋषि के आने पर और इंद्र से पूछने पर उसे पता लगा कि वह ठगी गई है. असाधारण विकट परिस्थिति में अहिल्या ने झूठ का आश्रय लिया. ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि तू पत्थर हो जा.

अहिल्या दो अपराधो की अपराधिनी थी—परपुरुषगमन की तथा झूठ की. परपुरुषगमन उस ने वंचिता हो कर किया था और झूठ बोलने का अपराध भयवश. इन दो अपराधों के लिए ही उसे युगयुगों तक पाषाण हो कर पड़ा रहना पडा. क्या सारे पौराणिक साहित्य मे कोई एक भी उदाहरण है जहां कोई ऋषि-मुनि इसी तरह से समान अपराध के लिए किसी के शाप के कारण पाषाण बन गया हो?

युगोंयुगों से पत्थर बनी पड़ी रहने के बाद रामचंद्र के चरणस्पर्श से जब

अहिल्या प्राणवान होती है तो वह प्रार्थना करती है:

मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुखदाई.

—बाल कांड, 243, छंद

(मैं अपवित्र नारी हूं और आप जगत को पवित्र करने वाले रावनरिपु हैं और भक्तों को सुख देने वाले हैं)

चंद्रमा अपवित्र नहीं हुआ, वह चंद्र देवता बना रहा. इंद्र अपवित्र नहीं हुआ, इंद्र देवता बना रहा. अगस्त्य अपवित्र नहीं हुआ, वह अगस्त्य ऋषि रहा. एकमात्र अहिल्या ही अपवित्र हुई. इस का सिवा इस के दूसरा कौन सा कारण बताया जा सकता है कि वह नारी है?

रामलक्ष्मण का जनकपुरी जाना, धनुष तोड़ना, परशुराम संवाद आदि रामचरितमानस के अत्यंत प्रासादगुण पूर्ण स्थल हैं. रामचंद्र जब जनकपुरी जाते हैं तो वहां सीता की सखियों में से एक रामचंद्र के बारे में विश्वास प्रकट करती हुई कहती है.

परसि जासु पदपंकज धूरी, तरी अहिल्या कृत अघभूरी
सो कि रहहि बिनु सिव धनु तोरें, यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें

—बाल कांड, 255-3

(जिन—रामचंद्र—के चरणकमलों की धूल लगते ही घोर पापिन अहिल्या भी तर गई, क्या वह शिव के धनुष को तोड़े बिना रहेंगे! यह भरोसा भूल कर भी न छोड़ना चाहिए.)

रामचंद्र के घोर पापिन अहल्या का निस्तार करने की बात उन के जनकपुरी पहुंचने से भी पहले वहां पहुंच गई. किन्हीं चंद्रों तथा इंद्रों द्वारा वंचिता नारियों को घोर पापिन कह कर बारबार तिरस्कृत करना हिंदू जाति की एक ऐसी महान भूल की ओर संकेत करता है, जिस ने उसे इधर भी न जाने कितनी हानि पहुंचाई है. आज भी न जाने कितने विधर्मी चंद्रों और इंद्रों द्वारा वंचिता हिंदू नारियां पाषाण हृदय हिंदू जाति द्वारा बात की बात में ठुकरा दी जाती हैं.

निस्संदेह तुलसीदास ने पार्वती के रूप में पति को देवता मानने के आदर्श को साकार कर के दिखा दिया है. वैसे ही उन्होंने दूसरे भी एक से एक बढ़ कर गगनचुंबी आदर्शों को मूर्तिमान किया है. हमारी विनम्र सम्मति में इन अनुपम प्रयत्नों के फलस्वरूप जहां वह आकाश को छूने में सफल हुए हैं, वहां कहींकहीं पृथ्वी से उन का नाता एकदम टूट गया है. यह रामचरितमानस पर लगा छोटा प्रश्नचिन्ह नहीं है, सीता के स्वरूप का वर्णन इस का साक्षी है.

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी, जगदंबिका रूप गुन खानी
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी
सिय बरनि तेहि उपमा देई, कुकवि कहाइ अजसु को लेई

—बाल कांड, 279-1,2

(सीता की शोभा कही नहीं जा सकती. जगत की माता है, रूप और गुणों

की खान हैं. सभी उपमाएं—सीता के सम्बन्ध में—मुझे हलकी लगीं, क्योंकि वे सभी प्राकृत—ससारी—स्त्रियों के शरीर के वर्णन मे लग चुकी हैं. सीता के संबंध मे उन्हीं उपमाओं का उपयोग कर कौन कुकवि कहलाने का अपयश ले.)

उपमा किसी अस्पष्ट बात को स्पष्ट करने की सामान्य क्रिया है उस के अभाव का अनुभव करना और उसे स्वीकार करना एक सामान्य कवि कौशल है, किंतु तुलसीदास का सीता के स्वरूप का वर्णन करने के संबंध मे सभी उपमाओं को केवल इसलिए हेय ठहराना कि प्राकृत स्त्रियो के वर्णन मे उन का उपयोग हो चुका है, तुलसीदास की प्राकृत जन की अवहेलना की भावना के ही अनुरूप है

अब सीता स्वयवर समाप्त हो चुका है. राजा और रानी प्रेममग्न हो कर रामचद्र के पवित्र चरणो को धोने लगे वे चरण कैसे हैं :

जे परसि मुनिवनिता, लही गति रही जो पातकमई.

—बाल काड, 356, छंद 2

जिन का स्पर्श कर के मुनि पत्नी—अहिल्या—जो महापापमई थी, वह भी गति पा गई अर्थात उस का भी उद्धार हो गया.

रामचद्र के चरणो से अहिल्या का उद्धार हुआ या नहीं, यह भी किसी संदेहवादी नास्तिक की जिज्ञासा ही हो सकती है. किंतु यहां प्रश्न यह नहीं है. प्रश्न है कि बेचारी अहिल्या को यहां फिर इतनी जल्दी पातकी कह कर क्यों स्मरण किया गया है? उसे छलने वाले चद्र तथा इंद्र दोनों देवता बने रह कर पुज रहे हैं इन दोनों देवताओं द्वारा ठगा गया मुनि भी किसी की अवज्ञा का पात्र नहीं बना. तब दोनो देवताओ द्वारा वंचिता अबला एकमात्र अहल्या ही क्यों पाषाण बनने पर मजबूर हुई? एक ही उत्तर है—वह तुलसीदास के कल्पना लोक की नारी थी.

अगले ही छंद मे है :

सुखमूल दूलह देखि दपति पुलक तनु हुलस्यो हियो,
करि लोक वेद विधानु कन्यादानु नृपभूषण कियो.

—बाल काड, 356, छद 3

(सुख के मूल—दूल्हे—रामचंद्र—को देख कर दंपति—राजारानी—का शरीर पुलकायमान हुआ और हृदय उमडने लगा. राजमणि—जनक—ने लौकिक और वेदोक्त विधि कर के कन्यादान किया.)

आज किसी भी संपत्तिदान और भूमिदान की तरह ही कन्यादान दिया और लिया जाता है. सपत्तिदान और भूमिदान होता है तो वह दान ही होता है, किंतु कन्यादान मे बहुधा कन्या के क्रयविक्रय की बात साथ जुड़ी रहती है.

निस्संदेह यह कन्यादान की बात वर्तमान गतिअवरुद्ध विकृत भारतीय संस्कृति का एक हिस्सा है, किंतु क्या यह सचमुच वेदकालीन है? लगता है कि

तुलसीदास अपनी अस्पष्ट ऐतिहासिक दृष्टि के कारण कन्यादान को यों ही वेदोक्त रूप दे रहे हैं.

फिर सीता का कन्यादान तो दान था भी नहीं, वह तो स्वयंवर था. जहां स्वयं वरण हो वहां दान कैसा?

रामचंद्र को ही नहीं, उन के शेष भ्राताओं को भी राजा जनक के यहां कन्यादान मिला है. उन सब का सम्मिलित वर्णन है :

जसि रघुवीर ब्याह विधि वरनी, सकल कुंवर ब्याहे तेहि करनी.
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी, रहा कनक मनि मडप पूरी.
कंवल वसन विचित्र पटोरे, भांतिभांति बहुमोल न थोरे.
गज रथ तुरग दास अरु दासी, धेनु अलकृत कामदुहा सी,
वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा, कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा.

—बाल काड, 358-1,2,3

(जैसी रामचंद्र के विवाह की विधि कही गई है, उसी क्रिया से सब राजकुमारों का विवाह हुआ. दहेज की अधिकता कुछ कही नहीं जाती. सारा मंडप सोने और मणियों से भरा हुआ था. ऊनी कपड़े और तरहतरह के रेशमी कपड़े भी कम नहीं थे. हाथी, रथ, घोड़े, दास और दासियां तथा खूब सजी हुई कामधेनु के समान अच्छीअच्छी गाएं और भी अनेक वस्तुएं थीं. कहां तक उन की गिनती करें. कुछ कहते नहीं बनता. जिन्होंने उन्हें देखा था, वे ही जानते हैं.)

आज दहेज प्रथा न जाने कितनी लड़कियों के मातापिताओं के जीवन का अभिशाप बनी हुई है. यह हो नहीं सकता कि रामचरितमानस की कथा के ऐसे स्थलों को लोग सुनतेसुनाते रहें और इस देश से दहेज प्रथा भी मिट जाए.

आश्चर्य है कि जिस पुरातन संस्कृति का हमें इतना अभिमान है उस के अनुसार यह हाथी, घोड़ों के ही साथ नहीं, कंबल आदि निर्जीव वस्तुओं के साथ सजीव दास और दासियों की गिनती होना हमें खटकता तक नहीं! किंतु अब निर्जीव वस्तुओं के समान कन्यादान ही होने लगा हो तो फिर इस मे खटकने की भी कौन सी बात है!

दहेज का तो काफी वर्णन है. एक दोहा है :

दाइज अमित न सकिय कहि दीन बिदेह वहोरि,
जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि.

—बाल काड, 366

(राजा जनक ने फिर इतना अधिक दहेज दिया कि जिस का कुछ ठिकाना नहीं और जिस को देख कर लोकपति इंद्र, कुबेर आदि की भी सम्पति थोड़ी मालूम होती थी.)

इधर न जाने कब से मध्यवित्त हिंदू समाज के सामने यही दहेजप्रधान विवाहों का आदर्श प्रचारित हो रहा है. आधुनिक सुधारवादियों के मार्ग मे सब से बड़ी बाधा यही है.

नारी को इस स्थिति मे स्वय तुलसीदास भी कम दुखी नहीं मालूम देते. कहींकहीं उन का दुख वरवस अभिव्यक्ति पा गया है :

वहुरिवहुरि भेंटहि महतारी, कहहि विरचि रची कत नारी.

—वाल काड, 366-4

(माताएं वारवार अपनी पुत्रियों से मिल कर कहने लगीं : हाय, ब्रह्मा ने स्त्री क्यो वनाई?)

कितनी मर्मांतक वेदना है!

अव सीता विदा हो रही है. सीता की माता रामचंद्र को सिय समर्पण कर रही हैं. वह कह रही हैं :

परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानवीः

—वाल काड, 368 छद 1

(कुटुंव के लोगों को, पुर के लोगो को, मुझे और राजा—जनक—को सीता प्राणों से प्यारी है.)

यह वात एकदम स्वाभाविक है और सीता के गुणो के अनुरूप है. किंतु अव इस स्थान पर तुलसीदास क्या चाहते हैं :

तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानवी

—वाल काड, 368, छद 1

(तुलसीदास कहते हैं : इस के सुशील स्वभाव तथा स्नेह को देख कर इस को अपनी दासी मानना)

सहयोगिनी नहीं, सहधर्मिणी भी नहीं, एकदम किंकरी. कोई आश्चर्य नहीं यदि आज की विकृत संस्कृति मे स्त्री एकदम पांव की जूती कही और समझी जाती है.

अव रामचंद्र तथा सव कोई अयोध्या मे हैं रामचंद्र सोने जा रहे हैं. उस समय कौशल्या आदि उन की सभी माताएं कह रही हैं :

मुनि तिय तरी लगत पग धूरी, कीरति रही भुवन भरि पूरी.

—वाल काड, 390-2

(तुम्हारे पाव की धूल लगते ही मुनि की स्त्री—अहिल्या—तर गई. इस वात का यश सारे संसार मे फैल रहा है.)

भावना का प्रश्न है. रामचद्र भगवान हैं, और भगवान सभी कुछ करने न करने तथा उल्टासीधा करने मे भी समर्थ हैं. अन्यथा मुनि विश्वामित्र के गुरुकुल मे रहने वाले रामलक्ष्मण की युगल मूर्ति का किसी स्त्री की पाषाण मूर्ति तक को स्पर्श करना अवश्य चित्य है स्पर्श आवश्यक ही था, तो क्या हाथ से स्पर्श नहीं हो सकता था? लेकिन वहां तो मुनितिय तक के लिए पगधूरी ही अपेक्षित थी. ऐसी कथाओं की ऐतिहासिकता विशेष विचारणीय नहीं है, किंतु वे जिस भावना की प्रतीक हैं, क्या वह भी चित्य नहीं है?

राम विवाह के वाद दूसरा वड़ा मंगल कार्य जो होने को है और जिस का

निर्णय ही नहीं, जिस की घोषणा तक हो चुकी है, वह रामचंद्र का राजतिलक है. उस मंगल कार्य में बाधा डालने वाली कौन है? एक स्त्री. रामचंद्र के वन-गमन का कारण कौन है? एक स्त्री. राजा दशरथ के शरीरांत का कारण कौन है? एक स्त्री.

जिस प्रकार अर्थशास्त्र के नियमानुसार खोटा पैसा अच्छे पैसे के प्रचलन के मार्ग में बाधक बन जाता है, उसी प्रकार हमें लगता कि कौशल्या, सुमित्रा आदि के आदर्श चरित्रों ने स्त्रियों के बारे में लोगों की सम्मति को अच्छा बनाने में वह कार्य नहीं किया जो कार्य केकई तथा मंथरा के चरित्र ने सामान्य लोगों के मन में स्त्रियों के संबंध में जो धारणा रहती है, उसे कलुषित करने मे.

ऐसे सब पात्रों को पाठकों तथा श्रोताओं के रोष से बचाने के लिए उन के सारे कुकर्मों को देवप्रेरित कहने का कवि कौशल चला आ रहा है. सिद्धार्थ गौतम का जो सारथी उन के वनगमन में सहायक हुआ था, उस की भी रक्षा इसी प्रकार की गई है. किंतु इस से भी बात ढक नहीं जाती. स्त्रियां मंथरा तथा केकई जैसी दुर्बुद्धि तथा दुष्टा भी होती हैं, यह धारणा मन मे घर कर जाती है.

यों केकई का अपयश कुछ हद तक बंट गया है. उस का कुछ हिस्सा सर-स्वती ने लें लिया है और कुछ मंथरा ने. हमें मंथरा का चरित्र बड़ा ही स्वा-भाविक लगता है. न सभी पुरुष ही हर समय देवता होते हैं और न सभी स्त्रियां ही हर समय देवी. मंथरा का चरित्र लोकसुलभ चरित्र है, लेकिन उस की बुद्धि भी तो सरस्वती द्वारा ही भरमाई है. लिखा है :

नाम मंथरा मदमति चेरि कैकेई केरि,
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि.

अयोध्या कांड, 13

(केकई की एक मूर्ख बुद्धि वाली दासी थी जिस का नाम मंथरा था. उसे अपयश की पिटारी बना कर सरस्वती उस की बुद्धि फेर गई.)

देवताओं में ब्रह्मा शुक्ल पक्ष का प्रतीक है और मार (कामदेव) कृष्ण पक्ष का. पता नहीं देवियों में सरस्वती के मुकाबले पर किसी कृष्णपक्षी देवी की कल्पना क्यों नहीं की गई? यह काम सरस्वती से न लिया जाता तो अच्छा था.

अब मंथरा की करतूत देखिए :

करै विचार कुबुद्धि कुजाती, होइ अकाजु कवनि विधि राती
देखि लागि मधु कुटिल किराती जिमि गंव तकै लेउं केहि भांती
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी, का अनमनि हसि कह हंसि रानी
उतरु देइ नहिं लेइ उसासू, नारिचरित करि ढारइ आंसू

—अयोध्या कांड, 13-2,3

खोटी बुद्धिवाली और खोटी—नीच—जाति वाली मंथरा विचार करने लगी कि रात ही रात मे यह काम कैसे बिगाड़ा जाए? जिस तरह कुटिल भिलनी शहद के छत्ते को लगा देख कर अपना मौका ताकती है कि इस को किस तरह

लूं. यह बिलखती हुई भरत की माता केकई के पास गई. उस को देख कर केकई ने कहा कि आज तू उदास क्यों है? मंथरा कुछ जवाब नहीं देती और लंबी सांस खींचती है और स्त्री चरित्र कर के आंखों से आंसू टपकाती है.

इन दोनों चौपाइयों मे छोटी जाति वाली मथरा की उपमा देते समय तुलसीदास ने इस बात का विचार नहीं किया मालूम देता है कि सारी की सारी किरात जाति के स्त्री पक्ष को कुटिल कह देना कहां तक ठीक है? इस का मात्र समाधान यही हो सकता है कि उन्होंने तो मात्र मधुलोलुप किरातों को ही कुटिल कहा है. तब इसी प्रकार मंथरा के आंसू टपकाने को भी तो सर्वसाधारण नारियों का चरित्र कह कर कुछ कम आपत्तिजनक स्थिति नहीं रहने दी है

स्वय केकई भी, जिस की बुद्धि अभी स्थिर है, कह रही है :

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि,
तिय बिसेखि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि —अयोध्या काड,25

(काने, लंगडे कुबड़े—ये बडे कुटिल और कुचाली होते हैं, और उन मे भी स्त्री और फिर विशेष रूप से दासी—ऐसा कह कर भरत मातु मुसकाई)

विनोद मे कही हुई बात भी प्रायः सर्वथा यथार्थ नहीं होती. यहां केकई के मुख से भी प्राकृत स्त्रियों के संबंध में तुलसीदास की जो प्रतिक्रियावादी मान्यताएं हैं, उन्होंने ही अभिव्यक्ति पाई प्रतीत होती है.

किंतु कुछ ही देर मे केकई मंथरा के वशीभूत हो जाती है तुलसीदास कहते हैः

गूढ कपट प्रिय वचन सुनि तीय अधर बुद्धि रानि,
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि —अयोध्या काड, 17

(स्त्रियों की बुद्धि होठों मे होती है अर्थात वे बातों में आ कर चलविचल हो जाया करती हैं. तदनुसार रानी कैकेयी ने गुप्त कपट भरे, प्यारे वचनों को सुन कर, देवताओं की माया के वश मे हो कर बैरिन मंथरा को अपना हितू जान कर उस का विश्वास कर लिया)

यहा मंथरा भी दोषी है, देवताओं की माया भी दोषी है, किंतु इस सब को दोष देने की क्या आवश्यकता जब तुलसीदास के अनुसार स्त्रियों की बुद्धि होठों में ही होती है, अर्थात वे बातों मे आ कर चलविचल हो जाया करती हैं? स्त्रियों के बारे मे कितनी दरिद्र सम्मति है? बातों मे आ कर तो समयसमय पर सभी चलविचल हो जाया करते हैं— क्या पुरुष और क्या स्त्री.

इस समय केकई पूर्णतः मंथरा के वश में है और राजा संपूर्ण रूप से केकई के वशीभूत. इस अवसर पर तुलसीदास की अपनी टिप्पणी हैः

जद्यपि नीति निपुन नर नाहू, नारि चरित जलनिधि अवगाहू
—अयोध्या काड, 27-4

(यद्यपि नरनाथ दशरथ राजनीति मे दक्ष थे, परंतु स्त्री चरित्र रूपी समुद्र अथाह है)

उस युग मे जब राज्य किसी भी राजा की व्यक्तिगत संपत्ति समझा जाता

था ग्रौर उसे राजा जिसे चाहे दे सकता था, पत्नी ग्रासक्त वृद्ध दशरथ से कोई भी विवेकपूर्ण निर्णय कराने के लिए किसी ग्रथाह समुद्र की ग्रावश्यकता नहीं थी.

ग्रागे एक चौपाई मे प्रसगवश स्त्री को सहगामिनी भी कहा है, जो प्रयोग निस्संदेह स्वागत करने योग्य है. लिखा है:

मंगल सकल सुहाहिं न कैसे, सहगामिनिहि विभूषन जैसे

- ग्रयोध्या काड, 37-4

(जैसे सती होने के लिए तैयार स्त्री को गहने नहीं सुहाते, वैसे ही सभी मंगल साज राजा को नहीं सुहाते.)

यह सहगामिनी भी परलोकपथ की ही सहगामिनी है.

राजा दशरथ तथा राम के प्रति केकई के दुर्व्यवहार से दुखी हो कर ग्रयोध्या निवासी एक केकई की ही नहीं, समस्त स्त्री जाति की निंदा कर रहे हैं:

सत्य कहहिं कवि नारिसुभाऊ, सब विधि ग्रगहु ग्रगाध दुराऊ.
निज प्रतिबिंबु बरुक गहि जाई, जानि न जाइ नारिगति भाई.

—ग्रयोध्या काड, 47-4

(विद्वानों ने स्त्रियों का स्वभाव ठीक कहा है. उन का कपट सभी तरह ग्रगम ग्रौर ग्रथाह होता है. कोई ग्रपनी परछाई को भले ही पकड़ ले पर, भाई, स्त्री की गति—चाल—नहीं जानी जाती.)

ग्रगले दोहे में तो निंदा की पराकाष्ठा ही हो गई:

काह न पावकु जारि सक का न समुद्र समाइ,
का न करइ ग्रबला प्रबल केहि जग कालु न खाइ —ग्रयोध्या काड, 48

(ग्राग में क्या नहीं जल सकता! समुद्र में क्या नहीं समा सकता! प्रबल ग्रबला क्या नहीं कर सकती ग्रौर संसार मे काल किसे नहीं खा सकता!)

प्राकृत स्त्रियो के बारे मे तुलसी युग की कुछ ऐसी ही मान्यता रही प्रतीत होती है. यदि तुलसीदास भी उस से ऊपर नहीं उठ सके, तो इस से यही सिद्ध होता है कि हर महान पुरुष जहां ग्रपने युग का निर्माता होता है वहां ग्रपने युग की उपज भी होता है.

ग्रब वनगमन का प्रसंग है. रामचंद्र चाहते हैं कि सीता घर पर रहें ग्रौर माताग्रों की सेवा करें, किंतु सीता बन चलने का हठ कर रही हैं, कह रही हैं:

जह लगि नाथ नेह ग्ररु नाते, पिय बिनु तियहि तरनिहुं ते ताते.
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू, पतिविहीन सब सोकसमाजू.
भोग रोग सम भूषन भारू, जम जातना सरिस संसारू.
प्राणनाथ तुम बिनु जग माही, मो कहं सुखद कतहु कछु नाही.

ग्रयोध्या काड, 65-2,3

(हे नाथ, जितने भी स्नेह संबंध तथा नाते हैं, वे स्त्री के लिए पति के न रहने पर सूर्य से भी ग्रधिक तपाने वाले हैं. शरीर, धन, मकान, पृथ्वी ग्रौर नगर का राज्य पतिहीन स्त्री के लिए सब शोक का समाज—समूह—है. पति बिना

सब प्रकार के भोग रोग के समान और गहने बोझ हैं, ससार यमराज की यातना के समान है हे प्राणनाथ, जगत मे मेरे लिए तुम्हारे बिना सुख देने वाला कहीं कुछ भी नहीं.)

इतना ही नहीं, और भी है:

जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी

—अयोध्या काड, 65-4

(हे नाथ, जिस तरह बिना जीव के शरीर और बिना पानी के नदी व्यर्थ है, उसी तरह बिना पुरुष के स्त्री भी व्यर्थ है.)

लगता है कि यहा सीता के मुख से एक प्राकृत नारी की सहज दयनीय दशा ही अभिव्यक्ति पा गई है. इस से अधिक दयनीय स्थिति और हो भी क्या सकती है?

आगे वन मे पहुच जाने पर भी जब सुमन्त्र की प्रेरणा से रामचद्र सीता को वापस अयोध्या जाने का आग्रह कर रहे हैं तो भी सीता वही, बल्कि उस से भी बढ़ कर, बात दोहरा रही है.

प्रभु करुनामल परम बिबेकी, तनु तजि रहित छाह किमि छेकी.
प्रभा जाइ कह भानु बिहाई, कह चद्रिका चदु तजि जाइ

(आप तो परम विचारवान और दयामय हैं. जरा सोचिए तो कि शरीर की छाया शरीर को छोड़ कर अलग कैसे रह सकती है? सूर्य को छोड़ कर धूप कहा जा सकती है? चद्रमा को छोड कर चांदनी कहा रह सकती है?)

रामचद्र तथा सीता की स्नेहमूलक व्यक्तिगत अभिन्नता को यदि प्रमुखता न दी जाए तो क्या इन दो चौपाइयो का साराश इतना ही नहीं है कि पुरुष तो शरीर है, स्त्री उस की छायामात्र है, पुरुष तो सूर्य है, स्त्री उस की धूप मात्र है और पुरुष तो चद्रमा है, स्त्री उस की चादनी मात्र है?

क्या सचमुच स्त्री का पुरुष से भिन्न और पृथक अपना कोई व्यक्तित्व हो सकता है? सत्य तो यह है कि स्त्री रूपी लता मे ही पुरुष रूपी फल फलतेफूलते हैं.

भरत अपने मामा के यहा से लौट आए. उन्हे पता लग गया कि उन की माता राम के वनवास तथा पिता के स्वर्गवास का कारण हुई हैं. अपनी माता की करनी को सभी स्त्रियो पर घटा कर भरत कहते हैं :

बिधिहु न नारि हृदय गति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी

—अयोध्या काड, 162-2

(स्त्री के हृदय की गति को विधाता भी नहीं जान सकता स्त्री का हृदय सभी तरह के कपट पाप और अवगुणों की खान होता है.)

और पुरुषो का हृदय?

इस समय सीता को ऋषिपत्नी अनुसूया उपदेश दे रही हैं वह विस्तृत है. कहा है :

मातु पिता भ्राता हितकारी, मितप्रद सब सुनु राजकुमारी

अमितदानी भर्त्ता बैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही.

—अरण्य काड, 7-1,2

(हे राजकिशोरी सीता, सुनो, माता, पिता, भाई, हितैषी सब मितदाता—परिमित मात्रा मे देने वाले—हैं. किंतु, हे वैदेही, पति अमित—अपरिमित मात्रा में—देने वाला है. वह स्त्री अधम है जो पति की सेवा न करे.)

अपने आर्थिक स्वार्थ को भी न समझ कर जो स्त्री पति सेवा न करे, उसे चाहे मूर्ख भले ही कह लें, किंतु अधम न जाने क्यों कहा गया है!

अनुसूया का उपदेश है :

धीरज धरम मित्र अरु नारी, आपद काल परखियही चारी.
वृद्ध रोग वस जड़ धन हीना, अंध बधिर क्रोधी अति दीना.
एसेहु पति कर किए अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना
एकइ धरम एक व्रत नेमा, काय वचन मन पतिपद प्रेमा.

—अरण्य काड, 7 2,3,4

(हे सीता, धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की परीक्षा आपद काल में लेनी चाहिए. बूढा, रोगी, मूर्ख, धनहीन, अंधा, बहरा, क्रोधी, अत्यंत दीन—ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुरी मे अनेक दुख पाती है. स्त्री के लिए एक ही धर्म और एक ही व्रतनियम है कि शरीर से, मन से और वचन से पति के चरणों में प्रेम करे.)

इस एक ही धर्म और एक ही व्रतनियम की विस्तृत व्याख्या भी प्राप्य है :

जग पतिव्रता चारि विधि अहही, वेद पुरान संत सब कहही.
उत्तम के अस बस मन माही, सपनहुं आन पुरुष जग नाही.
मध्यम पर पति देखै कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे.
धर्म विचारि समुझि कुल रहई, सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई.
विनु अवसर भय ते रह जोई, जानेहु अधम नारि जग सोई
पतिवंचक पर पति रति करई, रौरव नरक कलप सत परई

अरण्य काड, 7-4, 8-1,2,3

(वेद, पुराण और सब सतपुरुष कहते हैं कि जगत मे पतिव्रता चार प्रकार की हैं. उत्तम स्त्री के मन में ऐसा निश्चय हो जाता है कि उस के लिए जगत मे अपने पति के सिवा स्वप्न मे भी कोई पुरुष नहीं है. मध्यम स्त्री दूसरी स्त्री—पति को ऐसे देखती है जैसे अपना भाई, पिता या पुत्र हो. जो स्त्री धर्म का विचार कर और कुल की रीति को समझ कर रह जाए, वह स्त्री निकृष्ट—नीच—है. जो स्त्री अवसर न मिलने के कारण या डर से बची रहे, वह स्त्री संसार मे अधम है. जो अपने पति से छल कर के दूसरे पति से प्रेम करती है, वह सौ कल्प पर्यंत रौरव नरक में गिरती है.

क्या सचमुच स्त्री के लिए लैंगिक सदाचार ही एक मात्र धर्म और एक मात्र व्रतनियम है? अनुसूइया इस बात को तनिक भी प्रच्छन्न नहीं रहने देना

चाहती. वह कहती है :

छन सुख लागि जनम सत कोटी, दुख न समुझ सम को खोटी.
बिनु स्रम नारि परम गति लहई, पतिव्रत धरम छाडि छल गहई
पति प्रतिकूल जनम जंह जाई, विधवा होइ पाइ तरुनाई
—अरण्य कांड, 8-3,4

(क्षण भर के सुख के लिए सैकडोंकरोड़ोंजन्म के होने वाले दुखो को जो न समझे भला उस के वरावर खोटी और कौन हो सकती है: जो स्त्री छल को छोड़ कर पतिव्रत धर्म का पालन करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गति—स्वर्ग—पा जाती है. जो स्त्री पति से प्रतिकूल रहती है, वह कहीं भी जन्म ले, तरुण अवस्था में ही विधवा हो जाती है.)

अनुसूइया के सारे उपदेशों का सार उन्हीं के शब्दो मे है :

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहै. —अरण्य कांड 9

(स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र है. पति की सेवा करने से ही उसे सद्गति प्राप्त होती है.)

हमें यह नोट करने के लिए क्षमा किया जाए कि यह एक सहज अपावन नारी का ही दूसरी सहज अपावन नारी को दिया गया उपदेश है क्या जो स्वभाव से ही अपवित्र है, उस की भी शुद्धि हो सकती है?

अरण्य कांड मे ही कुछ ही आगे जाने पर कागभुशुंडि अनुसूइया का पूर्ण समर्थन कर रहे हैं :

भ्राता पिता पुत्र उरगारी, पुरुप मनोहर निरखत नारी
होइ विकल सक मनहि न रोकी, जिमि रविमनि द्रव रविहि विलोकी
—अरण्य कांड, 28-4

(हे गरुड, स्त्री मनोहर पुरुष को देखते ही, वह चाहे भाई हो, पिता हो या पुत्र ही क्यों न हो, विकल हो जाती है और अपने मन को रोक नहीं सकती. जैसे सूर्य को देख कर सूर्यकांत मणि पिघल जाती है, वैसे ही सुंदर पुरुष को देख कर स्त्री पिघल जाती है.)

क्या सुंदर स्त्री को देख कर पुरुष भी नहीं पिघल जाता? तब न जाने यह एकतरफा डिग्री क्यों?

स्त्रियो के वारे मे अथवा स्त्री धर्म के वारे में किस का क्या मत है, अब हम इस प्रसंग को थोड़ी विश्राति लेने दें. इस अवसर पर अब हम रामचरितमानस के कथासूत्र को पकडेपकडे वहा पहुच जाते है जहां लक्ष्मण मूल, फल, कंद लेने के लिए वन मे गए हुए हैं, रामचंद्र सीता पर अपनी भावी योजना प्रकट कर रहे हैं :

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला, मैं कछु करव ललित नर लीला.
तुम्ह पावक महु करहु निवासा, जौ लगि करौं निसाचर नासा.
—अरण्य कांड, 42-1

(हे सुशीले, प्रिये, मेरा एक सुंदर व्रत—नियम—सुनो. मैं कुछ मनोहर मनुष्यलीला करूंगा. इसलिए मैं जब तक राक्षसों का नाश करूं, तब तक तुम अग्नि में निवास करो.)

रामचंद्र की आज्ञा के अनुसार सीता स्वयं तो अग्नि मे प्रविष्ट हो गई और अपने प्रतिबिंब को वहां रख गई जिस का शील और रूप सीता जैसा ही था. लिखा ही है:

निज प्रतिबिंब राखि तहं सीता, तैसइ सील रूप सुबिनीता

—अरण्य कांड, 42-2

न जाने रामचरितमानस में यह सीता के अग्निप्रवेश की कल्पना क्यों की गई है? हमें इसी बात का ध्यान बना रहता है कि जब सीता वास्तविक सीता नहीं थीं, तो रामचंद्र का उन की खोज करना, रामरावण युद्ध और राक्षसों का वध आदि सभी अपना मूल्य और महत्त्व गंवा देते हैं. सारे रामचरितमानस की ऐतिहासिकता ही बालू की भीत बन जाती है. अधिक सोचने पर लगता है कि स्त्रियों के संबंध में जो हड्डीगतमज्जागत विचित्र संस्कार हैं, उन की पवित्रता तथा दौर्बल्य के संबंध मे जो पुरुष पक्ष की धारणाएं हैं उन्हीं के कारण रामचरितमानस में इस कल्पना ने स्थान पाया है. प्रश्न पैदा होता है कि यदि रामचंद्र वन मे वास्तविक सीता को बिना अग्नि मे प्रवेश कराए स्वयं निश्चित नहीं रह सकते थे, तब उन्हें अयोध्या में ही छोड़ आना उचित था. रामचरितमानस की यह कल्पना पर्याप्त चित्य है.

अब सीताहरण हो चुका है. रास्ते मे भिलनी से भेंट होती है, स्त्री की निंदा का एक प्रसंग आ गया है. भिलनी कह रही है:

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी अधम जाति मैं जड़मति भारी
अधम ते अधम अधम अति नारी, तिन्ह मंह मैं मतिमंद अघारी.

—अरण्य कांड, 62-1,2

(हे नाथ, मै आप की स्तुति किस तरह करूं? मै अधम—नीच—जाति हूं और मेरी भारी जडबुद्धि है. हे पाप का नाश करने वाले, जो नीचों से नीच हैं, स्त्रियां उन से भी नीच हैं, मैं उन में भी मंदबुद्धि और गंवारिन हूं)

यदि किसी जाति के अर्द्धांश के दिमाग मे कीलें ठोकठोक कर यह बात बैठाने का निरंतर प्रयास किया जाए कि जो नीचों से नीच है उन से भी वह नीच है, तो फिर भला उस जाति की उन्नत्ति कैसे हो सकती है?

भिलनी ही क्या, स्वयं रामचंद्र कह रहे हैं:

राखिअ नारि जदपि उर माहीं, जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं.

—अरण्य कांड, 65-1,5

(स्त्री को चाहे हृदय से लगा कर रखो, तो भी स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश में नहीं रहते.)

इस समय रामचंद्र विरहव्याकुल पुरुष की नरलीला कर रहे हैं. इसलिए

आप चाहें तो उन की सम्मति को अधिक मूल्य न भी दें इसी प्रसग मे रामचद्र लक्ष्मण को भी संबोधित कर के कह रहे हैं:

लछिमन देखत काम अनीका, रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका
एहि के एक परमबल नारी, तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी
—अरण्य काड, 67-6

(हे लक्ष्मण जो लोग कामदेव की सेना को देख कर धीरज रखें वे ही संसार में मान्य होंगे इस कामदेव का एक परम बल है—स्त्री. जो कोई उस मे उबर जाए वही भारी योद्धा है)

क्या स्त्री कामदेव का परमबल छोड कर और कुछ नहीं है?

आगे फिर रामचद्र ने अपने कथन को दोहराया है

लोभ के इच्छा दभ बल, काम के केवल नारि,
क्रोध के परुप वचन बल, मुनिवर कहहिं बिचारि —अरण्य काड, 69

(मुनिवरो ने विचार कर कहा है कि लोभ का बल तो इच्छाए और दभ—पाखड—हैं, कामदेव का बल केवल स्त्री ही है और क्रोध का बल कठोर वचन हैं)

लगता है मुनिवरों ने विचार कर नहीं कहा. नहीं तो स्त्री को केवल कामदेव का बल नहीं कहते. जिस प्रकार उन्होने इच्छाओ और दंभ को लोभ का मूल कहा, कठोर वचन को क्रोध का मूल कहा, उसी प्रकार यदि वह विचार से काम लेते तो क्या चित्त की किसी वृत्तिविशेष को ही काम का मूल भी नहीं ठहरा सकते थे?

लेकिन यह क्या कि न रहे बास और न बजे बासुरी!

अभी रामचद्र का कथन शेष नहीं हुआ है आगे नारद मुनि को सबोधित कर वे कहते हैं ·

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि,
तिन महं अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि
—अरण्य काड, 76

(काम, क्रोध, लोभ मद आदि प्रबल मोह की धाराए हैं. उन में अत्यत कठिन दुख देने वाली माया रूपिणी स्त्री है)

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता, मोह बिपिन कहुं नारि बसंता
जपतप नेम जलाश्रय भारी, होइ ग्रीषम सोषै सब नारी
काम क्रोध मद मत्सर भेका, इनहीं हरपद बरषा एका.
दुर्बासना कुमुद समुदाई, तिन्ह कह सदा सरद सुखदाई
धर्म सकल सरसीरुह बृंदा, होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा.
पुनि ममता जवास बहुताई पलुहै नारि सिसिर रितु पाई.
पाप उलूक निकर सुखकारी, नारि निबिड रजनी अंधियारी
बुद्धि बल सील सत्य सब मीना, बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना
—अरण्य काड, 76-1,2,3,4

(हे मुनि सुनो. पुराण वेद और संत कहते हैं कि मोह रूपी वन में नारी वसंत ऋतु है. वही ग्रीष्म ऋतु हो कर जप, तप, नियम आदि सब जलाशयों को सुखा देती है. वही स्त्री वर्षा ऋतु रूपिणी हो कर काम, क्रोध, मद, मत्सर आदि मेढकों के लिए सुख देने वाली हो जाती है और दुष्ट वासनारूपी कुमुदिनियों के समूह को सदा सुख देने वाली शरद ऋतु रूपिणी हो जाती है. मंद—थोड़ा—सुख देने वाली स्त्री हेमंत ऋतु रूपिणी हो कर समस्त धर्म रूपी कमलों के समूहों को पाला बन कर मार डालती है, फिर शिशिर ऋतु हो कर वह ममता रूपी जवासे को खूब हराभरा कर देती है. स्त्री रूपिणी घोर अंधेरी रात पाप रूपी उल्लुओं के समूह को सुख देने वाली है और बुद्धि, बल शील तथा सत्य—इन मछलियों के लिए स्त्री बंसी रूपिणी हो जाती है. ऐसा चतुर लोग कहते हैं.)

नारी के दुर्गुणों का इतना मनमोहक काव्यमय सहस्रनाम सुना कर अंत में रामचंद्र ने ही नारद मुनि से कहा है :

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि,
ता ते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि.

—अरण्य कांड, 77

(इस तरह स्त्रियां अवगुणों की जड़, पीड़ा देने वाली और सब दुखों की खान हैं. यही सब समझ कर मैं ने तुम को विवाह नहीं करने दिया.)

नारद मुनि आखिर मुनि थे. अच्छा ही हुआ कि वह रामचंद्र से यह नहीं पूछ बैठे कि यदि स्त्रियां सब अवगुणों की मूल, पीड़ा देने वाली और दुख की खान हैं, तो फिर आप ही क्यों सीता की खोज मे वनवन भटक रहे हैं? निस्संदेह यह एक अत्यंत दारुण प्रश्न होता. ऊपर की चौपाइयों में काव्य के निखार के साथ जब उन में अभिव्यक्त विचार की तुलना की जाती है, तब तो ऐसा मालूम होने लगता है कि न जाने कैसे कनकघट में विष की बूंदें समा गई हैं.

किंतु तुलसीदास तो कदाचित इतना ही कहना चाहते हैं:

दीप सिखा सम जुवतिजन मन जनि होसि पतंग. —अरण्य कांड, 58

(युवतियों का तन तो दीपशिखा के समान है, और पुरुषों का क्या केवल भ्रमर या सुकोमल पतंग के ही समान है?)

यह देख कर आश्चर्य होता है कि तुलसीदास युवतियों को दीपशिखा तो मानते ही थे, शायद वह उन की स्वतंत्रता के भी परम विरोधी थे. बात की बात है. कर तो रहे हैं वर्षा ऋतु का वर्णन, किंतु क्या गजब की उपमा दे रहे हैं:

महावृष्टि चलि फूटि किआरी, जिमि सुतंत्र भए बिगरहिं नारी

—किष्किंधा कांड. 16-4

(भारी वर्षा होने पर क्यारियां इस तरह फूट चलीं जिस तरह स्वतंत्र हो जाने पर स्त्रियां बिगड़ जाती हैं.)

इस चौपाई मे स्पष्ट ही मनुस्मृति के प्रसिद्ध श्लोक की छाया है जिस का आशय है कि स्त्री कुंआरी रहती है तो पिता रक्षा करता है, युवती होने पर पति रक्षा करता है, बुढापे मे पुत्र रक्षा करता है—वह किसी भी अवस्था मे स्वतंत्रता की अधिकारिणी नहीं है.

जिस देश की माताएं हो परतंत्र होंगी, वह देश या तो स्वतंत्र हो नहीं सकता, यदि हो भी जाए तो रह नहीं सकता.

यदि किसी प्रकार स्त्रियां स्वतंत्रताभिमुख ही हो जाएं तो समुद्र ने रामचंद्र से कहा है:

ढोल गवार शूद्र पशु नारी सकल ताड़ना के अधिकारी.

—सुदर काड, 62-3

(ढोल, गवार, शूद्र, पशु और स्त्री—ये सब ताडना के अधिकारी हैं.)

ढोल और पशु के साथ ही अगर गवार, शूद्र और नारी ताड़ना के अधिकारी हैं, तो भारत का बहुमत ताड़ना के ही योग्य हुआ—गंवार भी, शूद्र भी और स्त्रिया भी कुछ लोगो ने 'नारी' शब्द की तरहतरह की व्याख्या कर के तुलसीदास की वकालत करने का प्रयास किया है. उन की एक मात्र युक्तियुक्त वकालत यही हो सकती है कि यह एक गवार जलनिधि का कथन है जो किसी भी तरह अनुकरणीय तो है ही नहीं, ध्यान देने योग्य भी नहीं है.

रामरावण युद्ध हो चुका है सीता लौट आई है. यह तो किसी को ज्ञात ही नहीं था कि वास्तविक सीता का कभी हरण नहीं हुआ. वास्तविक सीता तो अग्नि मे सुरक्षित रहीं रावण तो केवल उन के प्रतिबिंब को, उन जैसी बनावटी मूर्ति को ले गया था. तब भी लोकापवाद के लिए तो स्थान था ही. रामचद्र ने सीता को अथवा उन के प्रतिबिंब को सार्वजनिक तौर पर अपनी शुद्धि प्रमाणित करने के लिए कहा प्रतिबिंब के अग्निप्रवेश द्वारा और आग में से वास्तविक सीता के सकुशल बाहर आने से सीता की शुद्धि प्रमाणित हुई

इस अग्नि परीक्षा के बाद भी सीता के साथ क्या बीती, यह सर्वविदित है. क्या यह सब स्त्री होने का अभिशाप नहीं कहा जाएगा?

तुलसीदास ने अति संक्षेप मे स्त्रियो के सबंध मे अपनी समस्त धारणा को पुंजीभूत कर दिया है

अबला कच भूषन भूरि छुधा, धनहीन दुखी ममता बहुधा
सुख चाहहि मूढ न धर्मरता, मति थोरि कठोरि न कोमलता.

—उत्तर काड, 161, छद 1

(स्त्रियो के केश ही उन के भूषण हैं, उन्हे भूख बहुत लगती है, वे धनहीन होती हैं, दुखी होती हैं, उन मे ममता बहुत होती है, वे मूर्ख धर्मरता तो होती नहीं, किंतु सुख चाहती हैं. उन मे बुद्धि अधिक नहीं होती, वे कठोर होती हैं, उन में कोमलता नहीं होती)

नारियों के सबध मे इसी प्रकार के विचार रखने और उन्हें व्यक्त करने

के लिए हमें तुलसीदास से विशेष शिकायत नहीं है. भारतीय धर्म परंपरा के न जाने कितने उन्नायकों ने इन्हीं विचारों से मिलतेजुलते विचार व्यक्त किए हैं. कुछ स्मृतिकारों ने किए हैं, कुछ साधुसंतों ने किए हैं और कई दिग्गज आर्यों ने भी किए हैं

हमें शिकायत है केवल तुलसीदास के उन आधुनिक भाष्यकारो से जो तुलसीदास को प्रगतिशील शब्द के वर्तमान अर्थों मे प्रगतिशील सिद्ध करने का प्रयास करते हुए लगभग हर दिशा में प्रगतिशीलता का सर्टीफिकेट प्रदान करना चाहते हैं.

कम से कम आधुनिक युग की रमणिया तो तुलसीदास के उक्त विचारों को मानने से रहीं. वे उन की होली न जलाएं—यही बहुत है. ●

रामचरितमानस में ब्राह्मणशाही

गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस की रचना मे ब्राह्मणशाही के निहित स्वार्थों का काफी हाथ है. उन्हें ब्राह्मणशाही के ढहते हुए किले से जो मार्मिक वेदना हो रही थी, वह उत्तर काड के इस दोहे से स्पष्ट है.

वादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्हते कछु घाटि,
जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखावहि डाटि

—उत्तर काड 157.

(शूद्र लोग ब्राह्मणों के साथ विवाद करते हैं—क्या हम तुम से कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जाने वही ब्राह्मण है, कहते हुए डांट कर आंखें दिखाते हैं)

ब्राह्मणशाही के ढहते हुए किले को गिरने से बचाने के लिए गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित द्वारा गाराचूना लगाने का प्रयास किया है. हो सकता है यह प्रयास जानबूझ कर न किया गया हो, उन के अचेतन मन की जडीभूत हो गई धारणाओं की अभिव्यक्ति मात्र हो. यदि ऐसा है, तब तो यह और भी चिंता का विषय है. बालकाड के आरंभ मे ही उन्होंने कहा है.

बदउ प्रथम महीसुर चरना, मोहजनित ससय सब हरना

—बाल काट. 2

(मैं सर्वप्रथम अज्ञान से उत्पन्न सदेहो को दूर करने वाले ब्राह्मणों के चरणों को प्रणाम करता हूं)

इस चौपाई के प्रथम दो चरणों के एक से अधिक अर्थ हो सकते हैं मैं सर्वप्रथम अज्ञान से उत्पन्न सदेहों को दूर करने वाले ब्राह्मणों (गुणवाचक प्रयोग) के चरणो को प्रणाम करता हू, जो अज्ञान से उत्पन्न सदेहो को दूर करने वाले हैं. यह पहला अर्थ तो सर्वश्रेष्ठ है, किंतु हमे खेद है कि गोसाई तुलसीदास को ऐसा कोई अभिप्रेत नहीं. उन को तो एक ही अर्थ अभिप्रेत है, और वह यह है कि मैं सभी ब्राह्मणों के चरणों को नमस्कार करता हूं, क्योंकि वे अज्ञान से उत्पन्न सब सदेहो को दूर करने वाले हैं.

राम कथा का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थल वह है, जहां 'हरि अवतार' की चर्चा है.

हरि अवतार हेतु जेहि होई, इदमित्थं कहि जाइ न सोई.

—बाल कांड 147-1.

(हरि का अवतार जिस लिए होता है, वह कारण बिलकुल ठीकठीक नहीं कहा जा सकता)

आगे वही कारण बताया भी है

जब जब होइ धरम कै हानी, बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी.
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी, सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी
तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा, हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा.

—बाल कांड 147-3,4.

(जबजब धर्म की हानि होती है—नीच, अभिमानी, असुर बढ़ जाते हैं और वर्णनातीत अनीति करने लग जाते हैं. जिस से ब्राह्मण, गुरु, देवता और पृथ्वी दुख पाते हैं, तबतब प्रभु विविध अवतार धारण कर सज्जनो की पीडा दूर करते हैं.)

जिन के दुख से कृपानिधि हरि का हृदय द्रवीभूत होता है, उन मे गऊ पशु जगत की प्रतिनिधि हैं, सुर अदृश्य जगत के प्रतिनिधि हैं और धरती जड़ प्रकृति की प्रतिनिधि है. मनुष्यलोक का प्रतिनिधित्व करने वाले एकमात्र ब्राह्मण ही हैं. मनुष्यों मे से मात्र उन्हीं का आर्त्तनाद हरि के अवतार का कारण होता आया है.

हरि के अवतार के और भी कारण हैं. एक अवतार का वर्णन इस प्रकार है:

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ, जय अरु विजय जान सब कोऊ
विप्र शाप तें दूनउं भाई, तामस असुर देह तिन्ह पाई
कनककसिपु अरु हाटकलोचन, जगत विदित सुरपति मदमोचन
बिजई समर बीर विख्याता, धरि बराह वपु एक निपाता
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा, जन प्रहलाद सुजस बिस्तारा.

—बाल कांड 148-3,4.

(विष्णु के सर्वविदित जय और विजय नाम के दो द्वारपाल थे. ब्राह्मणों के शाप के फलस्वरूप दोनों भाई असुर हो गए. एक हिरण्यकशिपु और दूसरा हिरण्याक्ष. वे इंद्र के गर्व को दूर करने वाले थे. वे युद्धविजयी तथा विख्यात वीर थे उन मे से एक (हिरण्याक्ष) को मारने के लिए विष्णु ने बाराह का रूप धारण किया और दूसरे को मारने के लिए विष्णु ने नरसिंह अवतार धारण किया.)

ऐसा भयानक था ब्राह्मण का शाप. वह 'हरि' के एक बार 'सुअर' और दूसरी बार 'नरसिंह' बनने का कारण बना. बात यहीं समाप्त नहीं होती, क्योंकि आगे उल्लेख है :

मुकुत न भए हते भगवाना, तीनि जनम द्विज वचन प्रमाना.

—वाल काड 149-1

(भगवान के द्वारा मारे जाने पर भी वे मुक्त न हुए, क्योंकि ब्राह्मणों ने उन्हें तीन जन्म तक का शाप दे दिया था.)

क्या इस से ब्राह्मण का शाप भगवान के मोक्षदायक वाण से भी अधिक बलवान सिद्ध नहीं होता? इसी प्रकरण मे वह लिखते हैं :

नारद श्राप दीन्ह एक वारा, कलप एक तेहि लगि अवतारा

(एक वार ब्राह्मण नारद ने स्वय भगवान को शाप दे दिया इसलिए एक कल्प में उसी के कारण जन्म ग्रहण करना पडा.)

भगवान भी ब्राह्मण के शाप, उस के अधिकार से वाहर न रह सके. इसी शाप का आगे भी उल्लेख है

श्राप सीस धरि हरपि हिय, प्रभु वहु विनती कीन्ह

—वाल काड

(भगवान ने उन का शाप सिर पर रख कर प्रसन्न मन से उन से वहुत विनती की.)

हम चार कदम भी आगे नहीं वढ़ पाते कि राजा प्रतापभानु के वारे में पढ़ते हैं ·

गुरु, सुर, सत, पितर महिदेवा, करइ सदा नृप सव कै सेवा

—वाल काड 182-2.

(राजा गुरु, देवता, मंत, पितर तथा पृथ्वी के देवताओं अर्थात ब्राह्मणो की सदा सेवा किया करता था.)

ब्राह्मण अगर 'गुरु' हो तो सेवा समझ मे आती है, संत पुरुष हो, तो भी समझ मे आती है, किंतु वह कुछ भी न हो, केवल ब्राह्मण होने मात्र से ही सेवा का अधिकारी है. महिदेव अर्थात् पृथ्वी का देवता जो है! वह फिर लिखते हैं

नाना वापी कूप तडागा, सुमन वाटिका सुदर वागा.
विप्र भवन सुर भवन सुहाए, सव तीरथन्ह विचित्र वनाए

—वाल काड 182-4.

(उस ने सभी तीर्थों मे अनेक वावली, कुएं, सरोवर, फुलवारी, सुदंर वाग और ब्राह्मणों के लिए घर वनवाए तथा देवताओं के मंदिर.)

ब्राह्मणों के रहने के लिए पृथक घर क्यों ? क्या ब्राह्मण उस युग के 'अछूत' थे?

एक कपटी 'मुनि' तक राजा प्रतापभानु से कहता है .

कालउ तव पद नाइहि सीसा, एक विप्रकुल छाडि महीसा
तपवल विप्र सदा वरिआरा, तिन्ह के कोप न कोउ रखवारा.
जौं विप्रन्ह वस करहु नरेसा, तौ तव वस विधि विष्नु महेसा.

चल न ब्रह्मकुल सन वरिआई, सत्य कहउं दोउ भुजा उठाई.
विप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला, तोर नास नहिं कवनेहुं काला.

—वाल कांड . 194-1,3

(तुम्हारे चरणो में काल भी आ कर सिर झुकाएगा, एक ब्राह्मण कुल ही अपवाद रहेगा. तप का बल होने के कारण ब्राह्मण सदा बलवान हैं. उन के कोप से कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता. हे राजन, यदि तुम ब्राह्मणो को वश में रख सको, तो समझो कि ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी तुम्हारे वश मे हैं. मैं दोनों हाथ उठा कर सत्य कहता हूं कि ब्राह्मणों से कोई पार नहीं पा सकता. हे राजन, तेरा नाश यदि होगा, तो केवल ब्राह्मण के शाप से ही होगा.)

राजा भानुप्रताप भी इस से इनकार नहीं करता :

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा, द्विज गुरु कोप कहहु को राखा

—वाल काड . 165-3

(राजा ने मुनि के पांव पकड़ कर कहा, यह कथन सत्य है. ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है?)

राजा के प्रार्थना करने पर मुनि ने उसे ब्राह्मणों को वश मे करने के उपाय बता कर कहा :

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे, होइहहिं सकल विप्र वस तोरे
करिहहिं विप्र होम मख सेवा, तेहिं प्रसग सहजहिं वस देवा

—वाल काड १६८-१

(हे राजन, इस प्रकार थोडे से कष्ट से ही सारे ब्राह्मण वश मे हो जाएगे. फिर वे होम और यज्ञ करेंगे और उस से सारे देवता भी वश मे हो जाएंगे.)

ब्राह्मणों के प्रसन्न रहने से, सारे देवता भी वश में रहे, तो उन्हे प्रसन्न रखना कौन नहीं चाहेगा!

ब्राह्मणों ने निरपराध राजा भानुप्रताप को अज्ञानवश शाप दे दिया. उन्हें विश्वास हो गया था कि राजा ने उन्हें ब्राह्मण मांस खिलाने का प्रयास किया. लेकिन जब ब्राह्मणों को आकाशवाणी के द्वारा वास्तविकता का बोध हुआ तो बोले :

भूपति भावी मिटइ नहिं, जदपि न दूपन तोर,
किए अन्यथा होई नहिं, विप्र शाप अति घोर

—वाल काड 204

(राजन, यद्यपि इस में तुम्हारा अपराध नहीं है, तथापि होनहार नहीं मिट सकता. ब्राह्मणो का शाप बड़ा घोर है. यह किसी तरह अन्यथा हो ही नहीं सकता.)

सत्यकेतु कुल कोउ नहिं बाचा, विप्र श्राप किमि होइ असाचा
—बाल कांड 204-3

(सत्यकेतु के कुल में कोई भी नहीं बचा. ब्राह्मणों का शाप असत्य कैसे हो सकता है.)

क्या आतंकवाद के इस से अधिक भयानक प्रचार की कल्पना की जा सकती है? यह प्रकरण रावण और विभीषण आदि के जन्म का है. उन सभी के बारे में लिखा है:

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप,
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप.
—बाल कांड 206.

(यदपि वे पवित्र, निर्मल और अनुपम पुलस्त्य के कुल में उत्पन्न हुए थे, तथापि ब्राह्मणों के शाप से सब पाप के अवतार हुए.)

इतना तो तब हुआ, जब राजा भानुप्रताप निरपराध था, वह वास्तव में अपराधी रहा होता, तो न जाने ब्राह्मणों का शाप क्याक्या कर गुजरता.

रावण राज्य का चित्र खींचते हुए तुलसी कहते हैं

सुभ आचरन कतहु नहिं होई, देव विप्र गुरु मान न कोई.
—बाल कां 214-4

(कहीं कुछ भी शुभ आचरण नहीं रह गया था. देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुओं को कोई नहीं पूछता था.)

ब्राह्मणों की पूछ, शुभ आचरण का अनिवार्य अंग है. बिना उस के शुभ आचरण की कल्पना असंभव है. इतना ही नहीं, उन्होंने ब्राह्मणों के मुख से अपने चरितनायक की जो स्तुति कराई है, वह भी विचारणीय है

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता,
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता.

(हे देवताओं के स्वामी, भक्तों के सुखदायक प्रणतपाल भगवान, आप की जय हो. आप गौओं और ब्राह्मणों का हित करने वाले हैं, दैत्यों के वैरी हैं और लक्ष्मीपति हैं.)

तुलसी के भगवान गौओं और ब्राह्मणों का विशेष हित करने वाले हैं।

भगवान के अवतार लेने के कारण वह फिर लिखते हैं

विप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार,
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार
—बाल कांड. 224.

(यद्यपि भगवान, माया, गुण और इंद्रियों से परे हैं, तो भी उन्होंने ब्राह्मण, गऊ, देवता और संतों के हित मनुष्य रूप धारण किया.)

यहां ब्राह्मणों का उल्लेख सब से पहले और संतों का उल्लेख गौओं तथा देवताओं के भी बाद है.

राम जन्म हो गया, तो राजा का दान देना स्वाभाविक है. उस का उल्लेख है:

तब नंदी मुख स्राद्ध करि जातकरम सब कीन्ह,
हाटक धेनु वसन मनि नृप विप्रन्ह कहं दीन्ह.

वाल काड 225.

(राजा ने नंदी मुखश्राद्ध कर के जातकर्म संस्कार किया और फिर सुवर्ण गाय, वस्त्र और मणि ब्राह्मणो को दान दिए.

अब तुलसी के इस राम का शरीर सौंदर्य देखिए:

उर मनिहार पदिक की सोभा, विप्र चरन देखत मन लोभा.

—वाल काड 230-3.

(उन के हृदय में मणियों का हार और चौकी सुशोभित हैं, तथा ब्राह्मणों के चरणों का चिन्ह मन को मोहित कर लेता है.)

भगवान की छाती पर भी ब्राह्मण के चरण का चिह्न ही था और कोई शुभचिह्न नहीं!

विश्वामित्र रामलक्ष्मण की याचना के लिए राजा दशरथ से मिलने आए हैं. इस अवसर पर लिखा है

मुनि आगमन सुना जब राजा,मिलन गयउ लै विप्र समाजा

ब्राह्मणों को साथ लिए विना कहीं किसी का स्वागत तक न हो सकता था.

विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को साथ लिए जनकपुरी की ओर बढ़े आ रहे हैं. रास्ते मे गगा का दर्शन होता है इस अवसर पर लिखा है.

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए, विविध दान महिदेवन्ह पाए.

—वाल काड 244-2.

(फिर ऋषियों सहित भगवान नहाए. पृथ्वी के देवताओ—ब्राह्मणों ने नाना प्रकार के दान पाए.)

राजा जनक विश्वामित्र से मिलने के लिए आ रहे हैं, तो वहां भी

सग सचिव सुचि भूरि भट, भूसुर वर गुरु ग्याति,
चले मिलन मुनिनायकहिं, मुदित राउ एहि भाति.

वाल काड 247

(राजा जनक प्रसन्न चित्त हो मंत्री, अनेक योद्धा और ब्राह्मण गुरु तथा घराने के लोगों को साथ ले कर विश्वामित्र से मिलने के लिए चले)

राजा जनक का धनुष टूट चुका है. राम के वक्षस्थल पर जयमाला पड़ चुकी है. सभी प्रसन्न हैं

नाचहिं गावहिं विबुध वधूटी, वारवार कुसुमांजलि छूटी.
जह तह विप्र वेद धुनि करही, वदी विरदावली उच्चरही.

—वाल काड 297-2.

(अप्सराएं नाच गा रही हैं. वारवार फूलों की डालियां बरस रही हैं. ब्राह्मण

यहां भी ब्राह्मण लोग ही वेद ध्वनि कर रहे हैं. दूसरा कर ही कौन सकता था!

परशुराम के साथ वार्त्तालाप के समय लक्ष्मण की वाणी कितनी यथार्थवादी है

वधे पाप अपकीरति हारे, मारतहू पा परिय तुम्हारे.
कोटि कुलिस मम वचन तुम्हारा, वृथा धरहु धनु बान कुठारा

—बाल कांड, 305-4

(आप को मार डालने से पाप लगेगा. आप से हारने से अपकीर्त्ति है. आप मारें तब भी आप के पांव ही पड़ना होगा. आप का वचन ही करोड़ों वज्रों के समान है आप तो धनुषबाण तथा कुल्हाड़ा व्यर्थ ही धारण करते हैं)

जाति विशेष के प्रत्येक सदस्य के संबंध में समस्त समाज की ऐसी धारणा हो और वह दृढ़ हो गई हो, तो फिर समाज को और किस सुरक्षा की आवश्यकता है?

लक्ष्मण ने कहा

मिले न कबहु सुभट रन गाढे, द्विज देवता घरहि के बाढे

—बाल कांड, 308-4.

(आप को युद्ध में कभी अच्छे योद्धा नहीं मिले ब्राह्मण और देवता घर बैठे ही बड़े बनते हैं)

यह ब्राह्मणशाही के खिलाफ विद्रोह का स्वर था, इसलिए राम से आगे की पंक्तियां कहलवा कर तुलसी ने इस स्वर का गला घोंट दिया है

हमहि तुम्हहि सरबरि कस नाथा, कहहु न कहा चरन कह माथा

(हे नाथ, हमारीतुम्हारी बराबरी कैसी? कहिए न कहा हम चरणों के समान और कहा आप मस्तक के समान!)

धनुष टूट गया परशुराम हतप्रभ हो कर तपस्या करने के लिए वन चले गए तब विश्वामित्र ने राजा जनक से कहा

तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस व्यवहारु,
बूझि विप्र कुल वृद्ध गुरु वेद विदित आचारु.

—बाल कांड, 319

(यद्यपि एक प्रकार से अब विवाह तो हो ही गया, तो भी तुम कुल की मर्यादा के अनुसार सब व्यवहार करो. ब्राह्मण वंश में वृद्ध लोगों तथा गुरुओं से पूछ कर वेदानुकूल आचार करो.)

यहां भी वंश के बूढ़े लोगों और गुरुओं के रहते हुए भी बिना ब्राह्मणों के गुजारा नहीं. सब से पहले उन्हीं का उल्लेख है.

वसिष्ठ गुरु हो कर दशरथ की स्तुति कर रहे हैं:

तुम्ह गुरु विप्र धेनु सुर सेवी, तसि पुनीत कौसल्या देवी.

—बाल कांड, 326-2.

(आप गुरु, ब्राह्मण, गौ और देवताओं के सेवक हैं और वैसी ही पवित्र महारानी कौसल्या देवी हैं)

क्या यह ऊपर से चतुर्मुखी दीखने वाली सेवा, अंततोगत्वा ब्राह्मणों की सेवा ही नहीं ठहरती? गुरु प्राय. ब्राह्मण रहते हैं, इसलिए गुरु सेवा का मतलब भी ब्राह्मण सेवा ही है. ब्राह्मण सेवा तो ब्राह्मण सेवा है ही, गौ सेवा का भी प्रचलित अर्थ ब्राह्मण को गौ दान देना ही रह गया है और सेवा का मतलब तो ब्राह्मण सेवा रहा ही है.

राम तथा लक्ष्मण की कीर्त्ति अयोध्या पहुंची, तो राजा दशरथ की रानियों ने:

दिए दान आनद समेता, चले विप्रवर आसिप देता.

—वाल काड, 327-4.

(उन्होंने आनंदित हो कर दान दिए, और विप्रवर आशीर्वाद देते हुए विदा हुए.)

बारात की तैयारी में भी :

वाहन अपर अनेक विधाना, सिविका सुभग सुखासन जाना.
तिन्ह चढि विप्रवर वृंदा, जनु तनु धरे सकल श्रुति छदा.

—वाल कांड, 332-2.

सुंदर पालकियां और विमान, जिन में बैठने की सुविधा थी तथा कई तरह की और सवारियां भी थीं. उन पर सवार हो कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों के झुंड चले. वे ऐसे मालूम देते थे, मानो संपूर्ण वेदो के छंद मूर्त्तिमान हो कर जा रहे है.)

सब जनकपुरी में पहुंच गए हैं. यहां भी वही एक बात:

विप्रवृंद वदे दुहुं भाई, मनभावती असीसें पाई

—वाल काड, 340-3.

(फिर दोनो भाइयों ने ब्राह्मण समाज को नमस्कार किया और मनमाने आशीर्वाद प्राप्त किए.)

राम विवाह की तैयारी हो रही है, तो इस अवसर पर भी.

सुभग सुआसिनी गावहिं गीता, करहिं वेद ध्वनि विप्र पुनीता.

वाल काड 345-2.

सौभाग्यवती स्त्रियां सुदर गीत गाने लगीं और ब्राह्मण लोग पवित्र पाठ करने लगे)

फिर तुरंत देखिए:

समयसमय सुर वरपहिं फूला, सांति पढ़हिं महिसुर अनुकूला,

—वाल काड 351-3.

(समयसमय पर देवता फूल बरसाते हैं. ब्राह्मण लोग अनुकूल शांति पाठ करते हैं.)

रामचरित मानस में पगपग पर ब्राह्मणों का उल्लेख है, लेकिन क्षत्रियों का उल्लेख जातिगत दृष्टि से कितनी बार है? वैश्यों का तो प्रायः है ही नहीं. शूद्रों

का जहां कहीं भी उल्लेख हुआ है, वहां साथ ही यह घोषणा भी है कि वे नीच जाति के हैं.

तुलसी के अनुसार वेदों को भी ब्राह्मण वेष ही धारण करना पड़ता है:

विप्र वेष धरि वेद सब कहि विवाह विधि देहिं

—बाल कांड 356

(वेद ब्राह्मणों का वेष धारण कर संपूर्ण विवाह विधि बता देते थे.)

आगे दान दिए जाने की चर्चा है. कहना अनावश्यक है कि दान मात्र ब्राह्मणों को ही मिलने वाला है:

चारि लच्छ वर धेनु मंगाई, काम सुरभि सम सील सुहाई
सब विधि सकल अलंकृत कीन्ही, मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही

—बाल कांड 363-1,2

(कामधेनु के समान शीलवाली सुंदर चार लाख गाएं मंगवाईं. उन सब को सब तरह के गहने पहनाए और प्रसन्नता के साथ राजा ने ब्राह्मणों को दान दीं.)

सीता की विदा के समय जनक उसे पहुंचाने के लिए चले हैं.

भूसुर सचिव समेत समाजा, संग चले पहुंचावन राजा.

—बाल कांड 371-2

(ब्राह्मण, मंत्रीगण और समाज सहित राजा पहुंचाने के लिए चले)

राम सोने जा रहे हैं, तो भी ब्राह्मणों के चरणों का स्मरण अनिवार्य है:

सुमिरि संभु गुरु विप्रपद किए नींद बस नैन.

—बाल कांड: 391

कभीकभी तो ऐसा संदेह होता है कि रामचरित मानस राम के महत्त्व से भी अधिक ब्राह्मणों का महत्त्व सिद्ध और स्थापित करने वाला महाकाव्य है.

राम के राज्याभिषेक के लिए जोजो तैयारियां आवश्यक हैं, उन में एक आदेश यह भी है:

पूजहु गनपति गुरु कुलदेवा, सब विधि करहु भूमिसुर सेवा

—अयोध्या कांड· 6-4

(गणेश तथा कुल देवताओं की पूजा करो और ब्राह्मणों की सब तरह सेवा करो.)

राम के वन गमन के समय भी तुलसी ब्राह्मणों को नहीं भूलते:

कहि प्रिय वचन सकल समुझाए, विप्र वृंद रघुबीर बोलाए.
गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे, आदर दान विनय बस कीन्हे

—अयोध्या कांड 80-1

(राम ने प्यारे वचन कह कर सब को समझाया. फिर ब्राह्मणों को बुलवाया और गुरु से कह कर उन्हें वर्षों के लिए भोजन दिया और आदर, दान तथा विनय से उन्हें प्रसन्न किया.)

ब्राह्मणों को दान देने का कोई असमय है ही नहीं. तभी तो ऐसे दुख

समय में भी वर्षों के लिए भोजन दिया और लिया जा रहा है.

वन मे राम वाल्मीकि मुनि से कह रहे हैं:

मगल मूल विप्र परितोषू, दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू.

—अयोध्या कांड 126-2

(ब्राह्मणों का प्रसन्न होना ही मंगल की जड़ है. ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर डालता है.)

मंत्री सुमंत राम को वन गमन के लिए विदा कर के अकेला लौट आया है, तव उस की दशा का वर्णन इस प्रकार है:

पैठत नगर सचिव सकुचाई, जनु मारेसि गुरु बाभन गाई.

—अयोध्या कांड: 147-2

(मत्री नगर में घुसते समय ऐसा सकुचाता था मानो उस ने गुरु, ब्राह्मण और गाय मार डाले हों.)

यहां भी ब्राह्मण को सामान्य व्यक्ति से विशिष्ट सिद्ध करने का प्रयास है.

दशरथ के श्राद्ध के समय भी तुलसी ब्राह्मणों को नहीं भूलते.

सिंघासन भूषन बसन अन्न धरनि धन धाम, दिए भरत लहि भूमिसुर भे परिपूरन काम.

—अयोध्या कांड· 171.

(भरत ने ब्राह्मणों को सिंहासन, भूषण, वस्त्र, अन्न, पृथ्वी, धन, मकान सब दिए. उन्हें ले कर ब्राह्मण पूर्ण काम हो गए.)

तुलसी ने ब्राह्मणों की तुलना में जिन्हें 'नीच' कहा है, उन की चर्चा भी अप्रासंगिक न होगी. भरत और गुह के प्रेमपूर्ण मिलाप का वर्णन है:

लोक वेद सब भांतिहि नीचा, जासु छाह छुई लेइअ सीचा.
तेहि भरि अंक राम लघु भ्राता, मिलत पुलक परिपूरित गाता.

—अयोध्या कांड: 194-2

(लोक और वेद में जो सब तरह से नीच है और जिस की छाया के भी छू जाने से स्नान करना होता है, उस निषाद से राम के छोटे भाई भरत लिपट कर मिल रहे हैं, और उन का शरीर पुलकायमान हो रहा है.)

लाख लिपट कर मिलें, लाख पुलकायमान हों, क्या उस से तुलसी की इस रेख में मेख लग सकती है कि निषाद आदि, लोक और वेद में सब तरह से नीच हैं और उन की छाया के छू जाने मात्र से भी स्नान करना होता है. एक निषाद ही क्या, दूसरों की भी खबर ली है:

स्वपच सबर खस जमन जड़ पावंर कोल किरात,
राम कहत पावन परम होत भुवन विख्यात.

—अयोध्या कांड· 195

(चांडाल, भंगी, शबर, खस, यवन, मूर्ख, नीच, कोल, भील, किरात इत्यादि सभी राम नाम लेने से परम पवित्र हो जाते हैं, यह बात सारे संसार में प्रसिद्ध है.)

नीच और मूर्ख शब्दों के साथ इन जातियों की गणना करना, क्या यह सिद्ध नहीं करता कि तुलसी इन पूरी जातियो को हीन समझते हैं?

आगे स्वयं गुहराज कह रहे हैं

कपटी कायर कुमति कुजाती, लोक वेद बाहर सब भाती

—अयोध्या कांड 196-1

(मैं कायर, कपटी, कुमति, कुजाति और हर तरह से लोक और वेद से बाहर हू)

कौन सा अपशब्द बचा है, जिस का उपयोग गुहराज अपने लिए नहीं कर रहा है? वह लोक और वेद से बाहर होने पर भी ब्राह्मणशाही के जाल की कितनी बडी मछली है?

सामान्य रूप से तुलसी के स्त्री प्रशसक होने की ख्याति नहीं ही है, किंतु ब्राह्मणो की स्त्रिया हों, तो वे तो पूज्य हैं ही:

गुरुतिय पद बदे दुहु भाई, सहित विप्रतिय जे संग आई

—अयोध्या कांड. 245-1

(राम तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों ने गुरुओ की स्त्रियों को नमस्कार किया. साथ ही उन ब्राह्मण स्त्रियों को भी, जो सग आई थीं.)

भरत राम को वन से वापस लौटा लाने मे असमर्थ हो कर स्वयं अयोध्या लौट आए हैं, और राज्यानुशासन कर रहे हैं. यह भी ब्राह्मणो से कहते हैं:

भूसुर बोलि भरत कर जोरे, करि प्रनाम कर विनय निहोरे

ऊचनीच कारजु भल पोचू, आयसु देव न कर सकोचू.

—अयोध्या कांड: 3-23-2

(भरतजी ने ब्राह्मणों को बुला कर उन्हें हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और बड़ी नम्रता से अनुग्रह की प्रार्थना कर कहा. आप लोग ऊंचनीच, अच्छाबुरा जो कुछ कार्य हो, उस के लिए मुझे आज्ञा दीजिएगा. संकोच न कीजिएगा.)

ब्राह्मणो की आज्ञा हो तो अच्छाबुरा कोई भी कार्य हो सकता है!

राम सीता को खोजते फिर रहे हैं, रास्ते मे पूर्व जन्म का गंधर्व एक राक्षस मिलता है. उस की कथा यों है कि एक बार इद्र की सभा में उस ने गान किया उस पर दुर्वासा मुनि प्रसन्न नहीं हुए. गंधर्व ने उन्हें अनभिज्ञ कह दिया. बस दुर्वासा ने उसे शाप दे दिया और बेचारे को राक्षस का जन्म ग्रहण करना पड़ा. उसी पूर्व जन्म के गधर्व को तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम क्या शिक्षा दे रहे हैं:

सुनु गंधर्व कहउं मैं तोही, मोहि न सुहाइ ब्रह्म कुल द्रोही.

—अरण्य कांड· 39-4

(हे गंधर्व, सुन, मैं तुझे कहता हूं, मुझे ब्राह्मण कुल द्रोही अच्छा नहीं लगता.)

मन क्रम वचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव,

मोहि समेत विरचि सिव बस ताके सब देव. —अरण्य कांड. 40

(जो कोई कपट का त्याग कर मन, वचन और कर्म से ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस के बस में मुझ सहित ब्रह्मा, शिव और सब देवता हो जाते हैं.)

सापत ताड़त परुष कहता, विप्र पूज्य अस गावहिं संता
पूजिय विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना

—अरण्य काड 40-1

(ब्राह्मण चाहे शाप दे, मारे या कटु वचन कहे, तो भी वह पूज्य होता है. ब्राह्मण शील और गुणों से हीन हो, तो भी उसे पूजना चाहिए और शूद्र गुण और ज्ञान में निपुण हो, तो भी उसे नहीं पूजना चाहिए, ऐसा संत पुरुष कहते हैं.)

स्वयं राम के मुंह में डाली गई जाति स्वार्थ मूलक, समाज हित विरोधिनी, इन विषैली चौपाइयों की और किसी तरह व्याख्या हो ही नहीं सकती, सिवा इस के कि यहां पहुंच कर ब्राह्मणों के निहित स्वार्थों ने एकदम नंगा रूप धारण कर लिया है. यदि शील और गुण से हीन होने पर भी ब्राह्मणों की पूजा करना और गुणो तथा शील ज्ञान में प्रवीण होने पर भी शूद्रों की पूजा न करना ही संत मत है, तो फिर असंत मत और किसे कहते हैं?

ब्राह्मणों को अनावश्यक महत्त्व दिलाने का एक और प्रमाण है:

मसक दस बीते हिमत्रासा, जिमि द्विजि द्रोह किए कुल नासा.

—किष्किधा कांड: 19-4

(मच्छर और डांस ठंड के दुख से ऐसे नष्ट हो गए, जैसे ब्राह्मण से द्वेष करने पर कुल नष्ट हों.)

यह ब्राह्मणशाही की प्रतिष्ठा का एक अद्भुत प्रयास है:

ब्रह्म अस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह विचार.
जो न ब्रह्म सर मानऊं, महिमा मिटई अपार.

—सुन्दर काड: 19.

(मेघनाद ने हनुमान को पकड़ने के लिए उन पर ब्रह्मस्त्र का प्रयोग किया. यह देख कर हनुमान ने मन में विचार किया: यदि मैं ब्राह्मास्त्र को न मानूंगा, तो इस अस्त्र की महिमा मिट जाएगी.)

भाई को समझाने में असमर्थ रह कर विभीषण शत्रु पक्ष में राम के पास चला आया है, तो राम कहते हैं:

सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ़ नेम.
ते नर प्रान समान मम जिन्ह के द्विज पद प्रेम.

सुंदर काड: 49.

(जो सगुण ब्रह्म उपासक हैं, जो परोपकार करने में तत्पर हैं, जो नीतिमान और दृढ़ नियम वाले हैं और जिन का ब्राह्मणों के चरणों में प्रेम है, वे मनुष्य मुझे प्राण के समान प्यारे हैं.)

यदि किसी व्यक्ति या जाति में प्रथम तीनों गुण हों, किंतु मात्र चौथा गुण—

ब्राह्मणों के चरणों मे प्रेम न हो, तो उस की क्या स्थिति होगी? ब्राह्मणों के चरणों मे प्रेम होने मे ऐसी कौन सी विशेषता है, अथवा उस से ऐसा कौन सा समाजहित होता है कि उस कारण वह व्यक्ति अथवा समाज राम को 'प्राण के समान प्यारा,' हो जाता है?

राम ने विस्तार से युद्ध के बारे में कहा है:

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा, एहि सम विजय उपाय न दूजा.

—लंका काड. 102-5

(ब्राह्मणों और गुरुओं की पूजा अथवा ब्राह्मण गुरुओं की पूजा अभेद कवच है. इस के समान विजय का दूसरा उपाय नहीं है)

इद्र ने राम के लिए रथ भेजा है, जिस से अब वे भी विरथी नहीं रहे हैं. इस अवसर पर भी:

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा, विप्र चरन पकज सिर नावा.

—लका काड. 114-1

(ऐसा कह कर और ब्राह्मणों के चरण कमलों मे शीश झुका कर रघुनाथ ने रथ चलाया.)

ब्राह्मणों के चरण कमलों के समान अमोध कवच और दूसरा कौन सा होगा?

राम रावण का वध कर और विभीषण को राजतिलक दे अयोध्या लौट आए हैं. इस अवसर पर भी

सकल द्विजन्ह मिलि नायऊ माथा, धरम धुरंधर रघुकुल नाथा.

—उत्तर कांड 13-3

(धर्म के आधार, रघुवश के स्वामी राम ने सब ब्राह्मणों से मिल कर उन के चरणों मे प्रणाम किया.)

धर्मभीरु पाठकों पर यह रोब गांठा जा रहा है कि 'धर्म के आधार' राम भी ब्राह्मणों को समयअसमय नमस्कार करते हैं.

राम के अयोध्या के राजसिहासन को सुशोभित करने का अवसर आया है, तो वसिष्ठ की आज्ञा है:

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन, रामचद्र बैठहिं सिहासन

—उत्तर काड: 21-3

(सब ब्राह्मण प्रसन्न हो कर आज्ञा दो कि रामचद्रजी सिहासन पर बैठें)

रामराज्य स्थापित हो गया. उस की विशेषताओं का वर्णन है:

सब उदार सब पर उपकारी, विप्र चरन सेवक नरनारी.

—उत्तर कांड 44-4

(सभी उदार हैं सभी परोपकारी हैं. सभी नरनारी ब्राह्मणों के चरणों के सेवक हैं)

प्रतीत होता है कि सारा औदार्य और सारा परोपकार ब्राह्मणों के चरणों की सेवा तक ही सीमित है. इतना ही नहीं—उत्तर काड मे दुष्ट पुरुषों के

लक्षण इस प्रकार गिनाए गए हैं:

मातु पिता गुरु विप्र न मानहिं आपु गए अरु घालहिं आनहिं.
विप्रद्रोह सुर द्रोह विसेषा, दंभ कपट जिय धरे सुवेषा.

—उत्तर कांड 62-3, 4

(वे माता पिता, गुरु, और ब्राह्मणों को नहीं मानते आप तो गएबीते हैं ही औरों को भी ले डूबते हैं. वे विशेषकर ब्राह्मणों और देवताओं से द्वेष करते हैं. दभ और कपट तो उन में भरा रहता है किंतु वे ऊपर से अच्छा वेष बनाए रखते हैं.)

इन दो चौपाइयों में ब्राह्मणो को न मानने वालों के लिए अपशब्दों के सभी पार्याय इकट्ठे नहीं किए गए हैं?

आगे भी श्री रामचद्रजी से कहलवाया है:

पुन्य एक जग महु नही दूजा, मन क्रम वचन विप्र पद पूजा.
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा, जो तजि कपट करइ द्विज सेवा.

—उत्तर कांड 67-14

(ससार मे पुण्य एक ही है, दूसरा नहीं, वह है—मन, कर्म, वचन से ब्राह्मणों के चरणों की सेवा करना. जो कपट छोड़ कर ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुनि तथा देवता उसी के अनुकूल रहते हैं.)

ब्राह्मण समाज के लिए तुलसी इस से अधिक और क्या लिख और कर सकते थे? इस सारे ब्राह्मण माहात्म्य को निम्नलिखित चौपाइयो के साथ पढ़िए, जो तुलसी ने एक पूर्व जन्म के शूद्र से कहलवाई हैं:

अधम जाति मैं विद्या पाए, भयउं जथा अहि दूध पियाए.
मानी, कुटिल कुभाग्य कुजाती, गुरु कर द्रोह करउ दिनराती.

—उत्तर कांड. 163-34

(नीच जाति का मैं, विद्या पाने पर वैसा हो गया, जैसा दूध पिलाने पर सांप हो जाता है. अभिमान, कुटिल, कुभाग्यवाला, कुजाति मैं दिन रात गुरु का द्रोह करता था.)

इस से बढ़ कर शूद्रों की और क्या निंदा हो सकती है?

अंत में उस शूद्र को ब्राह्मण का जन्म मिल जाता है. इस का उल्लेख है.

चरम देह द्विज कै मैं पाई, सुर दुर्लभ पुरान श्रुति गाई

—उत्तर कांड. 181-2

(अंत मे मुझे वह ब्राह्मण शरीर मिला, जो पुराण तथा वेदों के अनुसार देवताओं को भी दुर्लभ है)

ब्राह्मण की निंदा करने का फल सुनिए:

द्विज निंदक बहु नरक भोग करि, जग जनमइ वायस सरीर धरि.

—उत्तर कांड: 207-12

ब्राह्मण का निंदक बहुत से नरक भोग कर, कौवे का शरीर धारण कर

जन्म लेता है.

इस मे सदेह नहीं कि तुलसी ने रामचरितमानस मे ब्राह्मण पक्षपात का अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है. यह पक्षपात या तो उन की अपनी जड धारणाओं की अभिव्यक्ति है या फिर ब्राह्मण समाज के निहित स्वार्थों की रक्षा का जानबूझ कर किया गया साहित्यिक प्रयास है. लेकिन हमे डर है कि भावी इतिहास लेखक का फैसला कहीं यह न हो कि ऐसा कर के तुलसी ने स्वय ब्राह्मणो का भी अहित ही किया है.

सतोष का विषय है कि जनता जगरूक है और अब-रामचरितमानस की विषैली शिक्षाओं का प्रभाव दिनोदिन घट रहा है. ●

तुलसी साहित्य : अनुवादों की नुमाइश

हृदयहीन केशवदास के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने 'रामचंद्रिका' में छंदों की नुमाइश लगा दी है. छंदों का जल्दीजल्दी बदलना और अलंकारों की भरमार देख कर लोग कहते हैं कि केशव कवि पहले थे, भक्त बाद में. इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि केशव में भक्तिभावना कवित्व से कम थी.

नुमाइश के दृष्टिकोण से देखने पर हम तुलसी को केशव से कम नहीं पाते. केशव को छंदों और अलंकारों का शौक था तो तुलसी अनुवादों के दीवाने थे. हम तुलसी साहित्य को अनुवादों की नुमाइश कह सकते हैं इस दृष्टि से यदि तुलसी साहित्य पर विचार किया जाए तो स्वीकार करना पड़ेगा कि तुलसी सब से पहले अनुवादक थे, भक्त या कवि बाद में.

तुलसी के विस्तृत अध्ययन की प्रशंसा करनी पड़ेगी. उन के साहित्य में वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पुराणों, नाटकों, पंचतंत्र एवं संस्कृत साहित्य की फुटकर सूक्तियों के अनगिनत अनुवाद मिल सकते हैं. ऐसा लगता है कि तुलसी बाबा को पढ़ते समय किसी भी ग्रंथ का जो स्थल जोरदार लगता होगा, उसे वह नोट कर लेते होंगे और उसे अपनी कविता मे स्थान विशेष पर प्रयुक्त कर लेते होंगे. कहींकहीं तो अनुवाद वाले ये स्थल बलपूर्वक ठूंसे गए लगते हैं.

तुलसी साहित्य के अनूदित स्थलों का ज्ञान हो जाने पर पढ़ने वालों को बड़ा विचित्र अनुभव होगा. सभवतः एक भी ऐसा मार्मिक स्थल नहीं है जो तुलसी का अपना हो, सभी दूसरों के अनुवाद हैं. जिन उक्तियो, कल्पनाओं और अलंकारो के लिए लोग तुलसी के सामने श्रद्धानत हो जाते हैं, वे सब उधार ली हुई बातें हैं.

तुलसी साहित्य में भावानुवाद और अंशानुवाद इतने हैं कि उन्हे गिनना संभव नहीं है. अविकल अनुवादों की संख्या भी कम नहीं है. इस प्रकार लगभग आधा तुलसी साहित्य अनुवाद है. संभव है, इस से अधिक अनुवाद भी हों,

क्योंकि सभी पुस्तको के समस्त स्थलों को ध्यान मे रख कर तुलसी साहित्य मे उन के अनुवाद ढूंढना सरल काम नहीं है. संभव है तुलसी के समय मे संस्कृत साहित्य की जो पुस्तकें उपलब्ध रही हों. अब उन में से कुछ न मिलती हों.

मैं तुलसी साहित्य मे संस्कृत ग्रंथों से अनूदित जितने भी स्थल खोज सका हूं, उन सब को इस छोटे से लेख मे देना सभव नहीं है. उन से एक छोटीमोटी पुस्तक बन सकती है नीचे कुछ विशिष्ट स्थलों के विषय मे चर्चा की जा रही है. इन मे अधिकांश स्थल ऐसे हैं, जिन्हें तुलसी साहित्य का मर्म कहा जाता है और जिन्हें लोग तुलसी की उद्भावना समझ कर प्रसन्न होते हैं

तुलसी ने वाल्मीकि से बहुत कुछ सहायता ली है. रामकथा के अतिरिक्त लगभग सभी ऋतु वर्णन वाल्मीकि रामायण से लिए गए हैं. 'रामचरितमानस' के प्रारंभ मे तुलसी ने वाल्मीकि की स्तुति की है :

बदौं मुनिपद कज, रामायन जेहि निरमयउ,
सखर सकोमल मजु, दोप रहित दूपरा सहित

—रामचरितमानस, बालकाड

इस सोरठे की प्रशंसा श्लेष और मुद्रालंकार के लिए की जाती है. पर यह संस्कृत की निम्न सूक्ति का अनुवाद मात्र है :

नमस्तस्मै कृता येन पुण्या रामायणी कथा,
सदूपणापि निर्दोपा सखरापि सकोमला.

—सूक्तिसुधासार, पृष्ठ 60

तुलसी राम के अनन्य भक्त थे, उन्होंने रामनाम की वडी महिमा गाई है. कहा जाता है कि राम शब्द के दोनों व्यंजनों 'र' एवं 'म' के विषय मे उन्होंने निम्न खोज की है:

एक छत्र इक मुकुटमरिण सब बरनन पर जोउ,
तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ.

—रामचरितमानस, बालकाड

कितनी गहरी खोज है! 'र' एवं 'म' दोनों ही जब दूसरे व्यंजनों से मिलते हैं तो सदा उन के ऊपर ही रहते हैं. एक रेफ के रूप मे और दूसरा अनुस्वार के रूप मे जैसे—मार्ग, सायं. पर यह दोहा महारामायण के निम्न श्लोक का अनुवाद है:

निर्वर्णं रामनामेद केवल च स्वराधिकम्
सर्वेपा मुकुट छत्र मकारो रेफव्यजनम्. —बालकाड I-II.

तुलसी बाबा ने स्थानस्थान पर नारी की अच्छी खबर ली है. वह नारी मे आठ बुराइया स्थायी रूप से मानते हैं:

नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं.
साहस अनृत चपलता माया, भय अविवेक अशौच अदाया.

—रा च मा , लकाकाड

इस के लिए बेचारे तुलसी पर क्रोध करने की आवश्यकता नहीं है, वह तो अनुवाद करने भर के दोषी हैं. यह खोज तो चाणक्य की है

असत्यं साहस माया मात्सर्यं चातिलुब्धता,
निर्गुणत्वमशौचत्वं स्त्रीणा दोषा स्वभावजा.

—2-1

स्त्रियो से संबंधित तुलसी साहित्य में कुछ और स्थल भी देख लिए जाएं. सीताहरण के पश्चात राम लक्ष्मण से कहते हैं :

शास्त्र सुचिंतित पुनिपुनि देखिय, भूप सुसेवित वस नहिं लेखिय.'
राखिय नारि यदपि उर माही, युवती शास्त्र नृपति वस नाही

—रा. च. मा., अरण्यकाड.

तो क्या राम की नारी विषयक भावनाएं इस प्रकार की थीं? क्या आश्रम को सूना देख कर राम ने समझ लिया कि सीताजी अपनी इच्छा से किसी के साथ भाग गई हैं? तुलसी ने राम का जैसा चरित्र अंकित किया है, उस के अनुसार राम का यह वचन उचित नहीं लगता पर तुलसी बेचारे क्या करें? उन्हें तो 'पंचतंत्र' के निम्न श्लोक का अनुवाद करना था:

शास्त्रं सुचिंतितमपि प्रतिचिंतनीय स्वाराधितोऽपि नृपति. परिशंकनीय,
अकस्थितापि युवति परिरक्षणीया शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम

—1-205

दूसरा स्थल कहां मिलता इसे रखने का?

वालि ने राम से अपने वध का कारण पूछा तो वह कहने लगे :

अनुज वधू भगिनी सुतनारी, सुनु सठ ये कन्या सम चारी.
इनहि कुदृष्टि विलोकै जोई, ताहि वधे कछु पाप न होई.

—रा. च. मा , किष्किधाकाड

ऊपर की अर्धाली का सीधासाधा अर्थ है छोटे भाई की पत्नी, बहन और पुत्रवधू ये चारो कन्या के समान हैं. गिनाई गईं तीन और बताई गईं चार इसे सुधारने के लिए पचासियो भांति अर्थ की खींचतान होती है दूसरे, इन्हीं चार को कुदृष्टि से देखने की बात क्यों कही गई? क्या इन के अतिरिक्त माता, चाची, मौसी, मामी एवं नातेरिश्ते से बाहर की नारियो को कुदृष्टि से देखना कम बुरा है? भारतीय आदर्श के अनुसार तो परस्त्री माता के समान है फिर यह भेद-भाव क्यों? तुलसीदासजी के सामने तो 'अध्यात्म रामायण' के निम्न श्लोक के अनुवाद करने का प्रश्न था. औचित्य पर विचार कौन करता?

दुहिता भगिनी भ्रातुर्भार्या चव तथा स्नुपा,
समा यो रमते तासामेकामपि विमूढधी. 60
पातकी स तु विज्ञेय स वध्यो राजभि. सदा 61

—किष्किधाकाड, सर्ग 3

तुलसी ने पतिव्रताओ के चार श्रेणीभेद किए हैं:

जग पतिव्रता चारि विधि अहही, वेद पुराण सत अस कहही.
उत्तम के अस बस मनमाहीं, सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं.
मध्यम परपति देखहिं कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे.
धर्म विचारि समुझि कुल रहई, सो निकृष्ट तिय अस श्रुति कहई.
विनु अवसर भय ते रह जोई, जानेहु अधम नारि जग सोई

—रा. च. मा , अरण्यकांड

तुलसीदासजी ने उक्त विभाजन को प्रभावशाली बनाने के लिए वेद, पुराण, सत और श्रुति का सहारा लिया है. वे क्या स्पष्ट रूप से 'शिवपुराण' का नाम नहीं ले सकते थे, जहां से पद लिया गया है.

चतुर्विधास्ता. कथिता नार्यो देवि पतिव्रता 72
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्, 74
नान्य परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता.
या पितृ भ्रातृ सुतवत् पर पश्यति सद्‌धिया,
मध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता. 75
बुद्‌ध्वा स्वधर्मं मनसा व्यभिचारं करोति या,
निकृष्टा कथिता सापि सुचरित्रा च पार्वति 76

—रुद्रसंहिता, पार्वतीखंड, अध्याय 54

तुलसी ने नारियों को सलाह दी है कि वे बुरे से बुरे पति का भी अपमान न करें, अन्यथा उन्हें नरक मे भांतिभांति के दुख मिलेंगे:

वृद्ध रोगबस जड धनहीना अंध बधिर क्रोधी अतिदीना,
ऐसेहु पतिकर किय अपमाना, नारि पाव जमपुर दुख नाना

—रा. च मा , अरण्यकांड

ऊपर के 'धनहीना' और 'अतिदीना' मे क्या अंतर है, इसे तुलसी बाबा ही जानें. उन्होंने जिस प्रकार के पति गिनाए हैं, वे 'भागवत' और 'शिवपुराण' के निम्न श्लोकों से लिए गए हैं·

दुश्शीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा,
पति स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी.

—भागवत, स्कंध 10, अध्याय 29-35

क्लीबं च दुरवस्थं च व्याधितं वृद्धमेव च,
सुखितं दु खितं चापि पतिमेकं न लंघयेत्

—शिवपुराण, पार्वतीखंड, अध्याय 54

तुलसी ने परस्त्री दर्शन का निषेध करते हुए लिखा है.

जो आपन चाहहि कल्याना, सुगति सुमति सुभ समुचित विधि नाना.
तो परनारि लिलार गुसाईं, तजहु चौथ चंदा की नाईं.

—रा च मा., सुंदरकांड

परनारी के मस्तक को चतुर्थी का चंदा बताने की कल्पना तुलसी के मस्तिष्क

की उपज नही है. यह तो निम्न सूक्ति का अनुवाद है:

उदर्कभूतिमिच्छद्भि: सद्भि: खलु न दृश्यते,
चतुर्थी चद्र लेखेव परस्त्री भाल पट्टिका.

जो नारी पति की सेवा नहीं करती, उसे तुलसी ने अधम बताया है

मातु पिता भ्राता हितकारी, मितप्रद सब सुनु राजकुमारी.
अमितदान भर्ता वैदेही, अधम सो नारि जो सेव न तेही.

—रा. च. मा., अरण्यकाड

इस के विषय मे 'शिवपुराण' का निम्न श्लोक देखिए.

मित ददाति जनको मित भ्राता मितं सुत ,
अमितस्य हि दातार भर्तारं पूजयेत् सदा.

—रुद्रसहिता, पार्वतीखड, अध्याय 54, श्लोक 50

तुलसी बाबा वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक थे. उन्होने स्थानस्थान पर नीच ब्राह्मण को भी उत्तम शूद्र से अच्छा कहा है.

इसी प्रकार का एक स्थल देखिए:

पूजिय विप्र शील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ज्ञान प्रवीना.
दुष्टा धेनु दुही सुनु भाई, साधु रासभी दुही न जाई.

—रा. च. मा., उत्तरकाड

क्या दूर की कोड़ी लाए हैं तुलसीदासजी! दुष्ट गाय भी दुही जाती है और सीधीसादी गधी को भी कोई नहीं दुहता तो शूद्र और ब्राह्मण मे गधी और गाय जितना अंतर है. इस के लिए जो कुछ कहना हो, चाणक्य नीति के निम्न श्लोक से कहिए :

पतितोऽपि द्विज: श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेंद्रिय .
निर्दुग्धा चापि गौ. पूज्या न च दुग्धवती खरी. —6-5

एक अच्छा मित्र अपने मित्र के लिए क्याक्या करता है, इसे देखिए·

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा, गन प्रकटे अवगुनहि दुरावा
विपति काल कर सतगुन नेहा, श्रुति कह संत मित्र गुन एहा

—रा. च. मा. किकिष्धाकांड

तुलसी के शब्दों में सन्मित्र के उक्त लक्षण श्रुति के बताए हुए हैं. कितना बड़ा झूठ है यह? उक्त पंक्तियां भर्तृहरि के 'नीतिशतक' के निम्न श्लोक का अनुवाद हैं:

पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यानि गूह्यति गुणान् प्रकटीकरोति,
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले मन्मित्रलक्षणमिद प्रवदति संत . 72

तुलसीदासजी ने बुरे मित्र से बचने की भी सलाह दी है:

आगे कह मृदु वचन बनाई, पाछे अनहित मन कुटिलाई
अस कुमित्र परिहरे भलाई .. —रा. च मा., किष्किंधाकांड

इतना क्या कम है कि इस बात के लिए तुलसी ने किसी जोरदार पुस्तक

का नाम नहीं लिया. वैसे यह सब 'चाणक्य नीति' के निम्न श्लोक का अनु-वाद है:

परोक्षे कार्यहतार प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्, वर्जयेत्तादृशं मित्र विषकुम पयोमुखम्.
—2-5

सज्जनप्रशंसा और दुर्जननिंदा पर भी तुलसी ने पर्याप्त लिखा है. सज्जन पुरुष अपने अनुकूल और प्रतिकूल का भेद किए बिना ही सब का उपकार करते हैं. इस के लिए तुलसी ने फूल का उदाहरण लिया है:

वदौ सत, समानचित हित अनहित नहिं कोय,
अंजलिगत सुभ सुमन, जिमि सम सुगध कर दोय.
—रा. च मा., वालकाड

यह भावना संस्कृत की निम्न सूक्ति से ली गई है:

अजलिस्थानि पुष्पाणि वासयति करद्वयम्,
न हो सुमनसा प्रीतिर्वामदक्षिणयो. समा.
—सूक्तिरत्नाकर, 115

मूल श्लोक मे जो 'सुमनसां,' तथा 'वामदक्षिणयो:' मे श्लेष का चमत्कार है, उसे तुलसी नहीं ला पाए हैं.

अब हम तुलसी साहित्य के कुछ ऐसे स्थल लेते हैं जो सूक्ति के रूप में जन-साधारण की जिह्वा पर विराजमान रहते हैं. अधिक चक्कर मे न पड़ कर साथ साथ ही वे स्थल भी देते जाएंगे, जिन के ये अनुवाद हैं:

कोउ न काहु सुख दुख कर दाता. निज कृत कर्म भोग सब ताता
—रा च मा , वालकाड

सुखस्य दुःखस्य न कोपि दाता स्वकर्म सूत्र ग्रथितो हि लोक
आरत काह न करहि कुकरमू —रा. च मा., अयोध्याकांड
बुभुक्षित. कि न करोति पापम् —पचतंत्र 2-97
अरध तजहि बुध सरवस जाता. —रा च. मा., अयोध्याकाड
सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पडित —पचतत्र 5-41
जननी जोवन विटप कुठारी —रा. च मा., अयोध्याकाड
मातु. केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्
सचिव वैद्य गुरु तीनि जो प्रिय बोलहि भय आस,
राजधर्म तनु तीनि को, होहिं वेगि ही नास
—रा. च. मा , सुदरकाड

वैद्यो गुरुश्च मन्त्री च यस्य राज्ञ प्रियवदा., शरीरधर्मकोशेभ्य: क्षिप्रं स परिहीयते.
—सूक्तिरत्नाकर, 940

सभावित कह अपजस लाहू, मरन कोटि सम दारुन दाहू
—रा च मा , अयोध्याकाड

सभावितस्य चाकीर्तिमरणादतिरिच्यते. गोता 2-34

बांझ कि जान प्रसव की पीरा. —रा. च. मा. वालकांड
नहि वंध्या विजानाति गुर्वी प्रसववेदनाम्. —सूक्तिरत्नाकर, 450

उत्तम मध्यम नीच गति पाहन सिकता पानि,
प्रीति परीक्षा तिहुन की वैर वितिक्रम जानि.

दोहावली, 252

उत्कृष्टमध्यमनिकृष्ट जनेषु मैत्री यद्वच्छिलासु सिकतासु जलेषु रेखा,
वैर निकृष्टजनमध्यम उत्तमेषु यद्वच्छिलासु सिकतासु जलेषु रेखा.

—सूक्तिरत्नाकर, 191

गिरा-अनयन नयन बिनु बानी. —रा. च. मा., वालकांड
या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति सूक्तिरत्नाकर 605
पंडित सोइ जो गाल बजावा. —रा. च. मा , उत्तरकांड
पांडित्ये चापलं वचः —'भागवत' स्कंध 11, अध्याय 2-4

अब हम रामचरितमानस के प्रमुख स्थलों को लेते हैं, जिन के लिए तुलसी की प्रतिभा और वर्णन चातुरी की भूरिभूरि प्रशंसा की जाती है. पता नहीं पाठकों को यह जान कर कैसा लगेगा कि वे सब के सब भिन्नभिन्न ग्रंथों के अनुवाद हैं.

सीता स्वयंवर में विवाह की शर्त की घोषणा की जा रही है :

रावन बान महाभट भारे, देखि सरासन गंवहिं सिधारे.
सोइ पुरारि कोदंड कठोरा, राज समाज आजु जो तोरा.
त्रिभुवन जय समेत वैदेही, बिनहिं बिचार बरै हठि तेही.

—रा च. मा., वालकांड

उक्त शब्द तुलसी के हों, पर भाव हैं हनुमन्नाटककार भवभूति के :

शृणुत जनककल्या क्षत्रिया. शुल्कमेते दशवदनभुजानां कुंठिता यत्र शक्ति
नमयति धनुरैशं यस्तदारोपणेन, त्रिभुवनजयलक्ष्मीर्जानकी तस्य दारा.

—अंक प्रथम, श्लोक 18

अनेक राजाओं ने शिव धनुष उठाने का प्रयत्न किया, पर सब असफल रहे. इस पर दुखी हो कर जनक को कहना पड़ा:

दीपदीप के भूपति नाना, आए सुनि हम जो प्रन ठाना.
देव दनुज धरि मनुज सरीरा, बिपुल बीर आए रनधीरा.
कुवरि मनोहरि विजय वडि, कीरति अति कमनीय.
पावन हार विरंचि जनु, रचेउ न धनुदमनीय.
कहहु काहि यह लाभ न भावा, काहु न संकर चाप चढ़ावा.
रहे उठाउव तोरव भाई, तिल भरि भूमि न सकेउ छुडाई
अब जनि कोउ माखै भट मानी, बीर विहीन मही मैं जानी.

—रा. च मा., वालकाड

उक्त स्थल की दूसरी और चौथी पंक्ति को छोड़ कर शेष सब 'हनुमन्नाटक'

के निम्न श्लोक का अनुवाद है :

आद्वीपात् परतोऽप्यमी नृपतय. सर्वे समभ्यागता:
कन्याया. कलधौतकोमलरुचे· कीर्तेश्च लाभ पर ,
नाकृष्टं न च टकित न नमित नोत्थापित स्थानत.
केनापीदमहो महद्धनुरिद निर्वीरमुर्वीतलम्.

—अक 1, श्लोक 10

रावण आदि के उठाने पर धनुष किस प्रकार अडिग रहा इस का वर्णन भी देखते चलिए :

भूप सहस दस एकहि वारा, लगे उठावन टरे न टारा.
डिगै न शंभु शरासन कैसे, कामी वचन सती मन जैसे.

—रा. च. मा. बालकाड

इस में 'एकहि वारा' कहने के लिए तुलसी ने रावण का नाम अपनी ओर से जोड़ दिया है. शेष सब करामात प्रसन्नराघव नाटक के निम्न श्लोक की है :

बाणस्य बाहुशिखरै: परिपीड्यमान नेद धनुश्चलित किंचिदपीन्दुमौने ,
कामातुरस्य वचसामिव सविधानैरभ्यर्थितं प्रकृति चारुमन: सतीनाम्.

—अंक प्रथम, श्लोक 56

गुरु की आज्ञा ले कर राम धनुष उठाने चले. लक्ष्मण धरती को धारण करने वाली शक्तियों को सावधान करते हुए बोले :

दिसि कुजरहु कमठ अहि कोला, धरहु धरनि धरि धीर न डोला.
राम चहहिं सकर धनु तोरा. सजग होहु सुनि आयसु मोरा.

उक्त चौपाई से मिला कर 'हनुमन्नाटक' का निम्न श्लोक पढ़ डालिए :

पृथ्वि स्थिरा भव भुजगम धारयैना त्व कूर्मराज तदिद द्वितयं दधीथा.,
दिक्कुजरा कुरुत तत् त्रितये दिधीपा राम· करोति हरकार्मुकमाततज्यम्.

—अक प्रथम, श्लोक 21

शिव का धनुष टूटने का समाचार सुन कर परशुरामजी आ गए. वे इस अपराध के लिए बहुत लालपीले होने लगे तो लक्ष्मण बोले :

छुवत टूट रघुपतिहि न दोसू, मुनिविनु काज करिय कत रोसू.

वास्तव मे बात यह नहीं थी धनुष छूने से नहीं, खींचने से टूटा था. लक्ष्मण झूठ बोले सो बोले, पर मर्यादापुरुषोत्तम राम ने भी यही कहा:

छुवतहि टूट पिनाक पुराना, मैं केहि हेतु करव अभिमाना.

इस प्रकार की झूठी बात कहना अनुचित है, इस ओर तुलसी का ध्यान नहीं था. उन्हें तो 'प्रसन्नराघव' नाटक के निम्न श्लोक का अनुवाद करना था:

मया स्पृष्ट न वा स्पष्ट कार्मुक पुरवैरिण ,
भगवन्नात्मनैवेदमभज्यत करोमि किम्.

—अक 4, श्लोक 21

परशुराम बहुत गरम हुए और युद्ध की धमकी देने लगे तो राम ने नम्रता-

पूर्वक कहा:

हमहि तुम्हहि सरबरि कस नाथा, कहहु त कहा चरन कह माथा.
देव एक गुन धनुष हमारे, नौ गुन परम पुनीत तुम्हारे

—रा. च. मा , वालकाड

ब्राह्मण मस्तक के समान होता है, पर क्षत्रिय पैर तुल्य नहीं होता. दूसरे नौ धागों वाला जनेऊ क्या परशुराम पर ही था? वह तो रामलक्ष्मण भी पहने होंगे. तुलसी ने अनेक स्थान पर रामलक्ष्मण को यज्ञोपवीतधारी तो कहा ही है, हनुमानजी तक के कंधे पर इसे लटका दिया है:

काधे मूज जनेऊ छाजै ·—हनुमानचालीसा

फिर इस उक्ति को संगत कैसे कहा जाए? तुलसी का ध्यान संगति पर नहीं था. उन्हें 'प्रसन्नराघव नाटक' के निम्न श्लोक का अनुवाद करना था:

भो ब्रह्मन्! भवता समं न घटते संग्रामवार्तापिन:
सर्वे हीनबला वयं बलवता यूयं स्थिता मूर्धनि
यस्मादेकगुण शरासनमिदं सुव्यक्तमुर्वीभुजामस्माक
भवता पुनर्नवगुण यज्ञोपवीत बलम्.

—अंक 4, श्लोक 25

सीता हरण के पश्चात हनुमान लंका पहुंचे और अशोक वाटिका मे सीता को देखा वे रावण की बात का उत्तर देते समय तिनके की ओट ले लेती हैं:

तृन धरि ओट कहति वैदेही, सुमरि अवधपति परम सनेही.

—रा. च. मा., सुदरकांड

कथावाचक लोग 'तृनधरि' शब्द का अर्थ करते समय बहुत अधिक तूल बांधने लगते हैं. उन्हें वाल्मीकि का निम्न श्लोक देखना चाहिए, जिस का अनुवाद तुलसी बाबा ने उक्त अर्धाली के रूप में किया है:

चितयती वरारोह पतिमेव पतिव्रता, तृणमतरत: कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता,

—सुंदरकाड 12-1

रावण ने जब सीता के सामने अपनी पटरानी बनने का प्रस्ताव रखा तो सीता ने उत्तर दिया:

स्याम सरोज दाम सम सुदर, सोय भुज करिकर सम दशकंधर.
सो भुज कंठ कितव असि घोरा, सुनु सठ अस प्रमान प्रन मोरा.

—रा. च. मा., सुदरकाड

ये पंक्तियां भी 'हनुमन्नाटक' के निम्न श्लोक के अनुवाद रूप मे हैं:

विरम विरम रक्ष: किं वृथा जल्पितेन, स्पृशति नहि मदीयं कंठसीमानमन्य:,
रघुपति भुजदंडादुत्पलश्याम कांतेदशनुमुख, भवदीयान् निष्कृपाद् वा कृपाणात्.

—अक दशम, श्लोक 16

रावण चला गया तो सीता दुखी व विनीत हो कर अशोक वृक्ष से आग मांगने लगीं. वह जल कर मरना चाहती थीं:

मुनिय विनय मम विटप असोका, सत्य नाम करु हरु मम सोका
नूतन किसलय अनल समाना, देइ अगिनि तन करहु निदाना.

—रा. च मा. सुंदरकांड

अशोक वृक्ष की कोपलों को अग्निकण या अग्निशिखा समझने की कल्पना तुलसी की नहीं है. वह 'प्रसन्नराघव' के निम्न श्लोक से ली गई है:

कुरु सकरुण चेत. श्रीमन्नशोक वनस्पते दहनकणिकामेका तावन् मम प्रकटीकुरु, ननु विरहिणां संतापाय स्फुटीकुरुते भवान् नवकिसलयश्रेणीव्याजात् कृशानु-शिखावलिम्. —अंक 6, श्लोक 35

थोड़ी देर पश्चात् हनुमान सीता के सामने प्रकट हुए. वह राम के संदेश रूप मे क्या कहे? पिता का प्रेमसंदेश पुत्र माता को क्या दे. तुलसी ने यहां शृंगार का बड़ा मर्यादित रूप प्रस्तुत किया है

पहली बार जब मैं ने पढ़ा तो मन उल्लास से भर गया:

राम कहे वियोग तव सीता, मो कह जगत भयेउ विपरीता.
नव तरु किसलय मनहु कृसानू, कालनिसा सम निसि ससि भानू
कुवलय विपिन कुंतवन सरिसा, वारिद तप्त तेल जनु वरिसा.
जेहि तरु रहिय करत सोइ पीरा, उरध श्वास सम त्रिविध समीरा.

—रा. च मा., सुंदरकांड

कहेऊ ते कछु दुख घटि होई, कहहु काहि यह जान न कोई.
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा.
सो मन रहत सदा तोहि पाही, समुझि प्रीति रस इतनेहि माही.

—रा च मा., सुंदरकांड

पर क्या कहूं अपने अध्ययन को 'प्रसन्नराघव' नाटक के निम्न श्लोकों को पढ़ कर धारणा वदलनी पड़ी:

हिमांशुश्चडांशुर्नवजलधरो दावदहन
मरद्वीचीवात कुपितफणिनि श्वासपवन·
नवा मल्ली मल्ली कुवलपवन कुंतगहनम्
ममत्वद् विश्लेपात् सुमुखि विपरीत जगदिदम 43
कस्याम्थ्यापर्व्यातिकरमिम मुक्तदु खो भवेयम्
को जानीते निभृतमुभयोरावयो. स्नेहसारम्,
जानात्येक शशधरमुखि! प्रेमतत्व मनो मे
त्वामेवैतत् चिरमनुगत तत्प्रिये किं करोमि —44 अंक 6

राम सागर पर सेतु बना कर सेना सहित पार उतर गए उन्होंने अंगद को रावण के पास भेजा. बातचीत के बीच रावण राम की सेना की दुर्बलता बताता हुआ कहने लगा

तुम्हरे कटक माहि सुनु अंगद, मो मन भिरहिं कवन योधा बद,
तव प्रभु नारि विरह बलहीना, अनुज तासु दुख दुखित मलीना.

तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ,' अनुज हमार भीरु अति सोऊ.
शिल्प कर्म जानहिं नलनीला, है कपि एक महा वलशीला
आवा प्रथम नगर जेहि जारा, सुनि हंसि वोला वालि कुमारा.

कोई भी व्यक्ति वातचीत की इस कुशलता के लिए प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता. आप को यदि प्रशंसा करना हो तो भवभूति की कीजिए, जिन के 'हनुमन्नाटक' में निम्न श्लोक हैं:

राम. स्त्रीविरहेण हारितवंपुस्तच्चिन्तया लक्ष्मण.
सुग्रीवोऽगदशल्भेदकतया निर्मूलकुलद्रुमा:
गण्य कस्य विभीषण· स च रिपोः कारुण्यदैन्यातिथि:
लंकातकविटकपावकपटुर्वध्यो ममैक: कपि:.

—अंक 8, श्लोक 9

तुलसी का वर्षा वर्णन बहुत प्रसिद्ध है पर यह बहुत कम लोग जानते होंगे कि वह 'भागवत' के दशम स्कध के बीसवें अध्याय का अनुवाद है.

नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं:

दादुर धुनि चहु ओर सुहाई वेद पढहिं जनु वटु समुदाई
(श्रुत्वा पर्जन्य निनद मण्डूका: व्यसृजन गिरा
तूष्णी शयाना प्रागयद्वत् ब्राह्मणा नियमात्यये.) 9
छुद्र नदी भरि चलि उतराई जस थोरेउ धन खल वौराई.
(आसन्नुत्पथवाहिन्य. क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यती:,
पुसो यथा स्वतत्रस्य देहद्रविकसम्पद:) 10
ससि संपन्न सोहु महि कैसी, उपकारी की सपति जैसी.
(हरिता हरिभि: शष्पैरिंद्रगोपैश्च लोहिता
उच्छिलीध्रुकृतच्छाया नृणा श्रीरिव भूरभूत्.) 11
हरित भूमि तृण संकुल, संमुझि परै नहिं पथ,
जिमि पाखंड विवाद ते, लुप्त, होहि सद् ग्रथ.
(मार्गा: वभूवु· सदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसस्कृता:,
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव.) 16
लछिमन देखहु मोर गन नाचत वारिद पेखि,
गृही विरति रत हरस जस विष्णु भक्त कंह देखि

—रा. च. मा, किष्किंधाकांड

मेघागमोत्सवाहृष्टा: प्रत्यनंदन् शिखंडित:,
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा: यथाच्युतजनागमे 20

अपने कलिकाल वर्णन के लिए भी तुलसी बहुत प्रसिद्ध हैं. पर यह वर्णन भी उन का अपना नहीं, 'श्रीमद्भागवत' से लिया गया है. कुछ उदाहरण देखिए:

शूद्र करहिं जप तप व्रत दाना वैठि वरासन कहहिं पुराना.
शूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ज्ञाना मेलि जनेऊ लेहिं कुदाना.

(शूद्रा. प्रतिगृहीष्यन्ति तपो वेशोपजीविनः,
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम्) 38

सुनु व्यालारि कराल कलि मल अवगुन आगार,
गुनौ बहुत कलि काल कर, बिनु प्रयास निस्तार

(कलेर्दोषनिधे· राजन्नस्ति . ह्येको महान् गुण,
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसगः पर व्रजेत्) 51

कृतयुग द्वापर त्रेता, पूजा मख अरु योग,
जो गति होय हरिनाम ते, कलि पावहि सो लोग

—रा. च. मा., उत्तरकाड

(कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः,
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरि कीर्तनात्) 52

—भागवत, स्कध 12, अध्याय 3

दोचार बातें और कह कर इस लेख को समाप्त करेंगे. तुलसी ने 'प्राकृत जन गुन गाना' नहीं किया, केवल राम नाम का ही वर्णन किया है. इस का कारण यह इस प्रकार बताते हैं:

भक्त हेतु विधि भवन बिहाई, सुमिरत शारद आवति धाई.
रामचरित सर बिनु अन्हवाये, सो सुभ जाप न कोटि उपाये

कैसी विचित्र कल्पना है! कवि के स्मरण करते ही सरस्वती ब्रह्मलोक छोड़ कर दौड़ी आती हैं आने में उन्हें जो श्रम होता है. वह तब तक दूर नहीं होता, जब तक वे रामचरित रूपी सरोवर मे स्नान न कर लें राम भक्ति से भीनी यह कल्पना भी तुलसी की अपनी नहीं है. इस के लिए भी वह 'प्रसन्नराघव' के निम्न श्लोक के कृतज्ञ हैं:

झटिति जगतीमागच्छन्त्याः पितामह विस्मयात्महति पथि यो देव्या
वाच. श्रमः समजायत, अथ कथमसौ मुचेदेन न चेदवगाहते
रघुपतिगुणग्रामश्लाघा सुधामयदीर्घिकाम् —अक 1, श्लोक 11

तुलसी ने राम और शिव की तुलना करते हुए 'दोहावली' मे लिखा है:

जो सपति शिव रावनहि, दीन्ह दिए दस माथ.
सोइ सपदा विभीषणहि, सकुचि दीन्ह रघुनाथ.

—रा. च. मा , सुदरकाड

तुलसी ने तो राम को शिव का अनन्य भक्त और शिव को राम का प्रेमी दिखाया है. फिर यह ऊचनीच दिखाने वाली तुलना कैसी? बात वही है जो मैं पहले कह चुका हूं. तुलसी अनुवाद के बेहद शौकीन थे. अपनी रचना मे किसी स्थल का अनुवाद जोड़ने के मोह मे उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं रहता था. उक्त गड़बड़ी के लिए भी 'हनुमन्नाटक' का निम्न श्लोक जिम्मेदार है:

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरच्छेदेऽपि शंकरात्,
दर्शनाद्रामदेवस्य सा विभूतिर्विभीषणे.

अनुवाद की झोंक में तुलसी को उचितअनुचित का ध्यान नहीं रहता था. अपने कथन के प्रमाण में हम एक स्थल की ओर चर्चा करेंगे:

राम वनवास एवं दशरथ मरण के पश्चात् भरत राम को मनाने वन गए. मार्ग में वह भरद्वाज के आश्रम में ठहरे. भरद्वाज को चिंता हुई कि भरत का स्वागत कैसे करें? पूजा तो देवता समान ही होनी चाहिए:

मुनिहिं सोच पाहुन बड़ नेवता तसि पूजा चाहिय जस देवता.

भरद्वाजजी ने ध्यान लगा कर रिद्धि सिद्धि को बुलाया और भरत का उचित सत्कार करने की आज्ञा दी:

रामविरह व्याकुल भरतु सानुज सहित समाज,
पहुनाई करि हरहु श्रम कहा मुदित मुनिराज.

रिद्धिसिद्धियों ने स्वागत का जो सामान प्रस्तुत किया, वह इस प्रकार था:

रितु वसंत वह त्रिविध वयारी सब कहं सुलभ पदारथ चारी.

—रा. च. मा., अयोध्याकांड

सुक चंदन वनितादिक भोगा, देखि हरष विस्मयवस लोगा.

अयोध्यावासियों को, जिन में भरत भी सम्मिलित थे, चारों पदार्थ सुलभ थे. आगे इन से भी जोरदार पदार्थ पेश किए. माला, चंदन, स्त्री आदि भोग की वस्तुएं. माला और चंदन तक तो ठीक है, पर भरत जैसे अतिथि को औरत पेश करना क्या उचित था? 'आदि' शब्द से कोई मदिरा का अर्थ लगा ले तो उसे कौन रोक सकता है?

इस पंक्ति को भक्त लोग चाहे चुपचाप पढ़ जाते हों, पर यहां आ कर अपना मस्तिष्क तो अनेक प्रश्नचिह्नों से भर गया. क्या उस समय के रिषि-मुनि इतने गिरे हुए थे कि प्रसन्न करने के लिए औरतें पेश करते थे? क्या भरत एवं अन्य राजकुमार औरतों के शौकीन थे? क्या यह सब तुलसी के आदर्श के अनुकूल है? यह बात दूसरी है कि ये औरतें भरद्वाज की तपस्या द्वारा निर्मित थीं और भरत इस चक्कर में नहीं आए. पर इन के औचित्य का प्रश्न अपने स्थान पर है.

'रामचरितमानस' के अनेक मर्मज्ञों से पूछा, पर समाधान नहीं हुआ. बहुतों ने तो माना नहीं कि ऐसा करना अनुचित था.

एक बार 'वेदांतसार' पढ़ रहा था. निम्न पंक्ति पढ़तेपढ़ते यह शंका निर्मूल हो गई:

ऐहिकाना स्रक्चंदनवनितादिविषय भोगाना कर्मजन्यतया अनित्यत्ववद् इत्यादि.

—गुरु शांतस्वामी द्वारा संपादित प्रथम संस्करण, पृष्ठ 10

तो बात यह थी कि तुलसी बाबा ने 'वेदांत सार' में से भोग के लक्षण वाली पंक्ति नोट कर ली और उपयुक्त अवसर देख कर 'रामचरितमानस' में जोड़ दी. उस समय यह भूल गए कि इस का 'वनिता' शब्द कितना अनर्थ कर सकता है.

मुझे जिन पुस्तकों को पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, सभव है, तुलसी बाबा ने उस से अधिक पुस्तकें पढी होंगी. सस्कृत के अतिरिक्त वह फारसी के भी विद्वान् थे. अत. उन के साहित्य के उक्त अनुवाद बटलोई के चावल समझ लीजिए.

●

धनुर्यज्ञ : रामचरितमानस का एक असंगत प्रसंग

क्या सीता के विवाह का आयोजन स्वयंवर कहा जा सकता है? प्राचीन भारत की अनेक विवाह विधियों में स्वयंवर का भी उल्लेख किया जाता है. वैसे मनु द्वारा गिनाई गई विवाह की आठ विधियों में स्वयंवर का नाम नहीं है. स्वयंवर प्रथा द्वारा वह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि प्राचीन काल में भारतीय नारी की सामाजिक दशा अच्छी थी, वह अपनी इच्छा से अपना पति चुन सकती थी.

तुलसीदास ने अपने 'रामचरित मानस, में प्राचीन भारत की सभी गौरवशाली प्रथाओं का समावेश करने का प्रयत्न किया है. स्वयंवर प्रथा गौरवशाली है या नहीं, इस विषय पर तो किसी अलग निबंध में विचार किया जाएगा, यहां हम केवल इस बात पर विचार करना चाहते हैं कि सीता के विवाह के आयोजन को स्वयंवर की संज्ञा देना कहां तक युक्तिसंगत है? मतलब यह कि क्या 'धनुषयज्ञ' नाम का भी कोई आयोजन होता है?

तुलसीदास ने सीता के विवाह संबंधी आयोजन को दो नाम दिए हैं: धनुषयज्ञ और स्वयंवर.

तव मुनि प्रभु सन कहा बुझाई, चरित एक प्रभु देखिय जाई,
धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा, हरषि चले मुनिवर के साथा.

—राम वाल.पृ. 208

पुर पूरव दिसि गे दोउ भाई, जहं धनुमख हित भूमि वनाई.

—राम. वाल. पृ. 219

भगति हेतु सोइ दीन दयाला, चितवत चकित धनुषमख शाला.

—राम. वाल. पृ.220

तात जनक तनया यह सोई, धनुष जग्य जेहि कारन होई.

—राम. वाल. पृ. 224

पुनि मुनि वृंद समेत कृपाला, देखन चले धनुषमख शाला.

—राम बाल. पृ.232

हम पूछना चाहते हैं कि यह 'धनुषयज्ञ' या 'धनुषमख' कौन सा यज्ञ है? इस का विधान किस गृह्यसूत्र, स्मृति या ब्राह्मण ग्रंथ में है? तुलसी ने राम के सभी कर्म 'लोक वेदानुकूल' बताए हैं. क्या कोई रामकथा विशेषज्ञ बता सकता है कि 'धनुषयज्ञ' का उल्लेख किस लौकिक गाथा या वेदवेदांग मे है? जिस प्रकार धार्मिक ग्रंथों मे श्रौतयज्ञ, स्मार्तयज्ञ, श्येन यज्ञ, अश्वमेधयज्ञ आदि का विधान व फल वर्णित है, वैसा 'धनुषयज्ञ' के विषय मे भी किसी ने पढा है?

क्या बहुत से लोगों द्वारा इकट्ठे हो कर किसी धनुष को उठाने का प्रयत्न ही धनुषयज्ञ है? इस प्रकार तो जितनी भी वजन उठाने की प्रतियोगिताएं हैं, उन सभी को 'यज्ञ' कहा जा सकता है. इस प्रकार तो बिना किसी विशेष खर्च के पाषाणयज्ञ, लक्कड़यज्ञ, बोरायज्ञ आदि का आयोजन भी संभव है.

यदि धनुषयज्ञ में धनुष उठाने या तोड़ने का कार्यक्रम था तो विश्वामित्र को क्यों बुलाया गया? हमारे विचार में यह तुलसी की अपनी खोज थी. वाल्मीकि ने अपनी रामायण मे 'धनुषयज्ञ' शब्द का कहीं भी उपयोग नहीं किया है. वहां सीता के विवाह संबंधी आयोजन को 'स्वयंवर, भी नहीं कहा गया है.

जनक ने धनुष उठाने की प्रतियोगिता अवश्य रखी थी. सीता उन की अपनी कन्या नहीं थी इसलिए वह उस के वर का निर्णय स्वयं न कर के शक्तिपरीक्षा द्वारा करना चाहते थे. वाल्मीकि ने सीता के लिए 'वीर्यशुल्का' शब्द का प्रयोग किया है.

वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा
भूतलादुत्थितां तां तु वर्धमानां ममात्मजाम् —15

जनक की इस कन्या से विवाह करने के लिए अनेक राजा आए. राजा जनक ने उन के सामने धनुष उठाने की शर्त रखी. उस धनुष को कोई नहीं उठा पाया.

वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुंगव
तेषां वरयतां कन्यां सर्वेषां पृथिवीक्षिताम् —16
वीर्यशुल्केति भगवन् न ददामि सुतामहम्
ततः सर्वे नृपतयः समेत्य मुनिपुंगव —17
मिथिलामभ्युपागम्य वीर्यजिज्ञासवस्तदा,
तेषां जिज्ञासमानानामैशं धनुरुपाहृतम् —18
न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा —19

वही चमकीला धनुष मैं रामलक्ष्मण को भी दिखाऊंगा अगर राम इस पर डोरी चढा देंगे तो मैं अपनी अयोनिजा कन्या उन्हें दे दूंगा

तदेतन्मुनिशार्दूल धनुः परमभास्वरम्,
रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत. —25
यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने,

सुतामयोनिजां सीता दद्या दाशरथेरहम्. —26

—वाल्मीकि रा. बाल. अध्याय—66

वाल्मीकि के अनुसार धनुषयज्ञ जैसी कोई बात नहीं थी. हां, धनुष उठाने के लिए अनेक राजा अपना बलपरीक्षण कर चुके थे. इस के बाद जनक ने एक यज्ञ का आयोजन किया था. ऋषियों ने कहा कि हम लोग जनक के यज्ञ मे शामिल होंगे और राम उस विचित्र धनुष को देखेंगे. इस प्रकार सब लोगों का मिथिला जाना उचित है:

मैथिलस्य नरश्रेष्ठ जनकस्य भविष्यति,
यज्ञः परमधर्मिष्ठस्तस्य यास्यामेह वयम्. —6
त्व चैव नरशार्दूल सहास्माभि गमिष्यसि
अद्भुत च धनुरत्न तत्रैक द्रष्टुमर्हसि. —7

वाल्मीकि रा. बाल. अध्याय—31

इस प्रकार वाल्मीकि ने 'यज्ञ' और 'धनुष' शब्दों का अलगअलग प्रयोग अवश्य किया है पर 'धनुषयज्ञ' नामक नवीन यज्ञ की बात उन्हें नहीं सूझी थी. वाल्मीकि के अनुसार तो राजा लोग पहले ही साहस छोड़ कर चले गए थे. राम को यह धनुष बाद में दिखाया गया. तुलसी को अपने राम का यह एकांत पराक्रम नहीं रुचा होगा. 'जंगल में मोर नाचा, किस ने देखा?' प्रशंसा की बात तो यही थी कि सभी साहसहीन राजाओं के सामने राम धनुष उठाते. जिस धनुष को दूसरा कोई धरती से हिला भी न सका, उसे राम ने तोड़ दिया!

तुलसी ने धनुष उठाने के लिए ही सब राजाओं की उपस्थिति पसंद नहीं की, बल्कि राम और परशुराम की बातचीत के लिए भी वही समय उचित समझा. वाल्मीकि के अनुसार, परशुराम राम से तब मिले थे, जब उन की बारात जनकपुर से लौट कर अयोध्या जा रही थी. बड़े लोगों को पराजित या अपमानित कर के ही लोग महान बनते हैं, ऐसी तुलसी की मान्यता रही होगी. तुलसी राम को ईश्वर (?) का अवतार मानते थे. ईश्वर को सब से महान होना ही चाहिए! इसी महत्ता का प्रदर्शन कराने के लिए तुलसी ने धनुर्भंग और परशुराम संवाद भरी सभा में रखे जो वाल्मीकि के अनुसार एकांत की घटनाएं थीं.

तुलसी ने धनुर्भंग के समय सब राजाओं को एकत्र इसलिए किया था कि राम का महत्त्व बढ सके. राजाओं की भीड़ और विवाह की बात सोच कर उन के मस्तिष्क में 'स्वयंवर' वाली बात कौंध गई होगी. उद्देश्य कुछ भी रहा हो पर सीता के विवाह में अनेक राजा एकत्र थे. इधर स्वयंवर मे भी अनेक राजा एकत्र होते हैं तो फिर सीता के विवाह के इस आयोजन को 'धनुषयज्ञ' के साथसाथ 'स्वयंवर' भी क्यों न कह दिया जाए?

बस, फिर क्या था! तुलसी बाबा ने उक्त आयोजन को स्वयवर का नाम दे दिया:

सीय स्वयंवर देखिय जाई, ईस काहि धौं देइ बड़ाई —राम. बाल. पृ. 231

जिस प्रकार यह आयोजन 'धनुषयज्ञ' नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार हम इसे 'स्वयंवर' कहने मे भी असमर्थ हैं. 'स्वयवर' शब्द का अर्थ है वह आयोजन जिस मे कन्या अपना पति अपनेआप चुने (स्वयं वृणुते कन्या पति यस्मिन् स: स्वयवर) तुलसी ने भी 'स्वयंवर' शब्द का यही अर्थ लिया है नारद मोह के प्रसंग में तुलसी ने स्वयवर का वर्णन इस प्रकार किया है

करइ स्वयवर सो नृप वाला, आए तह अगणित महिपाला.

—पृ. 145

एहि अवसर चाहिय परम शोभा रूप विशाल,
जेहि विलोकि रीझै कुअरि, तव मेलै जयमाल.

पृ. 146

निजनिज आसन वैठे राजा, वहु वनाव करि सहित समाजा,
मुनि मन हरप रूप अति मोरें, मोहि तजि आनहि वरहि न भोरें

पृ. 147

सखी सग लै कुअरि तव चलि जनु राज मराल,
देखत फिरइ महीप सव कर सरोज जयमाल.

पृ 148

(उपरोक्त सभी पक्तियां 'रामचरित मानस,' वालकाण्ड से ली गई हैं)

क्या सीता के विवाह मे भी उन्हें यह सुविधा थी कि उपस्थित राजसमाज मे से किसी को अपना पति चुन लें? इस विवाह मे सीता तो क्या, उन के घर वालों या नगरनिवासियो तक की पसद का कोई स्थान नहीं था जो भी व्यक्ति धनुष उठा लेता या तोड़ देता, उसी को सीता पति के रूप मे स्वीकार करने के लिए विवश थी.

यह वात दूसरी है कि सीता तथा अन्य लोग राम के रूप पर मोहित हो कर उन्हीं को पसंद कर चुके थे और सयोग से राम धनुष तोडने मे सफल हुए. यदि राम धनुष नहीं तोड पाते या कोई अन्य व्यक्ति जनक की प्रतिज्ञा पूरी कर देता तो सीता की स्थिति क्या हो जाती?

स्वयंवर के आयोजन से तो कन्या को प्रसन्न होना चाहिए. इस में उसे अपनी पसंद का पति चुनने का अधिकार रहता है. क्या सीता इस आयोजन से प्रसन्न थीं? तुलसी के ही शब्दों में उन की मनोदशा देखिए·

जानि कठिन सिव चाप विसूरति, चली राखि उर स्यामल मूरति.

पृ 227

तव रामहि विलोक वैदेही सभय हृदय विनवति जेहि तेही
मन ही मन मनाव अकुलानी .. पृ. 245
नीकें निरखि नयन भरि सोभा, पितु पन सुमिरि वहुरि मनु छोभा,
अहह तात दारुन हठ ठानी, समुझत नहि कछु लाभ न हानी
सचिव सभय सिख देइ न कोई, वुध समाज वड अनुचित होई. -

कह धनु कुलिसहु चाहि कठोरा, कहं स्यामल मृदु गात किसोरा.
विधि केहि भांति धरौं उर धीरा, सिरस सुमन किमि बेधिय हीरा.
सकल सभा कै मति भै भोरी, अब मोहि संभु चाप गति तोरी.

पृ. 246

लोचन जलु रह लोचन कोना, जैसे परम-कृपन कर सोना.

पृ. 247

(यह सभी पंक्तियां 'रामचरित मानस' के बाल कांड से ली गई हैं)

कन्या की प्रसन्नता ही माता का सब से बड़ा सुख है. स्वयंवर के आयोजन से सभी माताएं प्रसन्न होती होंगी. मातापिता के दुखी होने का अवसर केवल तभी आ सकता है, जब कन्या किसी गलत व्यक्ति को वरण कर ले. पर यह स्थिति स्वयंवर समाप्त होने पर ही आ सकती है.

सीता की माता इस आयोजन से कितनी प्रसन्न थीं, यह भी देख लीजिए:

रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बोलाइ,
सीता मातु सनेह बस बचन कहइ बिलखाइ
सखि सब कौतुक देखनि हारे, जेउ कहावत हितू हमारे,
कोउ न बुझाइ कहहि गुरु पाही, ए बालक अस हठ भलि नाही.

—राम. बाल पृ 244

भूप सयानप सकल सिरानी, सखि बिधिगति कछु जाति न जानी

—राम. बाल. पृ. 245

जहां कन्या और उस की माता विवाह की बात पर रोती और विलाप करती हों, उस आयोजन को स्वयवर कैसे कहा जाए? स्वयवर में कन्या अपनी इच्छा से वर को जयमाला पहनाती है. राम के गले मे जयमाला सीता ने भी डाली थी पर अपनी इच्छा से नहीं, शतानंद पुरोहित की आज्ञा से.

सतानद तब आयसु दीन्हा, सीता गवनु राम पहि कीन्हा.

—राम. बाल. पृ. 251

गावहि छबि अवलोकि सहेली, सिय जयमाल राम उर मेली.

—राम बाल.

यह जयमाला सीता ने अपनी इच्छा से पहिनाई होती तो धनुष तोड़ने की आवश्यकता ही न पड़ती. वह पहले ही राम का कंठ अपनी जयमाला से सुशोभित कर चुकी होतीं.

अंत में हम यही कहेंगे कि सीता के विवाह के समय धनुष तोड़ने की शर्त थी. यज्ञ हुआ था, राजा लोग एकत्र हुए थे. जयमाला पहनाई गई थी. पर इसे न 'धनुषयज्ञ' कहा जा सकता है और न 'स्वयंवर'. कितने आश्चर्य की बात है कि सैकड़ों वर्ष से रामकथा पर चर्चा करते समय लोग इन शब्दों का निस्संकोच प्रयोग करते आ रहे हैं.

रामचरितमानस के कुछ असंगत स्थल

भारतीय साहित्य मे तुलसी के 'रामचरितमानस' का सब से अधिक प्रचार हुआ है. यह बात ठीक है पर साथ ही इस मे कोई संदेह नहीं कि ऐसे लोग बहुत कम होंगे जिन्होंने 'रामचरितमानस' पढते समय मस्तिष्क की खिड़कियां खुली रखी हों. 'रामचरितमानस' के अधिकांश पाठको के मस्तिष्क को धर्म, श्रद्धा, अंधविश्वास और स्वर्गनरक की घटाएं घेरे रहती हैं.

यह बात हम इस आधार पर कह रहे हैं कि यदि लोगों ने स्वतंत्रमस्तिष्क से 'रामचरितमानस' का अध्ययन किया होता तो उस की अनेक असंगतियों पर उन का ध्यान अवश्य गया होता. असंगतियों पर ध्यान जाने की दशा मे उन की चर्चा अधिक होती. पर हम देखते हैं कि न तो आलोचना साहित्य मे और न साधारण जनता में इस प्रकार की चर्चा पाई जाती है

नीचे हम कुछ ऐसे स्थलो की ओर संकेत कर रहे हैं जो हमारी दृष्टि मे असंगत हैं. 'रामचरितमानस' के भक्तों और विशेषज्ञो से अनुरोध है कि वे इन शंकाओ का स्वस्थ समाधान कर के हमे अनुगृहीत करें. ये प्रश इस प्रकार हैं:

माया नगर के राजा शीलनिधि की कन्या पर नारदजी मोहित हो गए और स्वयवर मे उसे प्राप्त करने के लिए विष्णु से सुंदरता मांगने गए

एहि अवसर चाहिय परम सोभा रूप बिसाल
जो बिलोकि रीझै कुवरि तब मेलै जय माल.

हरिसन मागहु सुदरताई, होइयहि जातगहरु अति भाई
वहुविधि विनय कीन्ह तेहि काला, प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला.
अति आरति कहि कथा सुनाई, करहु कृपा करि होहु सहाई
आपन रूप देहु प्रभु मोही, आन भाति नहि पावहु ओही.

—बाल कांड, पृष्ठ. 146

नारदजी योगी थे (बेद न देइ सुनहु मुनि जोगी —बाल कांड, पृष्ठ 147 योगी की शक्ति कम नहीं होती. योगी अपनी इच्छा से मनचाहा रूप बना

सकता है. नारद योगी होते हुए भी विष्णु के पास रूप मांगने क्यों गए?

पुराणों मे इस प्रकार के अनेक प्रसंग मिलते हैं जिन में योगियों द्वारा इच्छानुसार रूप बनाने की बात कही गई है. एक व्यक्ति ने तो अत्यत सुदर रूप बना कर राजा की सैकड़ो लड़कियों से विवाह किया था. योग संबंधी ग्रंथ भी इस प्रकार की बात कहते पाए जाते हैं.

रूप मांगने पर विष्णु ने नारद का मुंह बंदर का बना दिया. नारद के इस रूप को देख कर शिव के दो गण स्वयंवर सभा में मुसकराने लगे. राजकुमारी ने नारद का वरण नहीं किया तो वह बड़ी उलझन में पड़ गए. इसी समय शिवगण नारद से यह कह कर भागे कि शीशे मे अपना मुंह देखो नारद ने पानी में अपनी सूरत देखी और शिवगणों को भारी सा शाप दे डाला:

मुनि अति विकल मोहमति नाठी, मनि गिरि गई छूटि जनु गांठी.
तब हरगन बोले मुसकाई, निजमुख मुकुर विलोकहु जाई.
अस कहि दोउ भागे भय भारी, वदन दीख मुनि वारि निहारी.
वेषु विलोकि क्रोध अति बाढा, तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढा.

—बाल काड, पृष्ठ 149

हमारी समझ से तो शिवगणों ने कोई अपराध नहीं किया था. उन्हें शाप देने में नारद ने कौन सी बुद्धिमानी की? क्या किसी को वास्तविकता बता देना भी अपराध है? नारद बड़ी मानसिक परेशानी मे थे. वह स्वयं को विष्णुरूपधारी समझ कर राजकुमारी न पाने की पहेली नहीं सुलझा पा रहे थे. यदि शिव के गण नारद को शीशा देखने की सलाह नहीं देते तो बेचारे न जाने कब तक परेशान रहते? नारद को तो शिवगणों का उपकार मानना चाहिए.

एक बात हमारी समझ में यह नहीं आती कि नारदजी ने स्वयंवर में जाने से पहले शीशा क्यों नहीं देखा? आजकल के तिलकधारी साधुओं के समान उस समय के बाबा भी अपनी झोली मे शीशा अवश्य रखते होंगे. नारद जी स्वयंवर में आते समय अपना वैरागी बाना रख आए होंगे. तभी तो शिव के गणों ने उन्हें जा कर शीशा देखने की सलाह दी.

लगे हाथ एक बात और कह दें. शीशे के बिना नारद अपना बंदर जैसा मुंह नहीं देख सके तो कोई बात नहीं थी पर विष्णु ने तो उन का शेष शरीर भी भयंकर बना दिया था. आश्चर्य है कि नारदजी ने अपने हाथोपैरो पर भी ध्यान नहीं दिया :

मरकट वदन भयकर देही, देखत हृदय क्रोध भा तेही,

—बाल कांड पृष्ठ: 148

राजा प्रतापभानु के यहां ब्राह्मण खाने बैठे. जब भोजन परोसा जाने लगा तो आकाशवाणी हुई :

विप्रवृंद उठिउठि गृह जाहू, है बड़ि हानि अन्न जनि खाहू
भयेउ रसोई भूसुर मांसू. —बाल काड पृष्ठ 177

बस फिर क्या था? ब्राह्मणों ने शाप दे डाला :

बोले विप्र सकोप तब नहिं कछु कीन्ह विचार.
जाइ निसाचर होहु नृप मूढ सहित परिवार.
छत्र बधु तैं विप्र बोलाई, घालै लिए सहित समुदाई.
ईश्वर राखा धरम हमारा, जैहसि तैं समेत परिवारा
संवत मध्य नाश तव होऊ, जल दाता न रहहि कुल कोऊ.
बाल कांड, पृष्ठ 177

इतने मे ही फिर आकाशवाणी हुई:

विप्रहु शाप विचारि न दीन्हा, नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा.
—बाल कांड पृष्ठ. 177

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि राजा प्रतापभानु के यहां एक लाख ब्राह्मण परिवार भोजन करने बैठे थे उन्होंने बिना कोई विचार किए हुए शाप कैसे दे दिया? अगर तुरंत शाप दिया जाता तो सब के मुख से अलग-अलग बातें निकलतीं जो ब्राह्मण शाप दे कर राजा को सपरिवार नष्ट कर सकते थे, क्या उन मे वास्तविकता जानने की शक्ति नहीं थी? आकाशवाणी के लिए हम क्या कहें? वह अगर पूरी सूचना एक ही बार मे दे देती तो क्यों निर्दोष को दंड मिलता? शाप भी कैसा विचित्र अस्त्र था जो चलाने वाले के संशोधन से भी बाहर था. शाप के विवेचन पर हम फिर कभी विचार करेंगे.

रावण की तपस्या से प्रसन्न हो कर ब्रह्माजी ने रावण से वर मांगने को कहा. रावण बोला:

हम काहूके मरहिं न मारे, बानरमनुज जाति दुइ बारे —बाल कांड पृष्ठ 179

वर मांगने में रावण का उद्देश्य अमर होने का ही था. उस ने सीधी बात क्यों नहीं कही कि मैं किसी के मारे नहीं मरूंगा. उस ने वानर और मनुज दो को क्यों छोड़ दिया? क्या वानर और मनुष्य के हाथ से मरने मे विशेष पुण्य था? ऐसा लगता है कि ये सब किस्से राम कथा मे जोड़ने के लिए गढ़े गए हैं.

राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करने गए. वहां जो कु
हुआ वह इस प्रकार हैं:

चले जात मुनि दीन्ह दिखाई, सुनि ताडका क्रोध करि धाई.
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा, दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा.
—बाल कांड पृष्ठ 2

कहना यह है कि यहां ताड़का के लिए 'दीन' शब्द का प्रयोग कहां उचित है? क्या ताड़का दीन थी? मारीच और सुबाहु की मां, यज्ञ विध्वंस
शक्ति की स्वामिनी ताडका, दीन कौन से कोष के अनुसार थी? यदि राम ने
जान कर ही ताडका को 'निजपद' दिया तो संसार के तत्कालीन अन्य दी
ही क्या बिगाड़ा था!

राम और लक्ष्मण विश्वामित्रजी के संग जनकपुर जा रहे थे. बहुत से ऋषि भी साथ थे. मार्ग में गंगा मे नहाए. ब्राह्मणों को बहुत सा दान मिला

तव प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए, विविध दान महि देवन्ह पाए.

—वाल काड, पृष्ठ: 210

ब्राह्मणों को भांतिभांति का दान मिला, यह ठीक है. गगा स्नान के बाद लोग दान करते ही हैं. पर हम जानना चाहते हैं कि यह दान दिया किस ने? राम ने या ऋषियों ने? हमारे विचार से दोनो ही अकिंचन थे. उस समय नोटों का प्रचलन था नहीं जो साथ ले चलते. ऋषिमुनि लोग पहले तो सपन्न नहीं होते. दूसरे, वे ब्राह्मणों से क्या हीन कोटि के थे जो ब्राह्मणों को दान करते? रही रामलक्ष्मण की बात, सो उन्हें दशरथ ने विश्वामित्र के साथ खाली हाथ भेजा था. खजाना साथ भेजने का कहीं प्रसग ही नहीं आता.

दशरथ की मृत्यु राम के वियोग में हुई थी. पहले ही स्पष्ट था कि वह राम के वियोग में जीवित नहीं रह सकेंगे. कैकेयी ने राम के वनवास और भरत के राज्याभिषेक का वर मांगा था. उस ने यह तो नहीं कहा था कि दशरथजी राम के साथ न जाएं पर दशरथजी स्वयं यह बात सोच सकते थे. उन की समझ में नहीं आई तो कोई भी मत्री यह साधारण सी बात बता कर समस्या सुलझा सकता था.

दशरथजी को राम का वियोग जब असह्य हो गया तो उन्होंने सुमंत से कहाः

सखा रामु सिय लखन जहं तहा मोहि पहुचाउ
नाहित चाहत चलन अव प्रान कहउं सति भाउ.

—अयोध्या कांड पृष्ठ: 453

हम पूछना चाहते हैं कि दशरथ की इस आज्ञा का पालन क्यों नहीं किया गया? उन्हें राम के पास पहुंचाने में क्या अड़चन थी?

रावण ने विवश किया तो मारीच सोने का मृग बन कर राम को दूर ले गया. वहां जो कुछ हुआ वह तुलसी के शब्दों मे इस प्रकार है:

तव तकि राम कठिन सर मारा, धरनि परेउ करि घोर पुकारा.
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा, पाछें सुमिरेसि मन महुं रामा.
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा, सुमिरेसि राम समेत सनेहा.
अतर प्रेम तासु पहिचाना, मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना.

—अरण्य कांड पृष्ठ· 629

पता नहीं राम ने मारीच का अतरप्रेम कैसे पहचान लिया? उस के किसी काम से तो यह प्रकट नहीं होता कि वह मन में राम से प्रेम करता था और विवश हो कर रावण के साथ आया था.

राम का बाण लगने पर उस का मरना निश्चित था. अगर वह राम का प्रेमी या भक्त होता तो उस समय सच्ची बात कह सकता था. वह लक्ष्मण को बुलाने के स्थान पर राम को वास्तविकता वता सकता था. इस से सीता का

हरण भी न होता और रावण भी मारा जाता.

मरते समय बड़ेबड़े अपराधी भी सत्य बोलने लगते हैं. पर मारीच तो मरते मरते रावण का काम कर गया. इस से यही सिद्ध होता है कि मारीच रावण का पक्का आदमी था. फिर राम के द्वारा उस का अतर प्रेम पहचानना और 'मुनिदुर्लभ गति' देना कहां तक उचित है?

सीताहरण के पश्चात राम अत्यत दुखी थे. नारदजी ऐसे मे राम के पास गए. वहां का प्रसग तुलसी के शब्दो में इस प्रकार है:

नाना विधि विनती करि प्रभु प्रसन्न जिय जानि,
नारद वोले वचन तव जोरि सरोरुह पानि.
सुनहु उदार सहज रघुनायक सुदर अगम सुगम वर दायक.
देहु एक वर मागहु स्वामी जद्यपि जानत अतरजामी.

राम ने कहा:

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ, जन मन कबहु कि करहु दुराऊ.
कवन वस्तु अस प्रिय मोहि लागी, जा मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी
जन कहु कछु अदेय नहि मोरे, अस विश्वास तजहु जनि भोरे.
तव नारद वोले हरपाई, अस वर मागउ करउ ढिठाई.
जद्यपि प्रभु के नाम अनेका, श्रुति कह अधिक एक तें एका
राम सकल नामन्ह ते अधिका, होउ नाथ अघखग वगधिका.
राका रजनी भगति तव, रामनाम सोइ सोम,
अपर नाम उडुगन विमल, वसहु भगत उर व्योम
एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिधु रघुनाथ
तव नारद मन हरप अति प्रभु पद नायहु माथ.

—अरण्य कांड पृष्ठ 647

इस मे बडी खुशामद और आत्मप्रशसा का प्रसग शायद ही कहीं मिले! नारद ने कितनी भूमिका बाधी पर वर क्या मागा, 'आप के बहुत से नाम हैं जो एक से एक बढ कर हैं लेकिन राम नाम उन सब नामों से अधिक है. आप की भक्ति पूर्णिमा की रात है. राम नाम चदा है, अन्य नाम तारागण हैं. ये सब भक्तों के हृदयरूपी आकाश मे निवास करें.

वेशर्मी की हद हो गई, जब राम ने इस पर अपनी स्वकृति की मुहर लगा दी. किसी दूसरे के सामने यह प्रस्ताव रख कर स्वीकृति ली जाती, तब ठीक था.

वास्तविकता यह लगती है कि तुलसी अपने उपास्य राम का नाम सब से महत्त्वपूर्ण बताना चाहते थे. उस के लिए तुलसी ने यह प्रसंग चुना. हम पूछना चाहते हैं कि क्या इस बात के लिए यह प्रसंग उचित था? क्या इस मे राम की प्रतिष्ठा कम नहीं होती?

सीताहरण के विषय में जटायु पहले ही राम को बता चुका था:

तब कह गीध वचन धरि धीरा, सुनहु राम भजन भव भीरा.

नाथ दसानन यह गति कीन्ही, तेहि खल जनकसुता हरि लीन्ही.
लै दच्छिन दिसि गयेउ गुसाईं विलपति अति कुररी की नाईं

आगे के एक प्रसंग में राम, लक्ष्मण से कहते हैं:

वर्षा गत निर्मल रितु आई, सुधि न तात सीता कै पाई.
एक बार कैसेहु सुधि जानौं, कालहु जीति निमिष महु आनौं
कतहु रहउ जो जीवति होई, तात जतन करि आनहु सोई

क्या ऊपर की दोनों बातों में कोई सामंजस्य है? जब जटायु बता चुका था कि रावण सीता को बलपूर्वक उठा कर दक्षिण की ओर ले गया है तो अनिश्चय की स्थिति कहां रही? क्या राम इतना भी नहीं जानते थे कि रावण कहां का राजा है ? वह जटायु से समाचार पा कर अकेले ही लंका की ओर चल सकते थे या सुग्रीव से लंका में बंदर भेजने की बात कह सकते थे? फिर बेचारा सुग्रीव इधरउधर वानरों के खोजी दल क्यों भेजता? वह वानरों से सीधे लंका जाने की ही बात कहता.

इस प्रकार की परस्पर असंबद्ध बातें देख कर यह अनुमान होता है कि तुलसी बाबा या तो भंग पी कर कविता लिखते होंगे या उन्हें अपनी रचनाएं दोबारा पढ़ना अरुचिकर लगता होगा, अन्यथा यह भूलें किस प्रकार संभव हैं?

तुलसी ने राम के मुख से लक्ष्मण को अपना सगा भाई और अपनी माता का इकलौता पुत्र कहलवाया है :

अस विचारि जिय जागहु ताता, मिलहि न जगत सहोदर भ्राता.
निज जननी के एक कुमारा, तात तासु तुम प्रान अधारा.

—लंका काड, पृष्ठ: 795

रामकथा की दृष्टि से तो दोनों बातें गलत हैं ही, वैसे भी एक प्रसंग में उक्त दोनों बाते नहीं कही जानी चाहिए थीं. एक व्यक्ति एक साथ ही किसी का सहोदर भ्राता और अपनी मां का अकेला पुत्र नहीं हो सकता.

तुलसी के भुलक्कड़पन का यह प्रसंग समाप्त करने से पहले हम एक बात और कहना चाहते हैं. जन साधारण 'हनुमान चालीसा' को तुलसीदास की रचना मानते हैं. पर विद्वानों ने इसे तुलसी के ग्रंथों में स्थान नहीं दिया है.

हमारा विश्वास है कि 'हनुमान चालीसा' अगर किसी की रचना हो सकती है तो वह तुलसी बाबा की. अपने पक्ष में हम कोई बाह्य प्रमाण न दे कर एक आंतरिक प्रमाण देंगे. 'हनुमान चालीसा' के प्रारंभ मे ही हनुमानजी के तीन भिन्नभिन्न पिता बताए गए हैं :

शकर सुवन केसरी नदन, तेज प्रताप महा जग वदन.
अंजनि पुत्र पवन सुत नामा...

यह तो हनुमानजी के भक्त लोग ही जाने कि हनुमान के पिता कौन थे? शंकर, केसरी या पवन? चौपाई की एक पंक्ति मे हनुमान के दो पिता बताने का साहस तुलसी के अतिरिक्त और कौन कर सकता था?

तुलसी और वेद

तुलसीदास भक्ति काल के कवि थे. भक्ति भावना धर्म की अनेक विचारधाराओं मे से एक है. धार्मिक साहित्य की सर्व प्राचीन पुस्तक वेद है, ऐसी धर्मांध भारतीयो की मान्यता है. इसलिए नास्तिक दर्शनों को छोड़ कर सभी दर्शन, सभी संप्रदाय और सभी मतमतांतर अपने विचारों को वेद के अनुकूल बताते हैं. भारत का धार्मिक वातावरण कुछ ऐसा है कि जो बात यहां वेदानुकूल सिद्ध हो जाती है, लोग उसे बिना हीलोहुज्जत के मान लेते हैं महात्मा होने पर भी तुलसीदास इस बात का लोभ नहीं सह सके कि उन की मान्यताओं व उन के साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार हो. अधिकतम लोग उन के स्वर मे स्वर मिला कर बोलें इसलिए उन्होंने भी अपने साहित्य को वेदानुकूल सिद्ध करने का पूरा प्रयत्न किया है. तुलसी के समय तक धार्मिक जगत मे पुराणों की मान्यता भी वेदों से कम नहीं थी कबीर आदि संत कवियो के प्रचार से जनता के मानस में संतोंसाधुओं की बात के प्रति भी आदर जाग उठा था. इसलिए तुलसी बाबा ने अपनी बात जनता के हृदय मे उतारने के लिए वेदों के साथसाथ पुराणों और संतों को भी कष्ट दिया है विद्वानो का आदर समाज ने सदा किया है, इसलिए कहींकहीं उन का भी स्मरण कर लिया गया है तुलसी साहित्य मे ऐसे बहुत से स्थल मिलेंगे, जिन मे इन सब को गवाह बनाया गया है :

> वेद पुरान संत मत ऐहू, सकल सुकृत फल राम सनेहू.
>
> —रामचरित मानस, 51
>
> सहसा करि पाछे पछिताही, कहहि वेद बुध ते बुध नाही
>
> —रामचरित मानस, 355

तुलसी ने अपने साहित्य मे वेद के अतिरिक्त वेद के पर्यायवाची शब्द श्रुति और आगमनिगम को भी उद्धृत किया है. आगमनिगम शब्द कहीं साथसाथ आए हैं, कहीं एकाकी. उक्त तीनो शब्द वेद के प्रसिद्ध पर्यायवाची हैं, फिर

भी हम यह बात तुलसी साहित्य से ही सिद्ध कर देना उचित समझते हैं. वेदों को त्रयी कहा जाता है, पर उन की संख्या चार है. निम्न स्थलों में श्रुति, निगम और आगम की संख्या भी चार ही बताई गई है :

चहुं जुग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ, कलि विशेष नहिं आन उपाऊ

—रामचरित मानस, 49

अव्यक्तमूलमनादि तरु, त्वच चारि निगमागम भने.

—रामचरित मानस, 602

तुलसी बाबा ने वेद एवं उन के पर्यायवाची शब्दों को अपने साहित्य में 362 बार पुकारा है. ऐसा उन्होंने इस कारण किया है कि पढ़ने वाला उन के साहित्य को वेदसम्मत मान लेने पर विवश हो जाए. पाठकों की जानकारी के लिए उक्त शब्दों का अलगअलग विवरण दिया जाता है :

ग्रंथ	वेद	निगमागम	श्रुति	योग
रामचरित मानस	109	34	66	209
वैराग्य संदीपनी	2	—	—	2
बरवै रामायण	2	1	—	3
पार्वती मंगल	2	—	—	2
जानकी मंगल	1	—	1	2
रामाज्ञा प्रश्न	2	—	—	2
दोहावली	8	1	1	10
कवितावली	22	3	—	25
हनुमान बाहुक	2	—	—	2
गीतावली	19	5	1	25
कृष्ण गीतावली	1	—	—	1
विनय पत्रिका	50	12	16	78
सर्वयोग	220	56	85	361

तुलसी ने एक स्थान पर वेदों को त्रयी भी कहा है, अतः हम ने कुल संख्या 362 लिखी है. वह स्थल निम्न है :

अदभुत त्रयी किधों पठई है, मग लोगन सुख दैन.

—गीतावली 335

रामचरित मानस के भिन्नभिन्न कांडों में उक्त शब्दों की संख्या का अनुपात इस प्रकार है :

कांड	वेद	निगमागम	श्रुति	योग
वालकांड	45	10	15	70
अयोध्याकांड	29	8	4	41
अरण्यकांड	3	1	7	11
किष्किंधाकांड	2	—	2	4
सुंदरकांड	—	1	2	3
लंकाकांड	5	1	3	9
उत्तरकांड	25	13	33	71
सर्वयोग	109	34	66	209

साधारण पाठक ही नहीं, बहुत से अध्ययन करने वालों पर भी तुलसी बाबा का जादू चल जाता है वे तुलसी साहित्य को वेद सम्मत ही नहीं, वेदों का निचोड़ और तुलसी बाबा को वेदों का सर्वज्ञ पंडित माननेकहने लगते हैं तुलसी साहित्य मे उत्तम कृति रामचरित मानस को पांचवां वेद मानने मे बहुत कुछ वेद व उस के पर्यायो को बारबार दुहराने का ही हाथ है. तुलसी बाबा ने रामचरित मानस को जब स्वयं ही वेदपुराण सम्मत कह दिया, तब तो किसी को संशय रह ही नहीं गया :

नाना पुराण निगमागम सम्मत यद् रामायणे निगदित क्वचिदन्यनोऽपि,
स्वांत सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा भाषानिबंधमतिमंजुलमातनोति.

पर वास्तविकता कुछ और ही है. तुलसी की रचनाएं, जिन मे रामचरित मानस भी है, चाहे नाना पुराण सम्मत भले ही हो पर वे वेद मे मेल नहीं खातीं. तुलसी साहित्य का गंभीर अध्ययन तो हमें यहां तक कहने को विवश करता है कि तुलसी बाबा ने वेदों का अध्ययन नहीं किया था. उन्हें वेदो की साधारण जानकारी थी. जितनी कि लोगों को दूसरों से सुन कर हो जाती है. हमारी बात से बहुत से धर्मांध लोगो के हृदय को आघात पहुंच सकता है. हम इस के लिए क्षमा चाहते हैं ध्यान रहे हम तुलसी साहित्य की अच्छाईबुराई के विषय मे कुछ नहीं कह रहे हैं :

तुलसी साहित्य मे 26 स्थानों पर वेद, दो स्थानो पर निगम और दो स्थानों पर श्रुति शब्द उच्चारण के संबंध मे आए हैं. इन स्थलो मे वेद आदि के पढ़नेपढाने और सुननेसुनाने का वर्णन है. इन से न तुलसी का वेद ज्ञान स्पष्ट होता है, न उन के साहित्य का वेदानुकूल होना. कुछ उदाहरण देखिए :

कतहु विरुद वेदी उच्चरहीं, कतहु वेद ध्वनि भूसुर करहीं.

—रामचरित मानस, 196

जहां बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान,

सुनहि कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान.

—रामचरित मानस, 358

वेद तथा उस के पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग 79 स्थानों पर तुलसी बाबा ने इस प्रकार किया है जो साधारणतया उचित लगता है. इन में 47 स्थानों पर वेद, 14 स्थानों पर आगमनिगम और 18 स्थानों पर श्रुति शब्द प्रयुक्त हुआ है. ये स्थल ऐसे साधारण विचारों वाले हैं जिन के वेदानुकूल होने का जनसाधारण को भी ज्ञान रहता है. इन में भी 12 स्थल विवादास्पद हैं. 11 वेद वालों में व एक आगमनिगम वालों मे. उदाहरणार्थ कुछ स्थल प्रस्तुत किए जाते हैं:

कहहिं वेद इतिहास पुराना, विधि प्रपंच गुन अवगुन साना.

—रामचरित मानस, 38

समांजमनियम फूल फल नाना, हरि पद रति रस वेद बखाना.

—रामचरित मानस, 58

वेद कहत, बुध कहत हैं और कहतु हौं टेरि,
तुलसी प्रभु सांचो हितू तू हिये की आंखिन हेरि.

—विनयपत्रिका, 554

है श्रुति विदित उपाय सकल, सुर केहिकेहि दीन निहोरै.

—विनयपत्रिका, 510

धरम न दूसर सत्य समाना, आगम निगम पुरान बखाना.

—रामचरित मानस, 284

इन में वे स्थल भी सम्मिलित हैं, जिन में तुलसी ने कलियुग निंदा में ब्राह्मणों को वेद विदूषक एवं श्रुति बेचक कहा है तथा स्वयं को वेदविहीन बताया है. हम ने इस स्तंभ मे ऐसे स्थलों की गणना की है, जिन के औचित्य की संभावना हो सकती है. ऊपर उद्धृत स्थलों में ऐसी साधारण बातें हैं जो सभी धर्म ग्रंथों में प्रायः होती हैं. संसार गुणअवगुण से मिला हुआ है, यमनियमादि का तत्त्व ईश्वर प्रेम है, ईश्वर सब से बड़ा मित्र है आदि सिद्धांत सभी धर्म ग्रंथों में होने चाहिए.

इस स्तंभ के अंतर्गत जो स्थल विवादास्पद हैं, उन में से भी कुछ देखिए:

लाभु न कछु हरि भक्ति समाना, जेहि गावहि श्रुति संत पुराना.

—रामचरित मानस, 663

कहहिं संत मुनि वेद पुराना, नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना.

—रामचरित मानस, 666

विनु गुरु होइकि ज्ञान, ज्ञानकि होय विराग विनु,
गावहिं वेद पुरान, सुखकि लहिय हरि भगति विनु.

—दोहवली, 114

उक्त उदाहरणों में जो बातें कही गई हैं, वे साधारणतया तो ठीक लगती

हैं, पर सर्वमान्य नहीं हैं वेदों का मुख्य विषय कर्मकांड है. उपासना और कर्मकाड सब का फल ज्ञान बताया गया है, जब कि भक्ति मार्ग वाले भक्ति को सर्वोपरि समझते हैं. उद्धव गोपी संवाद सभी भक्तों का प्रिय विषय रहा है, जिस मे ज्ञान को भक्ति से नीचा ठहराया गया है

तुलसी बाबा ने वेदो को संत, शारदा, शेष, शंकर आदि के साथ तो सैकडों स्थलों पर स्मरण किया है, पर 30 स्थानों पर तो उन का वर्णन इस प्रकार किया है, मानो वेदादि भी कोई पुरुष हों जो किसी निश्चित कार्य को करने में समर्थ न हों. जहां तक वेद कहें 'श्रुति गावें, निगम पुकारें' आदि वाले स्थल हैं, वहां तक वेदो में इस का वर्णन है, तात्पर्य लगा कर काम चलाया जा सकता है, पर जहा किसी काम के कर सकने की बात है, वहा उस की संगति वेदों से नहीं लगाई जा सकती. अयोध्या की शोभा का वर्णन या तुलसी के अवगुणों की गणना वेद भी नहीं कर सकते, इस की भी कोई तुक है? कोई अपरिचित तो यहां तक कह बैठेगा कि इस आदमी को इतना तक पता नहीं कि वेद एक पुस्तक का नाम है. कुछ इसी प्रकार के स्थल पेश हैं:

प्रेम प्रमोदु विनोद बडाई, समउ समाज मनोहर ताई
कहि न सकहि सत सारद सेसू, वेद विरंचि महेस गनेसू
—रामचरित मानस, 230

बदउ चारिउ वेद भव बारिधि बोहित सरिस,
जिन्हहि न सपनेहु खेद बरनत रघुबर बिसद जसु
—रामचरित मानस, 44

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहि सयानी,
तदपि सत मुनि वेद पुराना, जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना.
—रामचरित मानस, 104

बरनत यह अमित रूप, थकित निगम नागभूप
—गीतावली, 410

निगम सेस सारद सुक संकरु, बरनत रूप न पावत पारु.
—गीतावली, 411

निगम सेप सारद निहोरि जो अपने दोप गनावो,
तो न सिराहि कल्प सत लगि प्रभु कहा एक मुख गावो.
—विनयपत्रिका, 530

कोटिहु बदन नहि बनै बरनत जग जननि सोभा महा,
सकुचहि कहत श्रुति सेप सारद मंद मति तुलसी महा
—रामचरित मानस, 93

सत सारदा सेप श्रुति मिलि करि शोभा बरनि न जाई
—विनयपत्रिका, 492

कहिहै कलुप कौन मेरे कृत करम बचन और मन के,

हार्रहि अमित सेष सारद स्रुति गिनत एक एक छनके.

—विनयपत्रिका, 507

तो जनाव नोट कर लीजिए तुलसी बाबा की नई खोजें कि हमारेआप के समान वेदों को भी खेद होता है, उन के भी मति होती है, वे भी थकते हैं, वे भी पार नहीं पाते, उन्हें भी संकोच होता और उन्हें भी खुशामद कर के किसी गणना के लिए राजी किया जा सकता है.

हमें तुलसी साहित्य मे 143 स्थल ऐसे मिले हैं. जिन में वेद का नाम ले कर गलत और आपत्तिजनक बातें कही गई हैं, उन बातों का वेद से कोई संबंध नहीं है. अयोध्या वर्णन, तीर्थराज प्रशंसा, काशी महात्म्य, राम कथा आदि ऐसे ही विषय हैं, जिन का वेदों मे कहीं वर्णन नहीं हैं. राम भक्ति के आवेश में तुलसी बाबा चाहे कल्प भेद से रामचरित अगणित मान लें, लेकिन वास्तविकता यह है कि वेदों की रचना के समय इन मे से किसी का नाम नहीं था. वेदो में जहांजहां काशी, अयोध्या तथा राम शब्द दोएक स्थल पर आए हैं, पर उन का अर्थ क्रमशः चमकती हुई, न जीतने योग्य तथा सुंदर है, नगरी और दशरथ पुत्र नहीं. इसी प्रकार के अन्य स्थान हैं, जिन में कुछ का दिग्दर्शन कराया जाता है:

मज्जहिं सज्जन वृंद वहु पावन सरजू नीर,
जर्याहि राम धरि घ्यान उर सुदर श्याम शरीर.
दरस परस मज्जन अरु पाना, हरई पाप कह वेद पुराना.

—रामचरित मानस, 56

सेवहिं सुकृति साधु सुचि पावहि मन काम,
वेदी वेद पुरान गन कहहिं विमल गुन ग्राम.

—तीर्थराज प्रशंसा (रामचरित मानस, 291)

जय गजवदन पडानन माता, जगत जननि दामिनि दुति गाता,
नहिं तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाव वेदु नहिं जाना.

—रामचरित मानस, 164

लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही, वेद पुरान प्रशंसहि जाही

—रामचरित मानस, 115

सकल कामप्रद तीरथ राऊ, वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ

—रामचरित मानस, 341

जो अपराध भगत कर करई, राम रोष पावक सो जरई.
लोकहु वेदविदित इतिहासा, यह महिमा गावहिं दुरवासा.

—रामचरित मानस, 348

दुइ सुत सुंदर सीता जाए, लवकुस वेद पुरानन गाए.

—रामचरित मानस, 610

जिन को पुनीत वारि धारे सिर पर पुरारि,

त्रिपथ गामिनि जसु वेद कहैं गाइकै. —कवितावली, 163

सकर से नर गिरिजा सी नारी कासी वासी,
वेद कही सही ससिसेखर कृपाल की
—कवितावली, 240

ठाकुर महेस ठकुराइन उमासी जहा, लोभ वेद हू विदित महिमा ठहरती
—कवितावली, 240

सबरी सेस सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ,
नाम उधारे अमित थल वेद विदित गुन गाथ.
—दोहावली, 105

जोग कोटि करि जो गति हरि सो मुनि मागत सकुचाही,
वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतग समाही.
—विनयपत्रिका, 456

अब जाना मैं अवध प्रभावा, निगमागम पुरान अस गावा.
रामचरित मानम, 651

अतुलित बल मृगराज मनुज तन दनुज हत्यो स्रुति साखी
—विनयपत्रिका, 5८6

ऊपर जिन का विवरण दिया गया है, उन की प्रशंसा या गाथा पुराणो मे तो मिल सकती है, वेद मे नहीं. वेदो मे तो गंगा का भी नाम नहीं है, सरजू की क्या गिनती? वेदों मे सिंधु शब्द अवश्य आया है कुछ स्थल ऐसे हैं, जिन पर हंसी आए बिना नहीं रहती. कपट मुनि के मित्र राक्षस पाताल केतु ने जब प्रतापभानु के पुरोहित के रूप मे रसोई तैयार की, वह श्रुति के गाने के अनुसार थी:

उपरोहित जेवनार बनाई, छरस चारि विधि जसि श्रुति गाई
—रामचरित मानस, 130

भला वेद न हुए, कोई पाक शास्त्र की पुस्तक हो गई? यजुर्वेद के कुछ मंत्रो मे अन्नो के नाम अवश्य गिनाए गए हैं, पर पाक क्रिया का ऐसा बेजोड वर्णन कहीं नहीं है, जिस से कुशल रसोइया भी सहायता ले सके.

इसी प्रकार की बात हनुमान के विषय मे है एक ओर तो तुलसी बाबा ने उन्हें पूछ वाला बंदर कहा है, दूसरी ओर उन्हें वेद, व्याकरण आदि का ज्ञाता बताया है:

जयति विश्व विख्यात बानैत विरुदावली, विदुष बरनत वेद विमल बानी.
—विनयपत्रिका, 467

जयति वेदातविद विविध विद्या विशद वेदाग विद ब्रह्म वादी
—विनयपत्रिका, 467

वेद पुरान प्रकट पुरुषारथ सकल सुभट सिरमोर
—विनयपत्रिका, 470

जयति निगमागम व्याकरन करन लिपि, काव्य कौतुक कला कोटि सिंधो.

—विनयपत्रिका, 468

बंदि छोरि विरुदावली निगमागम गाई

—विनयपत्रिका, 478

वेदों में राम कथा का नाम ही नहीं है तो हनुमान बेचारे को कौन पूछता है! रही हनुमानजी की पढाईलिखाई की बात, सो क्या कहूं! हनुमान की जो कुछ मान्यता है, वह तुलसी के बाद ही आरंभ हुई है :

सहज अपावन नारि पति सेवत सुभगति लहहिं,
जस गावहिं श्रुति चारि अजहुं तुलसिका हरिहि प्रिय

—रामचरित मानस, 410

परम धरम श्रुति विदित अहिंसा, पर निंदा सम अघ न गरीसा.

—रामचरित मानस, 672

स्रुति गुरु साधु सुमृति सम्मत यह दृश्य सदा दुखकारी, (ससार निंदा)
तेहि विनु तजे भजे विनु रघुपति विपति सकै को टारी.

—विनयपत्रिका, 517

विषय हीन दुख मिले विपति अति सुख सपनेहु नहि पायो,
उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यो धन दुखप्रद स्रुति गायो.

—विनयपत्रिका, 558

वेदों में नारी निंदा नहीं है, यह तो पुराण काल की देन है. अहिंसा परमो धर्मः का सिद्धांत तो बौद्धों का है. यज्ञो में दी जाने वाली बलि का ध्यान कर के इसे वेदविदित कौन कहेगा? इसी प्रकार संसार को सदा दुःखमय मानना और धन को उभय प्रकार दुखप्रद कहना वैदिक विचारधारा के प्रतिकूल है. ये दोनो विचारधाराएं भी बौद्ध धर्म की देन हैं. वेद घरबार छोड़ कर लंगोटी लगाने वालो की रचनाएं नहीं हैं, उन के दृष्टा प्रायः बालबच्चेदार ऋषि थे. वेदों मे सैकड़ों स्थानो पर ईश्वर से धन, पशु, संतान और फसलें देने की प्रार्थनाएं भरी पड़ी हैं.

राम कथा और राम नाम की महिमा से सबंधित बीसियो स्थल ऐसे हैं, जिन में तुलसी ने वेद का हवाला दिया है. हम पहले ही निवेदन कर चुके हैं कि न वेद में राम कथा है, न राम नाम की महिमा गाई गई है और न राम के अनेक नाम गिनाए हैं. बहुत सी विचारधाराओं पर तुलसी बाबा ने आंख बंद कर के वेद की मुहर लगा दी है, हम विस्तार भय से उन सब उद्धरणो को नहीं दे रहे.

शायद यह भूल तुलसी बाबा से इस कारण हुई है कि उन्होने वेद और पुराण को एक ही चीज समझ लिया है. वेदों में कथानक नहीं है, यदि है भी तो बहुत कम और अस्पष्ट, जब कि पुराणों में कहानियां ही कहानियां भरी पड़ी हैं. दूसरे वैदिक काल और पौराणिक काल की परिस्थितियों तथा विचारधाराओं

मे जमीनआसमान का अंतर है. तुलसी ने 86 स्थलों पर वेदों और पुराणों को एक ही डंडे से हांका है, जिन पर 51 स्थलों पर वेद, 17 स्थलों पर आगमनिगम और 18 स्थलो पर श्रुति शब्द प्रयुक्त हुआ है. कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि वेद और पुराण को एक ही जुए मे जोतना कहां तक उचित था.

सेष सारदा वेद पुराना, सकल करहिं रघुपति गुनगाना

— रामचरित मानस, 97

सुमिरत सुलभ दास दु ख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत सभारत,
सखि पुरान निगम आगम सब जानत द्रुपद सुता अरु वारन.

—विनयपत्रिका, 562

जो गति आगम महामुनि दुर्लभ कहत सत श्रुति सदा पुरान,
सोई गति मरन काल अपने पुर देत सदाशिव सवहि समान.

—विनयपत्रिका, 455

रघुपति (दशरथ पुत्र) का गुणगान, स्मरण करते ही भगवान का गज, द्रौपदी आदि भक्तों की सहायता को नगे पाव दौड़ना और शिवशकर की नगरी काशी मे मरने वालो को मोक्ष मिलना, यह सब पुराणो का विषय है, वेद का नहीं. वेद मे ऐसी बेसिरपैर की बातो की भरमार नहीं है

तुलसी साहित्य मे 23 स्थानों पर लोक और वेद शब्दों का साथसाथ प्रयोग हुआ है और 19 स्थानों पर वेद को विवाह, राज्याभिषेक, मृतक दाह आदि की विधि के लिए स्मरण किया गया है. इस विषय मे हमे केवल इतना कहना है कि वेद मे रीतिरिवाजों और संस्कारों का वर्णन नहीं है, यह तो स्मृतियो और गृह्य सूत्रो का विषय है. वेदो मे वे मंत्र अवश्य हैं जो उक्त अवसरों पर बोले जाते हैं. कौन सा मत्र किस अवसर पर बोला जाना चाहिए, इस का निर्देश भी गृह्य सूत्रो मे ही मिलता है. बहुत से मत्र ऐसे हैं, जिन का अर्थ उन के प्रयोग के अवसर से बिलकुल मेल नहीं खाता जैसे शनिश्चर की पूजा के लिए जो 'शं नो देवी' मंत्र बोला जाता है, उस मे शनि नहीं, जल की प्रार्थना है.

तुलसी बाबा ने 11 स्थलों पर वेद निगम एवं श्रुति शब्दो का प्रयोग 'नेति' के साथ किया है. यह नेति वाला मामला कुछ समझ मे नहीं आता इन स्थलों मे राम, कृष्ण, शिव आदि की प्रशंसा, स्तुति आदि हैं शायद इस से तुलसी का यह तात्पर्य रहा है कि वेदादि यह स्वीकार करते हैं कि इस का वर्णन हम नहीं कर सकते या इस का ज्ञान हमे नहीं है. दोचार स्थल देखिए :

मुनि जेहि ध्यान न पावहि नेतिनेति कह वेद,
कृपासिंधु, सोइ कपिन्ह सन करत अनेक विनोद

—रामचरित मानस, 585

रामस्वरूप तुम्हार वचन अगोचर बुद्धि पर,
अविगत अकथ अपार नेतिनेति नित निगम कह.—रामचरित मानस, 302

सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कह श्रुति गावही
—रामचरित मानस, 452

किन्हीं शब्दो में यह नेति वाली विचारधारा तुलसीदास ने हमारे मत से मिलतीजुलती ही प्रकट की है. जब वेदों में राम आदि कथा है ही नहीं तो वेद वेचारे उन के वर्णन में मजबूरी दिखाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं?

पर तुलसी ने भी कच्ची गोलियां नहीं खेली थीं, उन्होंने वेदों की इस नेति वाली कमी को पूरा करने के लिए उन्हे साकार रूप मे कष्ट दिया है. वेदों ने तीन स्थलों पर साकार रूप में मनुष्य वन कर राम की प्रार्थना की है :

भिन्नभिन्न अस्तुति करि गए सुर निजनिज धाम,
वदी भेष वेद तव आए जह श्रीराम.
—रामचरित मानस, 601

देवताओं की स्तुति से काम नहीं चला तो वेद स्वयं वंदी (भाट) का वेष धारण कर के आए और स्तुति कर के चले गए :

सत्र के देखत वेदन्ह विनती कीन्ह उदार,
अतर्धान भए पुनि गए ब्रह्म आगार
—रामचरित मानस, 603

सीता और राम का विवाह भी साधारण ब्राह्मणो ने नहीं पढ़ा था, ब्राह्मणो के भेष मे वेदों को आना पड़ा था :

होम समय तनु धरि अतलु अति मुख आहुति लेहिं
विप्र भेप धरि वेद सव कहि विवाह विधि देहिं
—रामचरित मानस, 211

अव तक हम ने तुलसी साहित्य के विषय में जो आंकड़े गिनाए हैं, उन की सूची इस प्रकार हैं :

विषय	वेद	आगमनिगम	श्रुति	योग
उच्चारण	26	2	2	30
औचित्य की संभावना	47	14	18	79
न० 2 में विवादास्पद	11	1	—	12
वेदों का पुरुषो के समान वर्णन	13	10	7	30
अशुद्ध एव आपत्तिजनक प्रयोग	78	17	48	143
लोक के साथ	23	—	—	23
पुराण के साथ	51	17	18	86
सस्कार के समय	17	1	1	19
नेति	3	7	1	11
नाम से मत कथन	8	2	4	14

इन का सर्वयोग इसलिए नहीं किया गया है कि एक स्थल कहींकहीं एकाधिक विषय से संबद्ध है.

पहले दिल्ली के एक मशहूर दवाखाने की शरवत की वोतलों पर एक तालिका लगी रहती थी जिस मे यह निर्देश था कि इस मे विभिन्न विटामिनों की मात्रा कितनी है? किसी राजकीय अधिकारी ने उस की वैज्ञानिक जाच कराई तो वह सब असत्य निकला. आजकल लोग वस्तुए नहीं विटामिन खाना अधिक पसद करते हैं, विशेष कर पढ़ेलिखों पर विटामिन का जादू एकदम प्रभाव डालता है इसी लिए शर्वत बनाने वालों ने विटामिन की शरण ली. तुलसीदास ने भी वेद एवं उस के पर्यायवाची शब्दों की पुकार इसी लिए मचाई है कि उस समय भारतीय जनता वेदों से अनभिज्ञ होने पर भी वहुत श्रद्धालु थी.

हमारा निवेदन केवल इतना है कि तुलसी वावा ने किसी वात को वेद सम्मत वताने से पहले उस स्थल को वेद मे ढूंढा नहीं था जो वात उन के मन को अच्छी लगी उसे उन्होंने वेदादि मे वर्णित कह डाला है वेद, पुराण आदि तुलसी वावा के तकिया कलाम वने हुए थे.

वेद, पुराण, शेष, शारदा, शंकर, संत आदि को उन्होने इस प्रकार एक डडे से हाका है इस प्रसंग मे हमे अपने वड़े भाई साहव की याद वरवस आ जाती है. हमारे य वडे भाई प्रेमचद के वड़े भाई साहव से कम नहीं हैं वह पढने के नाम पर प्राइमरी स्कूल से ही लौट आए हैं. उन्हे न जाने यह कैसे विश्वास हो गया है कि आजकल जो भी नवीन आविष्कार होते हैं वे सव सिविक्स और साइस द्वारा किए जाते हैं.

हम ने कई वार समझाने का प्रयत्न किया कि सिविक्स और साइंस दोनो सर्वथा भिन्न हैं पर उन्होंने नहीं सुना.

पुराण आदि के साथ वेदों को कष्ट देने मे तुलसी वावा हमारे वडे भाई साहव से भी आगे थे. इतना विवेचन* कर के सभवत. अव हम साधिकार कह सकते हैं कि तुलसी ने वेदो का अध्ययन नहीं किया था. उन की वेदो के प्रति श्रद्धा अवश्य थी. तुलसी साहित्य मे जो वातें वेदानुकूल हैं, वे उसी प्रकार साधारण ज्ञान से सवधित हैं जैसे विजली वाले घर मे लोग फ्यूज जोडना जान जाते हैं.

*रामचरित मानस की पृष्ठ संख्याए गीता प्रेस, गोरखपुर के गुटके से तथा अन्य ग्रंथों की पृष्ठ सख्याएं नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित तुलसी ग्रथावली, दूसरा खंड के अनुसार दी गई हैं.

तुलसी के आंकड़े

तुलसीकृत रामचरितमानस को जो पचम वेद मानते हैं, उन श्रद्धालुओं की बात तो अलग है, हां जिन्होने अर्थ समझते हुए या साहित्य की दृष्टि से उसे देखा है, उन्हे दो बातें अवश्य खटकी होंगी. एक तो तुलसी की लबीचौड़ी आंकड़ेबाजी और दूसरी थोडीथोड़ी देर बाद आकाश से होने वाली पुष्प वर्षा. पूरे रामचरितमानस में देवताओ ने लगभग 60 बार पुष्प वर्षा की है. गीता प्रेस से प्रकाशित मानस मूल गुटका की पृष्ठ सख्या 680 है. इस प्रकार औसतन प्रति दस पृष्ठो मे पुष्प वर्षा होती दीख जाती है. लगता है, देवता फूलो से झोली भरे इसी काम के लिए बैठे रहते होगे. और कहां से आते होंगे इतने फूल।

तुलसी की संख्याओं के सामने तो भारत सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं के आंकड़े फीके पड़ जाते हैं. यदि रामचरितमानस की किसी प्रति में सब संख्याएं मोटे टाइप में प्रकाशित की जाए, तो उन से भिन्नभिन्न देशों की जनसख्या का भ्रम हो सकता है. तुलसी ने सौ से नीचे की सख्या को दोचार बार ही याद किया होगा उन की सब से प्रिय सख्या थी कोटि (करोड़), जिस का प्रयोग उन्होंने अपने साहित्य में 231 बार किया है. नीचे की सारिणी से उन की सख्याओं की जानकारी प्राप्त हो सकती है.

रचना	कोटि	शत	सहस्त्र	योग
विनय पत्रिका	38	4	3	45
गीतावली	27	4	1	32
कवितावली	20	2	0	22
दोहावली	3	1	2	6
पार्वती मंगल	5	1	0	6
जानकी मंगल	1	1	0	2

रचना	कोटि	शत	सहस्त्र	योग
रामाज्ञा प्रश्नावली	2	0	1	3
कृष्ण गीतावली	3	0	0	3
रामलला नहछू	3	0	0	3
वैराग्यसंदीपिनी	3	0	0	3
रामचरितमानस	125	57	26	208
संपूर्ण साहित्य	231	70	33	334

ऊपर की सारिणी इस बात की साक्षी है कि तुलसी ने सौ या इस से अधिक संख्या 334 बार प्रयुक्त की है, जिस मे 231 बार कोटि शब्द आया है. कोटि कह देना तुलसी के लिए साधारण बात थी. तुलसी को जहां भी सौंदर्य की बात कहनी पड़ी है, उन्होंने कामदेव को याद किया है और एक भी स्थल ऐसा नहीं है, जहा किसी को कामदेव से करोड़ (कोटि) गुना सुंदर न बताया हो. हां, कई स्थलों पर कोटि को शत और सहस्त्र से गुणा अवश्य कर दिया गया है. कोटि के साथ काम को तुलसी ने अपने पूरे साहित्य मे 29 बार उदधृत किया है, जिस मे छः बार कोटि को शत या सहस्त्र से गुणा किया गया है—डारों वारि वारि अंगन पै कोटि कोटि शतमार.

नारी सौंदर्य के लिए रति का केवल दो बार स्मरण हुआ है. एक बार अकेली और दूसरी बार अपने पति के साथ.

रूप रासि विधि नारि सवारी, रति सत कोटि तासु बलिहारी

—मानस 424.

सुंदरता की उपमा का विषय तो खैर निराकार से संबंधित है, जो चाहे कहो, पर जहां कोई साकार वर्णन हो, वहा ये लबीचौड़ी संख्याएं बुरी तरह अखरती हैं. सीता स्वयंवर वाले धनुष को दस हजार राजाओं ने एक बार ही उठाना चाहा—न जाने कितने मील लंबा था वह धनुष!

भूप सहस दस एकहिं वारा, लगे उठावन टरहि न टारा

—मानस. 172.

राम विवह के समय भिखारियो को भीख दी गई, तब भी करोड़ों तरह से:

जाचक लिए हकारि दीन्ह दच्छिना कोटि विधि —मानस 195.

मथरा दासी ने कैकयी को राम के विरुद्ध भड़काने के लिए करोड़ों कुटिल-पन रचे तथा सपत्नियों की सैकडों कथाएं सुनाई:

रचिपचि कोटित कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु,
कहिसि कथा सत सवतिन्ह जेहि विधि बाढ़ विरोधु.

—मानस 246.

ऊपर के सब काम होने मे एक दिन से भी कम समय लगा. न मालूम कितना बड़ा होता था उस समय का दिन! फिर यह मंथरा कितनी शक्तिशाली रही

होगी, जो एक साथ करोड़ों कुटिलपन रचने और सैकड़ो कथाएं सुनाने में थकी नहीं.

राजा दशरथ ने कैकयी से कहा तो कोटि विधि और अवधवासियों ने कैकयी की कुचाल पर गालियां दी तो करोड़ों.

परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदान.

—मानस. 256.

देहिं कुचालिहिं कोटिक गारी, ऐहि विधि विलपहिं पुर भर नारी

—मानस.263.

राम ने पिता के चरण पकड़ कर करोड़ बार नमस्कार किया. (बेचारे पिता के तो पैर भी दुख गए होंगे?)

पितु पद गहि कहि कोटि नति विनय करिय कर जोरि.

—मानस: 286.

पिता को कोटि नमस्कार करने और सीता को करोड़ों शिक्षाएं देने में राम को कुछ ही मिनट लगे थे, क्योंकि वे शाम तक शृंगवेरपुर पहुंच गए थे. इतना ही नहीं, सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए जो बंदर भेजे वे करोड़ थे और लंका दुर्ग की रक्षा करने वाले वीरों की संख्या भी करोड़ों में थी:

सो सीताकर खोज कराइहि जह तहं मरकट कोटि पठाइहि.

—मानस. 448.

करि जतन भट कोटिन विकट तन नगर चहुं दिसि रच्छही.

—मानस: 470.

कुंभकर्ण के जागते ही रावण ने शराब के एक करोड़ घड़े तथा अनेक भैंसे मंगवाए.

रावण मांगेहु कोटि घट मद अरु महिष अनेक.

—मानस. 545.

रावण ने युद्ध में राम के ऊपर करोड़ों बाण चलाए:

कोटिन आयुध रावण मारे, तिल प्रवान करि काटि निवारे

—मानस: 557.

इस प्रकार तुलसी ने विना इस बात का ध्यान किए कि इस स्थल पर करोड़ संख्या उपयुक्त है या नहीं, उस का खुल कर प्रयोग कर दिया है. लगता है, यह उन का तकियाकलाम था.

नीचे की संख्या पर तो विश्वास करना एकदम असंभव ही है. मनु और शतरूपा पुत्र प्राप्ति के लिए 23 हजार वर्ष तपस्या करते रहे:

एहि विधि वीते वरष पट, सहस वारि अहार,
संवत सप्त सहस्त्र पुनि रहे समीर अधार.
वरस सहस दस त्यागेउ सोऊ,ठाढे रहे एक पद दोऊ.

—मानस 116.

कुमारी पार्वती ने इकतालीस सौ वर्ष से कुछ अधिक समय तपस्या की, तब कहीं बेचारी के हाथ पीले हो पाए.

संवत सहस मूल फल खाए, सागु खाय सत बरस गवाए.
कछु दिन भोजन बारि बतासा, किए कठिन कछु दिन उपवासा.
बेल पाति महि परइ सुखाई, तीनि सहस संवत सो खाई
पुनि परिहरे सुखाने परना, उमहि नाम तब भयेहु अपरना

—मानस 77

कपट मुनि ने सत्यकेतु के पुत्र प्रतापभानु को एक वर्ष मे लगभग तीन करोड़ 65 लाख ब्राह्मण परिवारों को भोजन कराने की सलाह दी. फिर भी बहुत से परिवार शेष रह गए.

"जाय उपाय रचहु नृप एहू, संवत भरि संकल्प करेहू.
नित नूतन द्विज सहस सत, बरेहु सहित परिवार.
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहिं करबि जेवनार.

—मानस: 128

उस समय इतनी जनसंख्या तो संपूर्ण भारत की भी नहीं रही होगी.

स्वयंवर वाले धनुष को तो दस हजार राजाओं ने ही एक बार उठाया था, पर युद्ध मे घायल लक्ष्मण को उठाने के लिए करोड़ों योद्धा लग पड़े. धनुष के बारे मे तो मान सकते हैं कि वह बहुत लंबा बना दिया गया होगा, पर लक्ष्मण की लंबाई का क्या हिसाब लगाएं, जिन का शरीर करोड़ो हाथों का आधार बन सका? काश, तुलसी ने लक्ष्मण के शरीर की लंबाईचौड़ाई भी लिखी होती. मेरा अनुमान है कि साधारण मनुष्य के शरीर पर करोड़ों चोटियां भी नहीं आ सकतीं.

मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाया,
जगदाधार शेष किमि उठै, चले खिसियाय. —मानस· 539

राम की सेना मे जितने यूथप (टोली नायक) थे, उन की संख्या आज के विश्व की जनसंख्या से कई गुनी थी, सेना की तो बात ही क्या! 88 पद्म नायकों को खड़े होने के लिए लंका तो क्या, सारा भारत कम पड़ेगा. फिर सेना ने छोटे से मैदान मे युद्ध कैसे कर लिया.

अस मैं सुना भुवन दसकधर, पदम अठासी जूथप बदर.

—मानस: 498

गणना के साथसाथ नाप के विषय मे भी तुलसी ने जो मुंह मे आया, कह दिया है तुलसी ने दंडकारण्य से दक्षिणी सागर तट को सौ योजन (400 कोस या 630 मील के लगभग) माना है, जिसे आज का भूगोल स्वीकार नहीं करता.

सत जोजन आयहु छन मांही, तिन सों बयरु किए भल नाहीं.

—मानस 420

जो नाघइ सत जोजन सागर, करइ सो राम काज मति आगर.

—मानस : 436

लका और रामेश्वर के बीच में सागर की लबाई को भी तुलसी ने सौ योजन ही बताया है—आज लंका और भारत के बीच जो दूरी है, उस से अधिक दूरी होने की इतिहास कभी साक्षी नहीं देता. इस के विपरीत लोगों का मत है कि किसी समय लंका और आस्ट्रेलिया भारत से मिले हुए थे. फिर नानापुराणनिगमागमसम्मत कहने वाले तुलसी बाबा का आधार न जाने क्या रहा होगा? एक और दृष्टि से विचार करें तब भी लगता है तुलसी आंकड़ों के मामले मे सोचविचार से काम नहीं लेते थे. सीता की खोज कर के हनुमान जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें सुरसा मिल गई, जिस ने हनुमान को निगलने के लिए अपना मुंह सौ योजन फैला लिया.

सत जोजन तेहि आनन कीन्हा, अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा.

—मानस : 469

रामेश्वर से लंका तक उस का मुंह ही था, फिर अन्य शरीर तो दोनों के बीच में फस कर चूरचूर हो गया होगा? यदि इस बात को आकाश में होने वाली बना कर पीछा छुड़ा लिया जाए, तब भी अगले प्रसंग का क्या समाधान है, जब राम ने पुल पर हो कर सागर पार किया, तो समुद्री जीव उन के दर्शन करने निकल पड़े. उन मे बहुत से सौ योजन लंबे थे. कुछ ऐसे थे, जो उन्हें खा सकते थे और खाने वालों को भक्षण करने वालों की भी कमी नहीं थी.

मकर वक्र नाना झपि व्याला, सत योजन तन परम विसाला,
अइसेउ एक तिन्हहि जे खाही, एकन्ह के डर तेपि डराहि

—मानस 508

लंका और रामेश्वर के तटों को जोड़ने के लिए तो ऐसा एक ही जीव पर्याप्त था. राम ने व्यर्थ पुल बनवाने की परेशानी उठाई. सागर के किनारे खड़े हो जाते और दर्शनार्थी जलजीवों की भीड़ लग जाती. किनारे पर खड़े रहते और सारी सेना पार उतर जाती. वास्तविकता की भूमि पर उतरें तो बुद्धि चकरा जाती है कि सौ योजन के सागर में सौ योजन लंबे अनेक जीवजंतु, उन्हें खाने वाले और खाने वाले को भी खाने वाले जंतु बेचारे कैसे समाए होंगे? यदि तुलसी बाबा पूर्वापर प्रसंग का कुछ भी ध्यान रखते तो ऐसी परस्पर विरोधी बातें नहीं लिखते.

तुलसी ने 'रामचरित मानस' समाप्त करतेकरते दो स्थलों पर संख्याओं का खुल कर प्रयोग किया है:

नर सहस्त्र, महं सुनहु पुरारी, कोउ एक होइ धर्म व्रतधारी.
धर्मसील कोटिक मह कोई, विषय विमुख विराग रत होई.
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई, सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई
ज्ञानवंत कोटिक महं कोऊ, जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ.

तिन्ह सहस्र महु सब सुखखानी, दुर्लभ ब्रह्म लीन बिज्ञानी.

—मानस : 625

ऊपर की संख्याओं का गुणा किया जाए, तो आज विश्व की बढ़ती जन-संख्या मे भी ब्रह्मलीनों की संख्या दशमलव एक नहीं होगी.

दूसरा स्थल वास्तव मे कमाल का है, जहां लगातार तेईस बार तुलसी बाबा ने कोटि शब्द प्रयोग किया है.

रामु काम सत कोटि सुभगतन, दुर्गा कोटि अमित अरि मरदन,
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा, नभ सत कोटि अमित अवकासा.
मरुत कोटि सत बिपुल बल बिसत कोटि प्रकास,
ससि सतकोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास.
काल कोटि सम सरित अति दुस्तर दुर्ग दरत,
धूमकेतु सतकोटि सम दुराधरष भगवत.
प्रभु अगाध सत कोटि पताला, समन कोटि सम सरित कराला.
तीरथ अमित कोटि सम पावन, नाम अखिल अघपूग नसावन.
हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा, सिंधु कोटि सतसम गभीरा:
कामधेनु सतकोटि समाना, सकल काम दायक भगवाना.
सारद कोटि अमित चतुराई, बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई
बिस्नु कोटि सम पालनकर्त्ता, रुद्रकोटि सत सम सहर्त्ता
धनद कोटि सत सम धनवाना, माया कोटि प्रपञ्च निधाना
भार धरन सतकोटि अहीसा, निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा.
निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै,
जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै

—मानस 647-48.

लगता है तुलसी ने मानस मे एक निश्चित संख्या मे कोटि शब्द का प्रयोग करने का संकल्प लिया था, अत मे जितने कोटि शब्द रह गए, वह एक स्थान पर रख दिए

तुलसी के आंकडो के लिए तो एक थीसिस अपेक्षित है तुलसी के आंकड़े पढने के बाद यही धारणा बनती है कि या तो मानस धार्मिक पुस्तक नहीं है या धर्म के मामले मे बेसिरपैर की हांकना, जिसे खरे शब्दो मे असत्य भाषण कह सकते हैं, कोई अपराध नहीं है हिंदी के अन्य काव्यो मे कल्पना की उड़ान चाहे कैसी भी हो, पर उन मे ऐसी आंकड़ेबाजी नहीं मिलेगी.

'रामचरितमानस' की साहित्यिक महत्ता चाहे कुछ भी हो, पर मूलत: यह है धार्मिक ग्रंथ ही तुलसी ने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'रामचरितमानस'

टिप्पणी : रामचरित मानस की पृष्ठ संख्या गीता प्रेस, गोरखपुर, के मूल गुटका और गीतावली की पृष्ठ संख्या नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, से प्रकाशित तुलसी ग्रंथावली (खंड दो) के आधार पर है

का तत्त्व राम नाम या राम कथा ही है :

एहि मह रघुपति नाम उदारा, अति पावन पुरान स्रुति सारा.

—बाल कांड, पृष्ठ 41

जदपि कवित रस एकउ नाही, राम प्रताप प्रकट एहि पाही.

—बाल कांड, पृष्ठ 42

तुलसी ने अपनी कविता को साधारण कवियों की कविता से भिन्न माना है. साधारण (साहित्यिक) कवि जहां देवी सरस्वती को दुखी कर देते हैं वहां तुलसी को विश्वास है कि वह अपनी कविता द्वारा उन्हें 'रामचरित सर' में स्नान करा कर गतश्रम कर देंगे:

भगति हेतु विधि भवन विहाई, सुमिरत सारद आवति धाई.
रामचरित सर बिनु अन्हवाएं, सो श्रम जाइ न कोटि उपाएं.
कीन्हें प्राकृत जन गुनगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना.

—बाल कांड, पृष्ठ 43

इस का तात्पर्य यही हुआ कि 'मानस' साहित्यिक रचना नहीं, धार्मिक कृति है. तुलसी ने 'मानस' के अंत में जो इस का माहात्म्य लिखा है, वह भी इसे धार्मिक रचना ही सिद्ध करता है.

पुण्यं पापहर सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदम्,
माया मोहमलापह सुविमलं प्रेमांबुपूरं शुभम्.
श्रीमद्रामचरित्रमनसमिदं भक्त्यावगाहंति ये,
ते संसार पतगघोर किरणैर्दह्यति नो मानवा :

—उत्तर कांड, पृष्ठ 1002

यह 'रामचरितमानस' पुण्यरूप, पापों का हरने वाला, सदा कल्याणकारी विज्ञान और भक्ति को देने वाला, माया, मोह और मल का नाश करने वाला, परम निर्मल प्रेम रूपी जल से परिपूर्ण तथा मंगलमय है. जो मनुष्य भक्ति-पूर्वक इस मानस सरोवर में गोता लगाते हैं, वे संसार रूपी सूर्य की अति प्रचंड किरणों से नहीं जलते हैं.

तुलसी का 'मानस' जब धार्मिक पुस्तक है तो उस में उसी प्रकार की ऊलजलूल, बेसिरपैर की असंभव और अविश्वसनीय बातें होनी चाहिए जो दूसरे धार्मिक ग्रंथों में होती हैं. जब तक लोगों को लंबीचौड़ी बातें न बताई जाएं, तब तक उन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती. सभी धार्मिक ग्रंथ रचयिता अपनी रचनाओं के प्रचार के लिए उन के पढ़ने मात्र से अनेक फलो का वर्णन करते हैं. उक्त चौपाई में तो तुलसी ने ऐसा किया ही है, 'मानस' के एक स्तोत्र के पाठमात्र से भी बड़ा लाभ बताया है :

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरितोपये,
ये पठंति नरा भक्त्या तेषा शंभुः प्रसीदति.

—उत्तर कांड, पृष्ठ 996

(भगवान रुद्र की स्तुति का यह अष्टक शंकरजी की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया. जो मनुष्य इसे भक्तिपूर्वक पढते हैं उन पर भगवान शंकर प्रसन्न होते हैं.)

भक्ति में तन्मय हो कर लोग अनेक बार 'रामचरितमानस' पढते और सुनते हैं. बुद्धि को स्वतंत्र रख कर यदि वे एक बार भी 'मानस' का अध्ययन करते तो उन के सामने ऐसे अनेक प्रश्न खड़े हो जाते जिन्हें लांघ कर आगे बढ़ना असंभव हो जाता. नीचे हम उदाहरणस्वरूप कुछ प्रसंगों की चर्चा कर रहे हैं.

जब से मनुष्य ने होश संभाला है तब से इतिहास में ऐसे एक भी राजा का वर्णन नहीं मिला जिस ने सारे संसार पर एकछत्र राज्य किया हो. अब तक संसार में अनेक भाग इतने अविकसित हैं जहां कोई राज्य व्यवस्था संभव नहीं है. बेचारे सिकंदर ने विश्वविजयी होने का सपना देखा था, पर एशिया महाद्वीप भी नहीं जीत पाया. इतिहास की साक्षी के विरुद्ध तुलसी ने 'मानस' में इतना बड़ा झूठ बोला है. उन्हें एक ऐसे राजा का नाम मालूम था, जिस ने सारे संसार के राजाओं को जीत कर अपने अधीन कर लिया था:

जब प्रताप रवि भयेउ नृप फिरी दुहाई देस,
प्रजापाल अति वेदविधि कतहू नहीं अघ लेस.
नृप हितकारक सचिव सियाना, नामधरम रुचि सुक्र समाना.
सचिव सयान बंधु बलबीरा, आपु प्रतापपुंज रनधीरा,
विजय हेतु कटकई बनाई, सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई
जहं तहं परी अनेक लराईं, जीते सकल भूप बरिआई.
सप्त दीप भुजबल बस कीन्हें, लैलै दंड छाड़ि नृप दीन्हे.
स्वबस बिस्व करि बाहुबल निज पुर कीन्ह प्रवेसु..

—बाल कांड, पृष्ठ 162-63

राजाओं से संबंधित अनेक कहानियों में बड़ेबड़े कमाल के रसोइयों की चर्चा आप ने सुनी होगी. क्या आप ने कोई ऐसा रसोइया भी सुना है जो अकेला लाखों आदमियों के लिए भोजन बना सकता हो? आदमी भी साधारण नहीं ब्राह्मण, जो भोजन करने में प्रसिद्ध होते हैं.

तुलसी बाबा के शब्दों में उस का परिचय देखिए:

जो नरेस मैं करउं रसोई तुम्ह परसहु मोहि जान न कोई.
अन्न सो जोइजोइ भोजन करई, सोइसोइ तब आयसु अनुसरई.
पुनि तिन्ह के गृह जेवंइ जोऊ, तब बस होइ भूप सुनु सोऊ.
जाइ उपाय रचहु नृप एहू, संबत भरि संकलप करेहू.
नित नूतन द्विज सहस सत बरेहु सहित परिवार,
मैं तुम्हरे संकलप लगि दिनहिं करबि जेवनार.

—बाल कांड, पृष्ठ 173

एक लाख ब्राह्मण परिवारों के लिए एक वर्ष तक प्रति दिन अकेले भोजन बनाना कैसे संभव है? यह शंका राजा को होनी स्वाभाविक थी. दिन भर में इतने व्यक्तियों का सामान चूल्हे पर रखना और उतारना भी संभव नहीं है. वह रसोइया किसी दूसरे की सहायता लेता हो, ऐसी बात भी नहीं थी. उस कपटी मुनि ने अपने हाथ के बने भोजन में ही ब्राह्मणों को वश मे करने का प्रभाव बताया था:

सुनु नृप विविध जतन जग माही, कष्ट साध्य पुनि होहि कि नाही.
अहइ एक अति सुगम उपाई, तहा परंतु एक कठिनाई.
मम आधीन जुगुति नृप मोई, मोर जाव तव नगर न होई.
एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे, होइ हैं सकल विप्र बस तोरे.

—बाल कांड, पृष्ठ 173-74

साधु ने अपनेआप को सर्व समर्थ बताया था, इसलिए उस के विषय में राजा ने विश्वास कर लिया हो, तब भी कोई बात नहीं है. पर राजा अपने विषय में तो कह सकता था, "महाराज, मैं अकेला एक लाख ब्राह्मण परिवारों को कैसे भोजन परोस सकूंगा?" भोजन परोसना तो अलग रहा, इतने आदमियों को पतले या लगीलगाई थालियां परोसने में ही सारे दिन से अधिक समय लगेगा.

साधारणतः एक लाख परिवारों की पंक्ति में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पैदल चलना भी एक दिन का सरल काम नहीं है और वह भी राजा के लिए. पर इस तथ्य की ओर ध्यान कौन देता? तुलसी बाबा को तो ऐसा आकर्षक झूठ बोलना था जो श्रोताओं और पाठकों को विभोर कर दे.

रामादि बालको के जन्म से राजा दशरथ को अत्यंत प्रसन्नता हुई. होनी स्वाभाविक भी थी. कहां तो दशरथजी की तीनो रानियों के चुहिया का बच्चा भी नहीं हुआ और कहां एक साथ चार संतानें, और वे भी लड़के. राजा के साथ ही प्रजा को भी प्रसन्न होना पड़ा. प्रसन्नता में लोग दोनों हाथों से धन लुटाते हैं. दशरथ ने पहले तो ब्राह्मणो को जी खोल कर दान दिया:

नदी मुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह,
हाटक, धेनु, बसन, मनि, नृप विप्रन्ह कह दीन्ह.

राजा की प्रसन्नता यहीं तक सीमित नहीं रही. प्रजा ने भी प्रसन्नता का प्रदर्शन किया:

ध्वज पताक तोरन पुर छावा, कहि न जाहि जेहि भांति बनावा.
सुमन वृष्टि अकास ते होई, ब्रह्मानंद्र मगन सब कोई.
वृंदवृंद मिलि चली लोगाई, सहज सिंगार किए उठि धाई,
कनक कलस मंगल भरि धारा, गावत पैठहिं भूप दुआरा
करि आरति नेवछावरि करही, बारबार सिसु चरनन्हि परही.
मागध सूत बंदि गन गायक, पावन गुन गावहि रघुनायक.

सर्वसु दान दीन्ह सब काहू, जिन्ह पावा राखा नहिं ताहू
मृगमद चंदन कुंकुम कीचा, मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा

—बाल कांड, पृष्ठ 194-95

तुलसी बाबा तो भक्ति के आवेश मे लिखते चले गए और धर्मप्राण पाठक भी पढ़ते चलते हैं, पर विचारशील पाठक बेचारा क्या करे? 'सर्वसु दान दीन्ह सब काहू' इस का सीधासादा यही अर्थ है कि सभी अयोध्यावासियों ने अपना सर्वस्व दान कर दिया. क्या मैं पूछ सकता हूं कि यह दान किस ने लिया? सभी लोग अपना सर्वस्व लुटा रहे थे तो दान ले कौन रहा था? अगली पंक्ति 'जिन्ह पावा राखा नहिं ताहू' तो स्थिति को और भी बिगाड़ देती है. दान लेने वाले ही पैदा नहीं हो रहे थे. फिर ले कर जिन्हें दिया गया, उन की खोज कहां की जाए!

अधिकतर टीकाकार उक्त पंक्ति का अर्थ इस प्रकार लगाते हैं—राजा दशरथ ने किसी को अपना सर्वस्व दान कर दिया. जिस ने पाया उस ने भी नहीं रखा अर्थात दान कर दिया. पहले तो यहां दशरथ को खींच कर लाना संभव नहीं है. दूसरे, दशरथजी के पास कितने सर्वस्व थे जो सब को एकएक देते रहे? क्या उन के सर्वस्व मे राज्य नहीं आता था? उन लोगों ने वह दान किसे दिया? क्योंकि 'सब काहू' शब्द की सीमा से बाहर कोई नहीं रहना चाहिए. 'दशरथ ने अपना सर्वस्व सब लोगों को दान दिया,' यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता क्योंकि 'सब काहू' एवं 'ताहू' शब्द एकवचन है. दान ले कर देने की समस्या तो ज्यों की त्यों है ही.

अयोध्या मे दशरथपुत्रों का जन्मउत्सव देख कर सूर्य भगवान चलना भूल गए. सूर्य के चलने से ही दिन चलता है. सूर्य भगवान एक मास तक रुके रहे. सूर्य का रुकना ठीक था—दशरथ सूर्यवंशी जो थे! संतान न होने से वंश समाप्त ही हो रहा था. अपने वंश की प्रसन्नता मे वे सीधे सम्मिलित न हो सके तो दूर से देख भी नहीं सकते थे? दूसरे, अयोध्या की शोभा भी कुछ कम आकर्षक नहीं थी:

अवधपुरी सोहइ एहि भाती, प्रभुहि मिलन आई जनु राती.
देखि भानु जनु मन सकुचानी, तदपि बनी संध्या अनुमानी.
अगर धूप बहु जनु अंधियारी, उड़इ अबीर मनहु अरुनारी
मंदिर मनि समूह जनु तारा, नृप गृह कलस सो इंदु उदारा.
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी, जनु खग मुखर समय अनुमानी
कौतुक देखि पतंग भुलाना, एक मास तेइं जात न जाना
मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ,
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ.
यह रहस्य काहू नहिं जाना, दिनमनि चले करत गुनगाना.
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा, चले भवन बरनत निज भागा.

—बाल कांड, पृष्ठ 195-96

अच्छा हुआ जो उस जमाने में घड़ियां नहीं थीं. यदि आजकल ऐसा हो जाए तो लोग 'बोर' होने की सीमा पार कर लें. अयोध्या में उपस्थित लोग तो उत्सव में मग्न रहे, पर अयोध्या से बाहर के लोगों ने इतना बड़ा दिन कैसे बिताया होगा? यह कल्पना इस मान्यता पर आधारित है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है. सूर्य उदय होने से ही दिन निकलता है, इसी लिए सूर्य का नाम 'दिनकर' है. सूर्य जब तक छिपे नहीं, तब तक रात कैसे हो? आज जब कि पुरानी मान्यता गलत सिद्ध हो चुकी है और धरती के घूमने से दिन-रात होने का सिद्धांत सर्वमान्य हो चुका है, तब इस प्रसंग को कैसे युक्तियुक्त ठहराया जा सकता है?

विश्वामित्रजी अपने यज्ञ की रक्षा के लिए रामलक्ष्मण को ले आए. यज्ञ आरंभ करते ही मारीच सहायकों सहित विघ्न डालने आया. राम ने बिना फल का बाण मार कर उसे सौ योजन दूर सागर पार फेंक दिया:

आयुध सर्व समर्पित कै प्रभु निज आश्रम आनि,
कदमूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि.
प्रात कहा मुनि सन रघुराई, निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई.
होम करन लागे मुनि भारी, आपु रहे मख कै रखवारी.
सुनि मारीच निसाचर कोही, ले सहाय धावा मुनिद्रोही.
बिनु फर राम बान तेहि मारा, सत योजन गा सागर पारा.

—बाल कांड, पृष्ठ 207

राम ने ताड़का को क्यों मार डाला और मारीच को क्यों दूर फेंक दिया, इस विषय पर भी शंका हो सकती है, पर सौ योजन की दूरी तो किसी प्रकार भी समझ में आने वाली नहीं है. वाल्मीकि 'रामायण' के अनुसार विश्वामित्र का आश्रम बिहार में था. यहां से वह राम को ले कर जनकपुर के धनुषयज्ञ में गए थे. वहां से फेंका हुआ मारीच सागर के पार अर्थात लंका मे जा कर गिरा. पर यह दूरी तो सौ योजन नहीं है. तुलसी के अनुसार सौ योजन तो भारत और लंका के बीच का समुद्र ही था.

जो लांघइ सत जोजन सागर, करइ सो राम काज मति आगर.

—किष्किंधा कांड, पृष्ठ 681

तुलसी बाबा को अपनी नाप का स्वयं ही ध्यान नहीं रहा. पहले तो 'सत जोजन गा सागर पारा' का अर्थ 'वह सौ योजन दूर सागर के तट पर गिरा' ऐसा लगाया ही नहीं जा सकता. दूसरे बिहार से रामेश्वरम वाला सागर तट सौ योजन (300 मील) से बहुत अधिक है.

दशरथ को 75 और 100 वर्ष के बीच में पुत्र जन्मे थे. उन्हे 50 वर्ष पश्चात वानप्रस्थ और 75 वर्ष पश्चात संन्यास लेना चाहिए था. पर वंश चलने के विषय में निश्चिंत हुए बिना वैराग्य कैसे लें? जब तक शरीर में दम रहा, तब तक स्वयं प्रयत्न करते रहे. शरीर शिथिल होने पर मुनियों की औषधि का सहारा

लिया. तुलसी ने चौथेपन वाली बात स्वयं स्वीकार की है:

चौथेपन पायऊं सुत चारी, विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी.

—बाल कांड, पृष्ठ 205

75 वर्ष की अवस्था होतेहोते दशरथजी के सभी बाल सफेद हो जाने चाहिए. पर तुलसी ने उस समय दशरथ के कुछ बाल सफेद बताए हैं, जब राम के विवाह को कई वर्ष बीत गए थे. एक बार दशरथजी मुकुट ठीक करने के लिए शीशा देख रहे थे, तभी उन्हें अपने ये श्वेत केश दीखे:

राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा, वदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा.
श्रवन समीप भए सित केसा, मनहु जरठपन अस उपदेसा
नृप जुवराज राम कहुं देहू, जीवन जनमु लाहु किन लेहू.

—अयोध्या कांड, पृष्ठ 337

पता नहीं, दशरथजी कौन सा तेल लगाते थे जो उन के बाल 100 वर्ष की अवस्था में भी काले बने रहे. फिर रामलीला वाले दशरथ के सभी बाल सफेद किस आधार पर दिखाते हैं?

दशरथ के मरने पर तुरंत उन का दाह नहीं हो सका. भरत के आने तक उन का शव सुरक्षित रखना था. नाव में तेल भर कर उस में शव रखा गया.

तैल नाव भरि नृप तनु राखा, दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा.
धावहु वेगि भरत पहं जाहू, नृप सुधि कतहुं कहहु जनि काहू.

अयोध्या कांड, पृष्ठ 458

यह तो ठीक है कि उस समय के लोग शव सुरक्षित रखने का कोई वैज्ञानिक साधन नहीं जानते थे, इसलिए बेचारों ने शव को तेल में डुबाना निश्चित किया. पर क्या उस समय कोई ऐसा बरतन प्रचलित नहीं था जिस में शव डुबाने लायक तेल भर जाता? क्या उन्हें राजा दशरथ का शव रखने को नाव ही रह गई थी?

सीता को खोजने वाले वानर निराश हो कर पछतावा कर रहे थे. उन की आवाज सुन कर संपाती गुफा से बाहर निकला और बंदरों को देख कर बोला, 'आज सब को खा जाऊंगा.' बंदर यह बात सुन कर डर गए:

हम सीता कै सुधि लीन्हें बिना, नहिं जैहैं जुबराज प्रवीना.
अस कहि लवन सिंधु तट जाई, बैठे कपि सब दर्भ डसाई.
एहि विधि कथा कहत बहु भाती, गिरि कंदरा सुनी संपाती.
बाहेर होई देखि बहु कीसा, मोहि अहार दीन्ह जगदीसा.
कबहु न मिल भरि उदर अहारा, आजु दीन्ह विधि एकहिं बारा.
डरपे गीध वचन सुनि काना, अब भा मरन सत्य हम जाना

—किष्किंधा कांड, पृष्ठ, 678-79

गीध की बात सुन कर वानरों के डरने की बात समझ से बाहर है. वानरों को इतना भी ज्ञान नहीं था कि गीध मरे पशु को खाता है, जीवित को नहीं. ये वानर साधारण बानर नहीं थे. इन में हनुमान, अंगद, नील, नल, जांबवंत

आदि ज्ञान व बलसंपन्न वानर सम्मिलित थे. फिर गीध भी बिना पंखों का. उस के पंख तो पहले ही जल गए थे.

माना कि संपाती साधारण गीध नहीं था. पर क्या वह सब वंदरों को एक साथ खा सकता था? जो हनुमान सुरसा के सामने बत्तीस योजन के बन गए थे और सीता के सामने 'कनक भूधराकार सरीरा' हो गए थे, उन्होंने संपाती के सामने कोई कमाल दिखाने का निश्चय क्यों नहीं किया? क्या हनुमानजी का जादू औरतों के ही सामने चलता था? वायुवेग से चलने वाले वानरों का बिना पंख के गीध से डर जाना और अपना मरण निश्चित समझ लेना कम आश्चर्य की बात नहीं है

हनुमान सौ योजन का सागर लांघने को अनेक पहाड़ों पर उचकते रहे. वह जिस पर्वत पर पैर रखते थे, वही तुरंत पाताल चला जाता था. पता नहीं, वेचारे किस प्रकार इतना लंवा कूद सके. मार्ग में मिल गई सुरसा. उस ने उन्हें खाना चाहा. वह मुंह बढ़ाने लगी और हनुमानजी भी बढ़ने लगे. उस ने अपना मुंह सौ योजन का कर लिया·

जसजस सुरसा बदन बढावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा
सत जोजन तेहि आनन कीन्हा... —सुंदर कांड, पृष्ठ 687

तुलसीदासजी के ही वचनानुसार भारत और लंका के बीच का सागर सौ योजन था. इस किनारे पर हनुमानजी के साथी वानर बैठे थे और उस पार थी लंका.

सौ योजन चौड़े मुख वाली सुरसा के पैर कम से कम चार सौ योजन तो रहे ही होंगे. कहां खड़ी हुई होगी सुरसा? सौ योजन मुख बढाने से पहले हनुमानजी का विस्तार हिसाब से पचास योजन होना चाहिए. वह भी कहीं खड़े हुए होंगे. इतना ही नहीं, सागर में मैनाक पर्वत भी था जिसे छू कर हनुमानजी आए थे. आगे एक छायाग्राहिणी निशाचरी भी उन की प्रतीक्षा कर रही थी.

एक निवेदन और है. क्या हनुमानजी किसी सड़क पर चल रहे थे जो सब से रुकरुक कर मुलाकात करते जाते थे? क्या छलांग लगा कर बीच हवा में रुक कर कोई काम कर सकना संभव है?

कुंभकर्ण आखिर कितना विशाल था! तुलसी बाबा ने उस का कोई नाप नहीं दिया. यदि वह देते तो सुविधा रहती. वह करोड़ों वानरों को एक बार मे खा लेता था. करोड़ों को अपने शरीर से रगड़ कर समाप्त कर देता था और करोड़ों को धूल में मिला देता था.

कुंभकरन रन रंग विरुद्धा, सनमुख चला काल जनु क्रुद्धा.
कोटिकोटि कपि धरिधरि खाई, जनु टीडीं दल गुहा समाई.
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा, कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा.
—लंका कांड, पृष्ठ 800

तो कुंभकर्ण और वानरों के शरीर का अनुपात पर्वत और टिड्डी के समान

था. करोड़ों बंदर हाथों में पकड़ कर एक साथ मुंह में डालना किस प्रकार संभव हो सका, इसे तुलसी बाबा ही जानें. कुंभकर्ण मुंह फैला कर उन्हें निगल लेता होगा, पर शरीर से रगड़ कर मारने और धूल में मिलाने के लिए तो उन्हें हाथ से पकड़ना ही पड़ेगा. इसे जाने भी दें तो अगली बात एकदम लाजवाब है

मुख नासा स्रवननि की बाटा, निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा

तो कुंभकर्ण रीछबंदरों को बिना चबाए ही निगल लेता था. क्या इस प्रकार की क्रिया के साथ 'खाई' शब्द प्रयोग हो सकता है? उस के खाए हुए बंदर मुंह, नाक और कानों की राह निकल भागते थे. नाक से निकलना तो संभव है क्यों कि मुख और नाक का रास्ता एक होता है, पर मुख और कान की राह रीछ, बंदरों का निकलना अपनी समझ में नहीं आता. मुंह से तो वह खा ही रहा था. यदि खा चुका था तो मुंह बंद कर सकता था. क्या उस ने वानर, रीछों को बाहर निकलने देने को ही खाया था? कानों और मुंह का स्रोत एक होता है क्या? मुंह का खाया कान की राह निकल सकता है? इन बातों की ओर तुलसी बाबा का ध्यान किस लिए जाता? उन्हें तो एक अजूबा खड़ा करना था.

आप ने सिर वाले धड़ों को तो बोलते देखा या सुना होगा! आइए, बिना सिर वाले ऐसे धड़ों के विषय में पढ़िए जो हल्ला मचाते थे.

रुंड प्रचंड मुंड बिनु धावहिं धरु धरु मारु मारु धुनि गावहिं.

—लंका कांड, पृष्ठ 801

पता नहीं, सिर कट जाने पर धड़ 'पकड़ो, मारो' का गाना बिना मुंह के कैसे गाते होंगे? संभव है, रावण ने या विधाता ने उन के धड़ में कोई ऐसा अतिरिक्त अंग लगा दिया हो जिस के द्वारा बोला या गाया जा सके.

रामरावण युद्ध में रावण रथ पर सवार हो कर लड़ रहा था और राम पैदल थे. यह देख कर विभीषण बड़ा दुखी हुआ. राम ने उस की बात सुन कर जो कहा, उसे तुलसी के शब्दों में ही देखिए

रावन रथी बिरथ रघुबीरा, देखि बिभीषन भयेउ अधीरा.
अधिक प्रीति मन भा संदेहा, बंदि चरन कह सहित सनेहा.
नाथ न रथ नहिं तन पदत्राना, केहि बिधि जितब बीर बलवाना.
सुनहु सखा कह कृपा निधाना, जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना.
सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका.
बल बिबेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे.
सखा धर्ममय अस रथ जाकें, जीतन कहं न कतहुं रिपु ताकें

—लंका कांड, पृष्ठ 814-15

इस प्रकार का रथ किसी साधुसंन्यासी को तो अजातशत्रु बना सकता है, पर रणभूमि में विजय नहीं दिला सकता. पर मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने उक्त बात कही है तो ठीक ही होगी. राम उस रघुवंश में उत्पन्न हुए थे जो सत्य भाषण के लिए प्रसिद्ध था. यदि राम अपने बताए हुए आदर्शवादी रथ के द्वारा

ही रावण को जीत कर दिखाते तो एक बात थी. पर कुछ ही देर बाद वह इंद्र द्वारा भेजे हुए रथ पर सहर्ष चढ़ गए.

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा, उपजा उर अति क्षोभ विसेषा.
सुरपति निज रथ तुरत पठावा, हरष सहित मातलि लै आवा.
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा, हरषि चढे कोसलपुर भूपा.

—लंका कांड, पृष्ठ 825

रावण के शीश और मुख राम ने बारबार काटे, पर वह दोबारातिबारा निकल आए. राम ने विभीषण की ओर देखा तो उस ने इस का कारण बता दिया. फिर राम को रावण का वध करने में देर नहीं लगी:

काटत बढहिं सीस अधिकाई, जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई.
मरइ न रिपु श्रम भयउ विशेषा, राम विभीषन तन तब देखा.
नाभिकुंड पियूष बस याकें, नाथ जियत रावन बलु ताकें.
सुनत विभीषन वचन कृपाला, हरषि गहे कर बान कराला.
खैंचि सरासन श्रवन लगि, छाड़े सर इकतीस.
रघुनायक सायक चले मानहु काल फणीस.
सायक एक नाभि सर सोषा, अपर लगे भुज सिर करि रोषा.
लै सिर बाहु चले नाराचा, सिरभुजहीन रुंड महि नाचा.

—लंका कांड, पृष्ठ 841-42

तो रावण की नाभि कोई खिड़की या शीशी थी जिस में अमृत कंगारू के बच्चे के समान रखा था. अमृत पीने वाला व्यक्ति मरता नहीं है. रावण ने अमृत न पी कर नाभि में क्यों रख लिया था? फिर क्या नाभि में रखा अमृत अमर नहीं बना सकता? अमृत भी क्या कोई 'सप्लाई स्टेशन' था जिस के नष्ट होते ही बिजली से होने वाले सब काम बंद हो गए? अच्छा होता कि तुलसी बाबा रावण की नाभि में अमृत की कल्पना न करते. पर करते कैसे नहीं? बिना इस के विचित्रता कैसे उत्पन्न होती?

ऊपर बिना सिर के धड़ द्वारा बोलने वाले राक्षसों वाली बात विस्तार से कह चुके हैं. रावण राक्षसों का राजा था, तो फिर उस का धड़ ही बिना बोले क्यों रहता? राम के बाणों ने रावण के सिर और हाथ तो मंदोदरी के महल में पहुंचा दिए थे. रणभूमि में धड़ गरज उठा :-

लै सिर बाहु चले नाराचा, सिर भुज हीन रुंड महि नाचा.
धरनि धंसइ धर धाव प्रचंडा, तब सर हति प्रभु कृत दुइ खंडा.
गर्जेउ मरत घोर रव भारी, कहा 'रामु रन हतौं प्रचारी.'
मंदोदरि आगे भुज सीसा, धरि सर चले जहां जगदीसा.

—लंका कांड, पृष्ठ 842

रावण का धड़ वैसे नहीं बोला. राम ने उस के दो टुकड़े कर दिए तब उस ने कहा, "राम कहां हैं? मैं ललकार कर उन्हें लड़ाई में मारूंगा."

इस बात को तो तुलसी बाबा ही जानते होंगे कि धड़ दो टुकड़े होने पर इतने स्पष्ट शब्द किस अंग से बोल सका?

राम के चमत्कारी और भयंकर बाण रावण के शीशों और भुजाओं को मंदोदरी के सामने रख कर चले आए. मंदोदरी रावण को मरा जान कर विलाप करने लगी. अन्य पत्नियां भी साथ थीं.

मदोदरि आगे भुज सीसा, धरि सर चले जहा जगदीसा.
पति गति देखत मदोदरी, मुरुछित विकल धरनि खसि परी
जुवति वृ द रोवत उठि धाई, तेहि उठाइ रावन पह आई.
पति गति देखि ते करहिं पुकारा, छूटे वचनहिं वपुप सभारा
उर ताडना करहिं विधि नाना, रोवत करहिं प्रताप वखाना
तव वम विधि प्रपच सव नाचा, सभय दिसिप नित नावहिं माथा
अब तव सिर भुज जवुक खाही, राम विमुख यह अनुचित नाही
—लका काड, पृष्ठ 842-44

रावण के हाथों और सिरों को गीदड कहां खा रहे थे? वे तो उन्हीं सब के सामने पडे थे. क्या रावण की पत्नियों ने इस विशेष अवसर के लिए महल मे गीदड़ पाल रखे थे?

राक्षसो के विरुद्ध हुई लडाई मे राम की सेना के अनेक महत्वपूर्ण रीछ, बंदर मारे गए थे. राम ने उन्हें जिलाने के लिए इंद्र से कहा. इंद्र ने आकाश से अमृत की वर्षा की, जिस से भालू, कपि जीवित हो गए. उन के समीप ही पडे राक्षसों पर अमृत वर्षा का कोई प्रभाव नहीं हुआ.

सुनु सुरपति कपि भालू हमारे, परे भूमि निसिचरन्हि जे मारे.
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना, सकल जिआउ सुरेस सुजाना
सुधा वरसि कपि भालु जिआए, हरपि उठे सव प्रभु पह आए.
सुधा वृष्टि भै दुहु दल ऊपर, जिए भालु कपि नहिं रजनीचर
—लका काड, पृष्ठ 856

तो अमृत भी पक्षपात करता है. अमृत तो एक अचूक औपधि है. क्या वही दवा कुछ मरीजो को अच्छा कर देती है और दूसरे जाति के लोगों पर कोई प्रभाव नहीं करती?

14 वर्ष बीतने को थे. राम ने अपने पहुंचने से पहले हनुमान से अयोध्या में भरत के पास अपने आने का समाचार भिजवाया. भरत ने हनुमान को नहीं पहचाना.

राम विरह सागर मह भरत मगन मन होत,
विप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत.
देखत हनुमान अति हरपेउ, पुलक गात लोचन जल बरसेउ.
मन मह वहुत भाति सुख मानी, वोलेउ स्रवन सुधा सम वानी.
जासु विरह सोचहु दिनराती, रटहु निरतर गुनगन पाती

रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता,आयेउ कुसल देवमुनि त्राता.
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत,सीता अनुज सहित प्रभु आवत.
सुनत वचन विसरे सव दूखा, तृपावत जिमि पाइ पिंयूषा.
को तुम्ह तात कहा तें आए,मोहि परम प्रिय वचन सुनाए

—उत्तर काड, पृष्ठ 869-70

भरत ने हनुमान को क्यों नहीं पहचाना? एक मास से कुछ कम पहले ही दोनों की असाधारण भेंट हो चुकी थी. लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने वाली रात हनुमान अयोध्या पर से लौट रहे थे. भरत ने पहाड़ ले जाते हुए हनुमान को राक्षस समझ कर बाण मारा. बाद में उन्हें राम का सेवक जान कर भरत बहुत दुखी हुए. इस घटना के बाद युद्ध 17 दिन चला था. क्या इतने कम समय मे भरतजी उस व्यक्ति को भूल गए?

भरत राम के अनन्य भक्त थे. रामदूत की सहायता करने के बजाय उसे बाण मार दिया. यह घटना तो भरत को जीवन भर सदा स्मरण रहनी चाहिए थी:

गहि गिरिं निसि नभ धावत भयऊ, अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ
देखा भरत विसाल अति निसिचर मन अनुमानि,
विनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि.
परेउ मुरछि महि लागत सायक, सुमिरत रामराम रघुनायक.
सुनि प्रिय वचन भरत तव धाए, कपि समीप अति आतुर आए
विकल विलोकि कीस उर लावा, जागत नहिं वहु भांति जगावा.

—लका कांड, पृष्ठ 792-93

वालक राम ने कागभुशुंडि को पकड़ने के लिए हाथ फैलाया. कौआजी महाराज सात आवरण पार कर गए. पर उस हाथ ने पीछा नहीं छोड़ा. आगे की कथा तुलसी के शब्दों में सुनिए.

जानु पानि धाए मोहि धरना, स्यामल गात अरुन कर चरना.
तव मैं भागि चलेउ उरगारी, राम गहन कह भुजा पसारी
जिमिजिमि दूरी उडाउं अकासा, तहं हरि भुज देखेउं निज पासा
ब्रह्मलोक लगि गयउं मैं, चितयउ पाछ उडात.
जुग अंगुल कर वीच सव राम भुजहि मोहि तात
सप्तावरन भेद करि, जहां लगें गति मोरि.
गयउ तहा प्रभु भुज निरखि व्याकुल भयउं वहोरि.
मूदेउ नयन त्रसित जव भयेऊ, पुनि चितवत कोसलपुर गयेऊ.

—उत्तर काड, पृष्ठ 941-42

राम ने हाथ बढ़ा कर काग को पकड़ना चाहा और काग के उड़ने के साथ ही उस की लंबाई बढ़ाते गए. इस संबंध में हम कुछ कहना नहीं चाहते. राम ईश्वर थे और ईश्वर सब कुछ कर सकता है. वह चाहे कौआ पकड़े चाहे

कौयल. वैसे जिन लोगो ने उस दृश्य को देखा होगा, वे तो अवश्य चक्कर पड़ गए होंगे. आजकल राकेटो से निकले धुए की क्या रेखा बनती है जो राम का लबा हाथ रेखा जैसा लमा होगा? पर आगे जो हुआ, वह बात बुद्धि मे नहीं बैठती :

मोहि बिलोकि रामु मुसुकाहीं, बिहगन तुरत गयउ मुख माहीं.
उदर माझ सुनु अडज राया, देखेउ बहु ब्रह्माड निकाया
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका, रचना अधिक एक तें एका
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा, अगनित उडुगन रवि रजनीसा
अगनित लोकपाल जमकाला, अगनित भूधरि भूमि बिसाला
एकएक ब्रह्माड महु रहउ, बरस सत एक
एहि बिधि देखत फिरउ मैं, अड कटाह अनेक,
भ्रमत मोहि ब्रह्माड अनेका, बीते मनहु कल्प सत एका.
फिरतफिरत निज आश्रम आयऊ, तह पुनि रहि कछु काल गवायउ.
निज प्रभु जन्म अवध सुनि आयउ, निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउ
उभय घरी महु मैं सब देखा, भयउ भ्रमित मन मोह बिसेषा.
देखि कृपाल बिकल मोहि बिहसे तब रघुबीर,
बिहसत ही मुख बाहेर आयऊ सुनु मतिधीर

—उत्तर काड, पृष्ठ 942-44

राम के पेट मे कौआ घुस गया एकएक ब्रह्मांड मे सौसौ वर्ष घूमता रहा वहा बेचारे ने न जाने क्याक्या देखा वही अपना आश्रम देख कर उस मे रहने लगा राम का जन्म सुन कर अयोध्या आ गया. वहा उसे देख कर राम पुनः हंसे. तब बेचारा बाहर निकल पाया. वह अपने को बाहर समझ रहा था, पर था राम के मुंह मे वास्तव मे दो घडी का समय बीता था, पर कौआजी को लगा सौ कल्प बीत गए.

कैसी भूलभूलैया है! जादूगर लडकी को बंद करता है टोकरी मे और वह थोडी देर बाद बाहर से आती मालूम होती है

राम का कमाल इस से कई गुना जोरदार है क्या राम राजमहल मे लावारिस घूमते रहते थे जो न उन्हें कोई कौआ पकडने से रोकता था और न मुह मे घुसनेनिकलने वाले कौओ को ही मारता था?

औचित्य पर कौन ध्यान दे! भक्त को तो अपने भगवान की लीला की अलौकिकता सिद्ध करनी है बिना ऐसा किए सुनने वालो पर प्रभाव भी नहीं पडता।

राम अपनी लीला के विषय मे किसी का भ्रम नहीं देख सकते. कौशल्या एक बार राम को भगवान न समझ कर बालक समझने लगीं तो राम को विराट रूप धारण कर माता की बुद्धि ठीक करनी पड़ी बडेबूढो की बुद्धि कुछ कमजोर पड जाती है. राम ने माता के सामने अपना चतुर्भुज रूप रख कर अपनी

ईश्वरता सिद्ध कर दी थी:

भये प्रकट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी,
लोचन अभिरामा तन घन स्यामा निज आयुध भुज चारी.
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा,
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूपा

—बाल कांड, पृष्ठ 992-993

यह बात होते हुए भी एक दिन माता कौशल्या को आखिर भ्रम हो ही गया.

इहाउहा दुइ बालक देखा, मति भ्रम मोर कि आन बिसेषा
देखि राम जननी अकुलानी, प्रभु हंसि दीन्ह मधुर मुसुकानी.
देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड,
रोमरोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड.
तनु पुलकित मुख बचन न आवा, नयन मूदि चरननि सिरु नावा.
बिस्मयवंत देखि महतारी, भए बहुरि सिसु रूप खरारी.

—बाल काड, पृष्ठ 200-201

ऊपर के प्रश्नचिन्हों का भक्त लोग क्या उत्तर देंगे, इसे तो हम नहीं बता सकते. हमारे विचार से तो तुलसी ने मानस में इन का समावेश किया होगा. फैशन का पालन तो करना ही पड़ता है

(लेख में उद्धृत उद्धरणों की पृष्ठ संख्याएं गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित साढ़े तीन रुपए मूल्य वाले अर्थसहित 'रामचरितमानस' के दशम संस्करण से ली गई हैं—लेखक.) ●

तुलसी साहित्य में साधुसंत

तुलसी साहित्य का अध्ययन करने वालो का ध्यान एक बात पर गया होगा. उस मे ससार से विरक्त महात्माओ के पर्यायवाची शब्दो अर्थात साधु, सत, ऋषि, मुनि, वैरागी, जोगी, सिद्ध आदि की भरमार है. तुलसी का पूरा साहित्य यदि मूल रूप मे प्रकाशित किया जाए तो डिमाई आकार के 800 पृष्ठो मे आ सकता है पूरे तुलसी साहित्य मे साधुसत एवं उस के वाचक शब्दों का 1832 बार प्रयोग हुआ है अनुपात निकालने पर एक पृष्ठ पर इस प्रकार के शब्द दो से अधिक आते है

तुलसी साहित्य मे साधुसत एव उन के पर्यायवाची शब्दों के होने के समर्थन मे अनेक बातें कही जा सकती हैं एक तो 'रामचरितमानस' धार्मिक ग्रंथ है. धार्मिक ग्रंथो मे साधुसतों का वर्णन होना ही चाहिए. दूसरे, तुलसी ने राम का कथानक ले कर कविता लिखी है राम के जीवन मे साधुबाबाओं का अधिक सपर्क रहा है

ये बातें आंशिक रूप मे ठीक हो सकती हैं, पर इन शब्दो के प्रयोग की भरमार का वास्तविक कारण कुछ और ही है. तुलसी स्वयं साधुसंत थे. अपनी कविता को साधुसतमय बना कर उन्होने आत्मप्रचार किया है तुलसी ने सतों को एक प्रकार से धर्म और ईश्वर का दलाल बना कर अपनी कविता मे चित्रित किया है यह हो सकता है कि तुलसी ने ऐसा जानबूझ कर न किया हो, उन के अंतर्मन मे अपने वर्ग के प्रति पक्षपात समाया हो

तुलसी के आत्मप्रचार की बात हम निराधार नहीं कह रहे है तुलसी ने साधुसत वाचक लगभग पचीस शब्दो का प्रयोग किया है, पर सब से ज्यादा 'साधुसत' शब्दो के साथ ही हुआ है. इस प्रकार के शब्दो का विवरण नीचे दिया जा रहा है.

'रामचरितमानस' मुनि 635, ऋषि 58, साधक आठ, सिद्ध 25, जोगी 23, तापस 52, सन्यासी तीन, ब्रह्मचारी एक, विरागी पाच, स्वामी पांच, गोसाईं

12, परमार्थ वादी दो, उदासी एव उदासीन सात, वैखानस तीन, जती चार, बटु छ, वनवासी दो विमुक्त 1, —८9।

'रामलला नहछू'. मुनि दो सिद्ध एक—3,

'पार्वतीमंगल': मुनि 13, ऋषि दो—15

'जानकीमंगल' मुनि 25, ऋषि 3—28

'रामशलाका प्रश्नावली' मुनि 19, ऋषि दो, सिद्ध पाच, तापस दो, जती दो, साधक तीन—33

'दोहावली' मुनि आठ, सिद्ध दो, तापस एक, जती एक, जोगी एक—13

'कवितावली' मुनि 25, जोगी छ, तापस पांच, उदासी एक, विरागी दो, सिद्ध आठ, जती एक, साधक दो, ऋषि दो—51

'हनुमान बाहुक,' मुनि दो, सिद्ध दो—4

'गीतावली' मुनि 117, ऋषि 27, सिद्ध 11, तापस दस, साधक 2, जोगी तीन, वनवासी एक, बटु एक, जती एक—173

'कृष्ण गीतावली' मुनि सात, सिद्ध एक, जोगी तीन—11

'विनय पत्रिका' मुनि 61, ऋषि पाच, सिद्ध 19, ब्रह्मचारी तीन, जोगी चार, तापस तीन, विरागी एक, साधक तीन—99

ऊपर हम ने तुलसी साहित्य में साधुसत शब्दो के अतिरिक्त शब्दों का विवरण दिया है साधुसंत शब्दो का विवरण इस प्रकार है

साधु 'रामचरितमानस' 61, 'वैराग्य संदीपनी' दो, बरवै रामायण दो, 'जानकीमगल' दो, 'रामशलाका प्रश्नावली' छः, 'दोहावली' नौ, 'कवितावली' 15, 'गीतावली' 18, 'कृष्ण गीतावली' एक, 'विनय पत्रिका' 29 —145

सत 'रामचरित मानस, 100, 'वैराग्य संदीपनी' 21, 'जानकीमगल,' एक, 'दोहावली,' छ, 'गीतावली' पांच, 'विनयपत्रिका' 16, 'कृष्ण गीतावली' एक—50

कोई और चर्चा चलाने से पहले हम एक बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं, जो लोग यह कहते है कि तुलसी साहित्य में विरक्तवाचक शब्द इसलिए हैं क्योकि वे रामकथा पर आधारित हैं और राम का संपर्क साधुसंतो से अधिक रहा, उन्हें 'पार्वतीमंगल', 'दोहावली', 'हनुमान बाहुक' 'कृष्ण गीतावली' और 'विनय पत्रिका' के आकड़ो पर ध्यान देना चाहिए. स्पष्ट है कि इन पुस्तको मे रामकथा नहीं है, पर विस्तार की दृष्टि मे इन मे आने वाले विरक्तवाचक शब्द कम नही हैं. यही बात 'रामचरित मानस' के संबंध मे भी कही जा सकती है. 'बाल-कांड' और 'अयोध्या कांड' मे इस प्रकार के शब्दो का बाहुल्य समझ मे आता है क्योकि इन के कथानक से ऋषिमुनियो का संबंध है. शेष काडो के विषय मे हम तुलसी के पक्षपात को ही कारण मानेंगे. पाठको की सुविधा के लिए हम 'रामचरित मानस' के कांडों का अलगअलग विवरण दे रहे हैं

बाल कांड मुनि 291, ऋषि 28, साधक 3, सिद्ध 11, जोगी 9, तापस 19 संन्यासी एक, ब्रह्मचारी एक, विरागी चार, स्वामी तीन, गोसाईं तीन, परमार्थ-

वादी एक, उदासीन एक—376

अयोध्या कांड मुनि 173, ऋषि 11, साधक तीन, सिद्ध छ, जोगी पाच, तापस 17, स्वामी एक, उदासी पाच, वैखानस तीन जती दो, वटु चार, परमार्थ-वादी एक, वनवासी दो, गोसाई सात—240

अरण्य कांड: मुनि 80, ऋषि छ, जोगी चार, जती दो, गोसाई एक, विरागी एक—94

किष्किधा काड मुनि 11, वटु दो, साधक एक, सिद्ध एक, तापस दो—17

सुदर काड मुनि छ., ऋषि चार, तापस दो—12

लका काड मुनि 27, जोगी दो, तापस पाच, सिद्ध चार, ऋषि दो—40

उत्तर कांड मुनि 97, ऋषि सात, सयासी दो, सिद्ध तीन, तापस छः, साधक एक, जोगी एक, गोसाई एक, विमुक्त एक, उदासीन एक—120

ऊपर के विवरणों मे यह बात स्पष्ट है कि सब से अधिक प्रयोग मुनि शब्द का हुआ है पूरे तुलसी साहित्य मे यह शब्द 964 वार आया है पर इस शब्द के साथ तुलसी का उतना मोह नहीं है, जितना साधु और संत शब्दो के साथ है. पूरे तुलसी साहित्य मे साधु शब्द 145 वार तथा सत शब्द 150 वार आया है. इन शब्दो की तुलना मे मुनि प्रयोग अधिक है यदि मुनि के साथ इस के पर्यायवाची शब्द ऋषि की सख्या 99 भी जोड ले तो यह संख्या और अधिक हो जाती है

तुलसी साहित्य मे किसी रिक्त वाचक शब्द का प्रयोग कथानक के कारण हुआ है तो वह है—ऋषि, मुनि शब्द, ये शब्द अधिकाश स्थानों मे प्रसगवश आए हैं और व्यक्ति विशेष के नामो के स्थान पर प्रयोग किए गए हैं उदाहरण के रूप मे नीचे के स्थल देखिए

मुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी, हृदय हरष माना मुनि ज्ञानी,
तब वसिष्ठ बहुविधि समुझावा, नृप संदेह नास कहँ पावा
अति आदर दोउ तनय बोलाए, हृदय लाइ बहु भाति सिखाए,
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ, तुम्ह मुनि पिता आन नही कोऊ.

सौंपे भूप रिषिहि सुत, बहुविधि देइ असीस,
जननी भवन गए प्रभु, चले नाइ पद सीस
पुरुष सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि भय हरन,
कृपासिंधु मति धीर, अखिल विस्व कारन करन

अरुन नयन उर बाहु बिसाला, नील जलज तनु स्याम तमाला.
कटि पट पीत कसें बर भाथा, रुचिर चाप सायक दुहु हाथा.
स्याम गौर सुदर दोऊ भाई, बिस्वामित्र महानिधि पाई
प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना, मोहि निति पिता तजेउ भगवाना
चले जात मुनि दीन्ह दिखाई, सुनि ताड़का क्रोध करि धाई
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा

तव रिपि निज नाथहिं जिय चीन्ही, विद्यानिधि कहू विधा दीन्ही.

—रामचरित मानस, वाल काड, पृष्ठ 206-207

कहहिं भरतु मुनि कहा सो कीन्हे, फलु जग जीवन अभिमत दीन्हे.
कानन करउ जनम भरि वासू, एहि तें अधिक न मोर सुपासू.

अतरजामी रामसिय, तुम्ह सर्वज्ञ सुजान,
जो फुर कहहु त नाथ निज, कीजिए वचन प्रमान.

भरत वचन मुनि देखि सनेहू, सभा सहित मुनि भए विदेहू,
भरत महामहिमा जल रासी, मुनि मति ठाढि तीर अवला सी
गा चह पार जतन वहु हेरा, पावति नाव न वोहितु वेरा
और करिहि को भरतु वडाई, सरसी सीपि कि सिंधु समाई.
भरत मुनिहि मन भीतर भाए, सहित समाज राम पहिं आए.
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु, वैठे सव सुनि मुनि अनुसासनु.
वोले मुनिवर वचन विचारी, देश काल अवसर अनुसारी.

—राम चरित मानस, अयोध्या काड, पृष्ठ 538

पहले प्रसग मे ऋषिमुनि शव्द विश्वामित्र के लिए एवं दूसरे मे वशिष्ठ के लिए आए हैं. पूरे तुलसी साहित्य मे कठिनता से दर्जन भर ऐसे स्थल मिलेंगे, जहां इन शव्दो को आदर, महानता, त्याग आदि दिखाने के लिए प्रयोग किया गया है कुछ स्थल नीचे प्रस्तुत हैं.

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई, तेहि पग चलत सुगम मोहि भाई

पृष्ठ 45

सुर सुदरी करहिं कल गाना, सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना.

पृष्ठ 89

तुम्ह जो कहा राम कोउ आना, जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना

पृष्ठ 138

सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा, गावहिं मुनि पुरान वुध वेदा

पृष्ठ 133

किंकिनि ललाम लगाय ललित, विलोकि सुर नर मुनि ठगे

पृष्ठ 391

तात तीनि अति प्रवल खल, काम, क्रोध अरु लोभ,
मुनि विग्यान धाम मन .. —रामचरित मानस, पृष्ठ 643

मुनि का अधिकाश स्थलो में प्रयोग मन मोहने के प्रसंग में हुआ है. कहा गया है कि अमुक वस्तु इतनी सुंदर थी कि मुनियों का मन भी मोह लेती थी. इस प्रकार के स्थल मुनि शव्द का गौरव प्रदर्शित करने वाले नहीं है. तुलसी इस स्थान पर किसी भी विरक्तवाचक शव्द का प्रयोग कर सकते थे. मन मोहने के साथ मुनि शव्द का प्रयोग करने से अनुप्रास अलंकार वन जाता है. इसी लिए तुलसी ने इस शव्द का प्रयोग किया है, जैसे:

—पृष्ठ, 277

जिन्हहिं विलोकत मुनि मन मोहैं —पृष्ठ, 417
छवि अखव वटु मुनि मन मोहा —पृष्ठ, 316
मुनि महेस मन मानस हसा —पृष्ठ, 137
मुनि मन अगम गाधि सुत करनी
मडपु विलोकिविचित्र रचना, —पृष्ठ, 295
रुचिरता मुनिमन हरे. —रामचरितमानस

ऋषिमुनि शब्दों मे मात्राओं की समानता है और दोनो का अर्थ भी एक ही है. तुलसी इन स्थानो पर ऋषि शब्द का प्रयोग कर सकते थे. तुलसी ने अनेक स्थानों पर एक ही व्यक्ति के लिए ऋषि और मुनि दोनों शब्दों का प्रयोग किया है:

एक वार त्रेता जुग माही, शंभु गए कुभज ऋषि पाहीं.
सग सती जग जननि भवानी, पूजे रिपि अखिलेश्वर जानी.
रामकथा मुनिवर्य वखानी, सुनी महेस परम सुख मानी,
ऋषि पूछी हरि भगति सुहाई, कही संभु अधिकारी पाई.
—रामचरित मानस, वाल काड पृष्ठ, 78

नारि महित मुनि पद सिरु नावा, चरन सलिल सवु भवनु सिचावा,
निज सौभाग्य वहुत गिरि वरना, सुता वोलि मेली मुनि चरना.
त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि,
कहहु सुता के दोप गुन, मुनिवर हृदय विचारि.
कह मुनि विहसि गूढ मृदु वानी, सुता तुम्हारि सकल गुन खानी,
सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी, दुख दपतिहि उमा हरपानी.
—रामचरित मानस, वाल काड, 93-94

ऋषिमुनि शब्दो के समान ही जोगी, जती, सिद्ध आदि शब्द भी व्यक्ति विशेष के लिए प्रयुक्त हुए हैं. इन लोगों के न तो गुणो का विस्तृत वर्णन है, न लक्षण दिए गए हैं और न इन की महत्ता प्रदर्शित की गई है इस के विपरीत साधुसत शब्द सर्वत्र आदर एव गौरव के लिए आए हैं. पूरे तुलसी साहित्य मे दो स्थानो पर सतो के लक्षण दिए गए हैं, एक जगह उन के स्वभाव का विस्तृत वर्णन है, एक जगह उन की महिमा वर्णित है:

सतन्ह के लच्छन रघुवीरा, कहहु नाथ भव भंजन भीरा.
सुनु मुनि सतनु के गुन कहऊ, जिन्हते मैं उन के वस रहऊ.
पट विकार जित अनघअकामा, अचल अकिंचन सुचि सुखधामा.
अमित वोध अनीह मित भोगी, सत्यसार कवि कोविद जोगी.
सावधान मानद मदहीना, धीर धर्म गति परम प्रवीना.
गुनागार ससार दुख रहित विगत सदेह,
तजि मम चरन सरन प्रिय तिन्ह कहु देह न गेह.
निज गुन श्रवन सुनत सकुचाही, परगुन सुनत अधिक हरपाही

सम सीतल नहिं त्यागहिं नीती, सरल सुभाउ सबहिं सन प्रीती.
जपतप व्रत दम सजम नेमा, गुरु गोविंद विप्र पद प्रेमा,
श्रद्धा छमा मयत्री दाया, मुदिता मम पद प्रीति अमाया.
विरति विवेक विनयविग्याना, वोध जथारथ वेद पुराना,
दभ मान मद करहिं न काऊ, भूलि न देहिं कुमारग पाऊ.
गावहिं सुनहिं सदा मम लीला, हेतु रहित परहित रत सीला,

—रामचरित मानस, अरण्य काड, 649-650

सतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता, अगनित स्रुतिपुरान विख्याता
विषय अलपट सील गुनाकर, पर दुख दुख सुख पर देखे पर
सम अभूतरिपु विमद विरागी, लोभा मरष हरष भय त्यागी,
कोमल चित दीनन्ह पर दाया, मन क्रम वचन मम भगति अमाया.
सवहि मानप्रद आपु अमानी, भरत प्रान सम मम ते प्रानी.
विगत काम मम नाम परायन, साति विरति विनती मुदितायन.
सीतलता सरलता मयत्री, द्विज पद प्रीति धर्म जनयत्री.
ए सब लच्छन वसहिं जासु उर, जानेहु तात सत सतत फुर.

—रामचरित मानस, उत्तर काड, 906-907

सरल वरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि,
तुलसी सरलै संत जन ताहि परी पहिचानि
तुलसी एसे कहु कहू, धन्य धरनि वहु सत,
परकाजै परमारथी, प्रीति लिए निवहत.
को मुख पट दीन्हे रहै, यथा अर्थ भाषत,
तुलसी या ससार मे, सो विचारियतु सत
सीतल वानी संत की ससि हू ते अनुमान,
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान.

—वैराग्य सदीपनी, पृष्ठ 10-11

को वरनै मुख एक, तुलसी महिमा सत की,
जिन के विमल विवेक, सेस महेस न कहि सकत.
महि कागद करि सिंधुमसि, तरु लेखनी वनाइ,
तुलसी गनपति सो तदपि, महिमा लिखी न जाइ.
धन्यधन्य मातापिता, धन्य पुत्रवर सोइ,
तुलसी जो रामहि भजै, जैसेहू कैसेहू होइ

—वैराग्य सदीपनी, पृष्ठ 12

पिछले दो स्थल विस्तार भय से चौथाई दिए गए हैं. तुलसी ने साधुसंत को एक ही माना है. संत महिमा वर्णन मे संत के लिए साधु शब्द भी आया है:

जदपि साधु सव ही विधि हीना, तद्यपि समता के न कुलीना

—वैराग्य सदीपनी, पृष्ठ 13

तुलसी ऐसे सदगुरु साधू, वेद मध्य गुन विदित अगाधू
वैसे साधारण व्यवहार मे भी एक ही व्यक्ति के लिए साधुसंत शब्द आता है. तुलसी को संन्यासी, ब्रह्मचारी, ऋषि, मुनि, जोगी, सिद्ध कुछ नहीं कहा जा सकता. उन के लिए हम साधु या संत शब्द का ही प्रयोग कर सकते हैं साधुसंत होने के कारण तुलसी ने इस शब्द के साथ पक्षपात किया है.

ऊपर सत के लक्षण, स्वाभाव एवं महिमा को पढ कर कुछ लोग यह कह सकते हैं कि साधुसत शब्दों का अर्थ सज्जन भी हो सकता है फिर कैसे माना जाए कि तुलसी ने विरक्त होने के कारण इन शब्दो के साथ पक्षपात किया है.

यह बात ठीक है. साधु एवं संत दोनो शब्दो का प्रयोग सज्जन या भला आदमी होता है. तुलसी ने अनेक स्थलो पर इन शब्दो का प्रयोग इस अर्थ मे भी किया है.

सुरसरि जलकृत बारुनि जाना, कबहु न सत करहि तेहि पाना पृष्ठ 75
धरम सील ज्ञानी गुनवंता पृष्ठ 210
सब कोइ कहइ राम सुठि साधू. पृष्ठ 361
समाधानु तब भा यह जाने, भरत कह सह साधु सयाने पृष्ठ 514
रहिहि मन हठि करिहौ पहिचनी, साधु ते होइ न कारज हानी
पृष्ठ 69' 'रामचरित मानस'

उक्त शका के उत्तर मे निवेदन है कि ऊपर बताए गए लक्षण, स्वभाव एवं महिमा क्या किसी संसारी व्यक्ति की हो सकती है? क्या उक्त गुणों वाला व्यक्ति दुनिया मे रह सकता है?

तुलसी ने संत स्वभाव वर्णन के अतर्गत निम्न बात लिखी है:

कचन को मृतिका करि मानत, कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत.
--वैराग्य सदीपनी, पृष्ठ 12

क्या कचन को मिट्टी और नारी मात्र को लकड़ीपत्थर समझने वाला व्यक्ति संसारी सज्जन हो सकता है?

इस के अतिरिक्त तुलसी बाबा ने विरागी या महात्मा अर्थ मे अधिकाश स्थलो पर साधुसंत शब्दों का प्रयोग किया है

संत कहहि असि नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव. पृष्ठ 77
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी, मत हमार अस सुनहि सयानी,
तदपि संत मुनि वेद पुराना, जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना.
पृष्ठ 168
तेहि के सत सुत अरु दस भाई, खल अति अजय देव दुखदाई.
प्रथमहि भूप समर सब मारे, विप्र सत सुर भए सुखारे. —पृष्ठ 174
चले संग मुनि साधु समाजा.
पृष्ठ 288

साधु समाज सग महि देवा. —पृष्ठ 289.
विप्र साधु सुर पूजत राजा. —पृष्ठ 340
सिद्ध साधु मुनिवर अह कहही.

—रामचरित मानस पृष्ठ 506

रागद्वेप इरिपा विमोह वम, रुची न साधु समीति. —पृष्ठ 574
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिव पी के. —पृष्ठ 546
धरनि धेनु महिदेव साधु मव के सव सोच नसाए. —पृष्ठ 402

—तुलसी ग्रंथावली'

पहले उद्धरण में श्रुति, पुराण और मुनि के साथ आने से संत का अर्थ साधु बावा है. इसी प्रकार अन्य उद्धरणों मे विप्र, सुर महिदेव आदि के साथ होने से साधुसंत शब्दों का अर्थ विरक्तो से है. यदि इन का प्रयोग सज्जन से होता तो सुर, मुनि, विप्र, सिद्ध आदि शब्दो का प्रयोग भद्दा लगता. क्या सुर मुनि आदि सज्जन नहीं होते?

छठे और सातवें उद्धरण मे 'समाज' एवं आठवें मे 'समीति' के साथ आने से साधु शब्द का अर्थ संत बावा है. इन शब्दो का अर्थ है—जमात. जमात साधुओ की ही होती है.

तुलसी ने अनेक स्थानो पर साधुसंतो को धर्म और ईश्वर के दलाल के रुप में प्रस्तुत किया है और साधुसंतो की सेवा करने का उपदेश दिया है.

भवसागर कह नाव सुद्ध संतन के चरन,
तुलसीदास प्रयास विनु मिलहिं राम दुखहरन.

—तुलसी ग्रथावली, पृष्ठ 561

ऐसे नहि सीतापति सेवक साधु, सुमति भले भगति भाव. —तुलसी ग्रथावली, पृष्ठ 546

सुमिरहु नाम राम कर सेवहु साधु, तुलसी उतरि जाइ भव उदधि अगाधु.

—तुलसी ग्रथावली पृष्ठ 24

एक स्थान पर तुलसी ने राम के मुख से कहलवाया है कि संतों को मुझ से अधिक समझना चाहिए. राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दे रहे हैं:

सातव मम मोहि मय जग देखा, मोते अधिक संत करि लेखा

—रामचरित मानस, पृष्ठ 640

यह सव आत्माप्रचार और आत्मप्रशंसा नहीं तो और क्या है? तुलसी ने इस प्रकार की बातें किसी भी विरक्त वाचक शब्द के साथ नहीं कही हैं. एक स्थान पर तो संतों की प्रशंसा करने वालो में साधु को भी गिना दिया है.

सत सग अपवर्ग कर कामी भवकर पथ,
कहहिं साधु कवि कोविद स्रुति पुरान सद्ग्रंथ

—तुलसी ग्रंथावली, पृष्ठ 130

कितनी अच्छी बात है? स्वयं ही परीक्षार्थी और स्वयं ही परीक्षक.

तुलसी ने साधुसंत शब्दों को सज्जन वाचक होने के कारण मान्यता नहीं दी है.

पूरे तुलसी साहित्य में सज्जन शब्द 33 बार एवं सुजन शब्द 21 बार आया है. यदि सत्सग शब्द के सत का अर्थ भी सज्जन मान लें तो यह संख्या 28 और बढ़ सकती है. तुलसी साहित्य मे सत्सग और सत्सगति शब्द 28 बार आए है. सत समाज दो बार, सुसंग दो बार तथा सताम् शब्द एक बार आया है ये सब प्रयोग जोडने पर 87 बैठने हैं जो साधुसंत शब्दों की संख्या से अपेक्षाकृत न्यून हैं.

इन शब्दों का विस्तृत विवरण इस प्रकार है.

सुजन—'रामचरितमानस' 10, 'दोहावली सात, 'विनय पत्रिका' दो, 'गीतावली' दो 21 सज्जन—'रामचरितमानस' 21, 'पार्वती' एक 'जानकीमंगल' एक, 'दोहावली' चार, 'कवितावली' दो, 'हनुमान बाहुक' एक, 'गीतावली' 'एक, विनय पत्रिका'—दो 13.

सतसंगति एवं सत्संग—'रामचरित मानस' 20, 'दोहावली' एक, 'विनय पत्रिका' सात—28

सतसमाज—'रामचरितमानस', दो.

सुसग—'दोहावली' दो.

सताम्—'रामचरितमानस' एक.

ऊपर किए गए विरयत वाचक शब्दों के विवेचन से हम एक बात और सिद्ध करना चाहते हैं, वह यह कि तुलसी को वर्णाश्रम धर्म का समर्थक कहना उचित नहीं है. ये यदि किसी के समर्थक थे तो साधुमहात्माओं के पूरे तुलसी साहित्य मे ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग चार बार और सन्यासी का तीन बार हुआ है. गृहस्थ शब्द का प्रयोग भी कुछ स्थलो पर मिलता है. वानप्रस्थी शब्द कहीं देखने मे नहीं आता. जहा उन्होंने चारो आश्रमो को याद भी किया है, वहां भी चारों का नाम नहीं लिया है. यदि उन के हृदय मे आश्रम व्यवस्था का स्थान होता तो वे इन शब्दों के विपुल प्रयोग के साथ इन का विस्तृत वर्णन भी करते.

तुलसी साहित्य में सात बार बटु शब्द का प्रयोग हुआ है. बटु शब्द का अर्थ है—ब्राह्मण, ब्रह्मचारी. यह बात तुलसी के निम्न प्रयोग से स्वयं स्पष्ट है:

धरि बटु रूप देख तह जाई, कहेसि मोहि जिय नयन बुझाई,
विप्र रूप धरि कपि तह गएऊ, माथ नाइ पूछत अस भएऊ.

—रामचरित मानस पृष्ठ 654

क्या अन्य जातियों मे ब्रह्मचारी नहीं होते थे. पूरे तुलसी साहित्य में दो एक स्थान पर वणिक शब्द अवश्य आया है, पर कोई भी वैश्य पात्र प्रस्तुत नहीं किया गया है. यह है तुलसी का वर्णाश्रम प्रेम.

तुलसी ने अपने साहित्य मे विरक्त वाचक शब्दों का विपुल प्रयोग इसी लिए किया है कि वे विरक्त थे. अन्य विरयत वाचक शब्दों की अपेक्षा साधुसंत शब्दों को अधिक महत्त्व दिया गया है क्योंकि वे स्वयं साधुसंत ही कहे जा सकते हैं. इस प्रकार तुलसी ने अपने साहित्य में आत्मप्रचार किया है.

ब्राह्मणवाद

आज स्वतंत्रता के युग मे प्रत्येक ऐतिहासिक महापुरुष और उस के कृतित्व का मूल्यांकन निष्पक्ष भाव तथा नए सिरे से करना नितांत आवश्यक है क्योकि आज किसी विशिष्ट व्यक्ति द्वारा महापुरुषों के जो भी मूल्यांकन विद्यमान हैं, वे प्राय. राजतंत्र या वर्गतंत्र के सपक्ष दृष्टिकोण से प्रस्तुत किए गए हैं जो जनतंत्र के इस युग मे कुछ व्यर्थ हो गए हैं.

आज हम यह मानदंड मान कर चलेंगे कि संसार के सभी विषय और सभी वस्तुएं मनुष्य के लिए हैं, न कि मनुष्य विषय या वस्तु विशेष के लिए है. जिन महापुरुषो द्वारा अखड मानव समाज का अधिक उपकार हुआ है, वे हमारे लिए अधिक मूल्यवान, आदरणीय एवं स्मरणीय हैं. इसे ही मद्देनजर रखते हुए इतिहास के आलोक मे हम यह देखेंगे कि तुलसीदास ने देश या अखड भारतीय समाज के लिए क्या किया है. किंतु यह समझने से पहले हमारे लिए ब्राह्मणवाद को समझ लेना अत्यावश्यक है, क्योकि यही ब्राह्मणवाद महाकवि तुलसीदास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रहा है.

ब्राह्मणवाद उस वर्गिक निर्देशन को कहते हैं जो ब्राह्मण वर्ग द्वारा रचित दर्शन और साहित्य के माध्यम से हिंदू समाज को चिरकाल से मिलता आ रहा है और जिस के अनुसार उस की रूपरेखा बनती, बिगड़ती या बदलती चली आ रही है.

समाज की बर्बरता की अवस्था में उस के निर्देशक भले ही अस्त्रशस्त्र रहे हों, पर सभ्य समाज के निर्देशक दर्शन और साहित्य ही हैं. ऐसे साहित्य और दर्शन पर केवल एक ही अल्पसंख्यक जन्मजात वर्ग, ब्राह्मण वर्ग, का बलात अधिकार रहता चला आया है. आज का हिंदू समाज इसलामी और यूरोपीय संस्कृतियों द्वारा प्रभावित होते रहने के बावजूद ब्राह्मणवाद के सांचे मे ही ढला हुआ है. इसी ब्राह्मणवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे हम महाकवि तुलसीदास का अध्ययन कर के यह देखेंगे और समझेंगे कि उन से समाज को

क्या मौलिक लाभ मिला.

समझा जाता है कि हिंदू समाज की बुनियाद ऋग्वैदिक काल मे पड़ी और उसी समय समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामक चार कर्मजात वर्णों मे विभक्त हो गया और ये कर्मजात वर्ण सदियों बाद धीरेधीरे बदलते हुए पूर्णतः जन्मजात बन गए. कर्मजात वर्णों का आधार व्यक्ति की योग्यता तथा कर्म थे, पर जन्मजात वर्णों का आधार केवल जन्म रह गया. पहले खुली प्रतिद्वंद्विता थी जिस मे सफल हो कर कोई भी व्यक्ति अपने जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार बना सकता था, पर वर्णों का आधार जन्म बन जाने से व्यक्ति को यह सुविधा सर्वथा समाप्त हो गई

ऋग्वैदिक काल आर्यअनार्य के संघर्ष का कठोरतम काल था. स्वभावत. उस समय अधिक महत्त्व योद्धाओ का था वे ही समाज का 'क्षत' होने अर्थात कटनेमरने से 'त्राण' करते थे इसी लिए वे 'क्षत्रिय' कह कर सम्मानित किए गए. वे ही अपने समाज के निर्देशक थे. बाद मे लड़ाईझगड़े कम हो गए तो क्षत्रियो का सम्मान भी कम हो गया. अपेक्षाकृत शांति काल मे एक चिंतक वर्ग उदित हुआ जो ब्रह्म की कल्पना के आधार पर 'ब्राह्मण' कहलाया. सामान्य जनता वैश्य और शूद्र बन कर रही अब क्षत्रियो के स्थान पर ब्राह्मणो का सम्मान बढ़ गया और वे ही समाज के स्वच्छंद निर्देशक बन गए. समाज के निर्देशन के लिए क्षत्रियों और ब्राह्मणों मे घोर संघर्ष भी हुए, पर ब्राह्मण की कलम के आगे क्षत्रिय की तलवार की करारी हार हुई. ब्राह्मण स्वरचित दर्शन और साहित्य के माध्यम से क्षत्रियो के मस्तिष्क पर पूर्णत हावी हो गए

विजयी ब्राह्मण बड़ी तेजी से अपने वर्गस्वार्थ की ओर बढ़ा. उस ने प्रत्येक वर्ण को एक योनि मान लिया और उसे स्वकल्पित विराट पुरुष के विभिन्न अंगो से अलगअलग उत्पन्न और उसी के अनुसार ऊंचनीच बताया ब्राह्मण बना मुख या मस्तक, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा, और शूद्र पैर. इस प्रकार ब्राह्मणवाद ने तीनो अब्राह्मण वर्गों को मस्तकविहीन रुंड बना दिया और स्वयं धड़रहित मुंड बन गया. हाथपैर श्रम कर सकते हैं किंतु मस्तक के अभाव मे वे देखसुन, सोचविचार नहीं सकते इस के विपरीत मस्तक देखसुन, खापी, सोच-विचार सकता है किंतु वह अपनी मेहनत की कमाई पर जी नहीं सकता. सर्वांग-पूर्ण भारतीय व्यक्तित्व को ब्राह्मणवाद ने सर्वथा एकांगी और पराश्रित बना कर छोड़ दिया. यह मानवता की अभूतपूर्व और बहुत बड़ी क्षति थी

उपर्युक्त अंगो के अनुसार ही ब्राह्मण धर्माध्यक्षो ने चिंतनप्रधान छः कर्मों को अपने लिए रखा और युद्ध, कृषि, सेवा आदि श्रमप्रधान कर्म अब्राह्मण वर्णों मे वितरित कर दिए. सर्वथा सुयोग्य होने पर भी पढ़ाने, यज्ञ कराने और दान लेने का अधिकार किसी अन्य वर्ण को नहीं दिया गया. उन्होंने पढ़ाने के माध्यम से अब्राह्मणो के मस्तिष्क एवं विचारो पर अपना अधिकार रखा और यज्ञ तथा दान के माध्यम से सम्मानपूर्वक उन की कमाई के उपभोक्ता बन गए.

इस उपभोग के लिए आध्यात्मिकता अथवा अज्ञेय शक्ति का सहारा लिया गया क्योंकि दृश्य जगत के सहारे विशाल अब्राह्मण समाज को चिरकाल तक प्रभावित बनाए रखना असंभव था.

ब्राह्मण वर्ग की जीविका एवं सुखसुविधा को अधिक सुलभ बनाए रखने के लिए यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रंथों मे प्रचुर दानदक्षिणा के साथ अश्वमेघ, गोमेध, सर्वजित आदि बड़ेबड़े यज्ञों के विधिविधान बनाए गए. सर्वजित वह यज्ञ था जिस मे अपना सारा धन ब्राह्मणों को दान कर दिया जाता था. राम के पूर्वज राजा दिलीप ने अपना सब कुछ दान कर के मिट्टी के बरतन में खापी कर अपने को धन्य माना था. दान और यज्ञ धर्म के प्रधान अंग एवं आवश्यक कर्तव्य बना दिए गए.

बुद्ध से पूर्व यज्ञों, मत्स्यन्याय से लड़े जाने वाले राजाओ के आपसी युद्धों और अगुलिमाल्य जैसे खूनी डाकुओं द्वारा घोर हिंसा होने लगी. हिंसा की आग मे जनजीवन वेपनाह जलने लगा. हिंसा की उस आग को बौद्ध धर्म ने शांत किया. परंतु छद्मवेशी बौद्ध भिक्षुओं ने बौद्ध धर्म को भारत मे समाप्त-प्राय कर दिया और सारी जनता ब्राह्मण धर्म मे चली गई.

प्राचीन काल में हारे हुए सैनिक विजेता द्वारा गुलाम बना लिए जाते थे. वही दुर्दशा बौद्ध धर्म से ब्राह्मण धर्म मे लौटी जनता की हुई. वह सारी की सारी शूद्र वर्ग मे डाल दी गई कहा गया कि कलियुग मे ब्राह्मण और शूद्र दो ही वर्ण हैं. तब से ही 'द्विज' शब्द से केवल ब्राह्मण का बोध होने लगा.

यदि दो ही वर्णों मे समाज को बांट दिया जाता तो विशाल शूद्र समाज में ब्राह्मणवाद के विरुद्ध ऐसी चेतना जागती जो उस के तख्ते को उलट देती. वह बौद्ध क्रांति से भी बड़ी क्रांति कर देती. इस संभावना को सदा के लिए समाप्त कर देने के लिए सीढ़ीनुमा ढंग से जातिपांति को हजारो टुकड़ों में बांट कर उन मे शादीव्याह और खानपान के संबंधो को सर्वथा काट कर समाज की एकता की शक्ति छिन्नभिन्न कर दी गई. तब से छोटीछोटी उपजातियां अपने छोटेछोटे दायरों मे चक्कर खाती हुई मृतप्राय बनती चली गईं.

यद्यपि ब्राह्मण वर्ग के आरंभिक निर्माण में काफी वर्णसंकरता रही है—वशिष्ठ, नारद आदि ऋषिमुनि वैसे ही बताए गए हैं, तथापि ब्राह्मण शास्त्र-कारों ने सभी अब्राह्मण जातियो को वर्णसंकर या शूद्र ही लिख मारा है राज-पूत जाति को भी, जिसे व्यवहारतः ब्राह्मणों ने क्षत्रियवत रख कर उसी के हाथों प्राचीन क्षत्रियों व वैश्यों का शूद्रीकरण, शोषण व दलन और बहुत कुछ बौद्धों का संहार भी करवाया, चुपके से वर्णसंकर और शूद्र श्रेणी मे डाल दिया. (देखिए : ब्रह्मवैवर्त महापुराण, संकर जाति वर्णनाध्याय, श्लोक 6. स्कंद पुराण, सह्याद्रि खंड, अध्याय 26, शूद्र कमलाकर. वृहज्योतिषार्णव, संकर जाति वर्णनाध्याय इत्यादि.)

जब ब्राह्मणवाद को सार्थक बनाने वाले राजपूत समाज की यह दुर्दशा हुई

तो और जातियां किस खेत की मूली थीं. इस प्रकार, ब्राह्मण धर्माध्यक्षों ने हिंदू समाज को नीचों और महानीचो का विशाल पुंज बना दिया. जिस समाज मे इस प्रकार की वैधानिक नीचता हो उस का कल्याण कौन कर सकता है?

बौद्ध काल के बाद ब्राह्मण की सहजसुलभ जीविका के आधार यज्ञ समाप्त हो गए थे. अब उन्हें उसी रूप मे लौटा पाना असंभव था अब उन के स्थान पर मूर्तिपूजा और देवभक्ति को अपनाया गया अब कथानकप्रधान विभिन्न पुराण आदि ग्रंथ रचे गए जिन मे वर्णित किसी देवता के नाम लेने और दर्शन करने या किसी 'पवित्र' नदी मे स्नान करने मात्र से पाप छूटने लगे, मुक्ति मिलने लगी और सातसात पुरखे तरने लगे. कहा गया कि जिस ने ब्राह्मणों को दानदक्षिणा दे कर मूर्तिपूजा करवाई, योगजाप करवाया, वही राजामहाराजा, धनी और संपन्न हुआ, जिस ने ऐसा नहीं किया, वह दीनदुखी एवं दरिद्र बना. 'जो इस जन्म मे करेगा, वही आगे पाएगा,' इस धर्मादेश से प्रभावित हो कर राजामहाराजा विशाल देवमंदिर बनवाने लगे और उन्हें प्रचुर धनधान्य से भरने लगे. किसान, मजदूर, श्रमिक जनता भी परलोक सुधारने के लिए पेट काट कर भी मठोंमंदिरो मे दान देने लगी. फलत. मुसलिम शासन काल से पूर्व समस्त भारत को संपत्ति दो ही जगह केंद्रित हो गई एक ब्राह्मणों के मठोंमंदिरों मे और दूसरे राजाओं और सामंतों के यहां इसी लिए महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी ने मठोमंदिरो और राजाओंसामंतों को लूटने की परंपरा चलाई

मुसलिम राज्य स्थापित होने पर शोषितदलित जनता धड़ल्ले से इसलाम की गोद मे जा कर राहत महसूस करने लगी. अब हिंदू धर्माध्यक्षो के पैरों तले से धरती खिसकने लगी इस समस्या का समाधान यह था कि इस शोषितदलित जनता को जो राहत इसलाम मे दी जा रही थी, उस से अधिक राहत हिंदू के नाते, भाई के नाते, अपने घर मे दी जाती, जिस से उन का क्षोभ मिट जाता और वे हिंदू बने रहते, मुसलमानो की दाल न गल पाती (तब शायद पाकिस्तान का सवाल भी न उठता). पर ऐसा नहीं हुआ. इसलाम के आघात सहने के लिए धर्माध्यक्षो ने कच्छपप्रवृत्ति अपना ली और भगवान की भक्ति का सहारा ले लिया.

बौद्ध काल मे दक्षिण भारत ब्राह्मणवाद का अड्डा बन गया था वहीं के षड्यंत्र के आधार पर बौद्ध धर्म को तोड़फोड़ कर समाप्त किया गया था. मुसलिम संकट काल मे भी वहीं के रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य आदि ने उत्तरी भारत मे द्विजों मे रामकृष्ण की भक्ति का प्रचार किया. जब इस से काम चलता नजर नहीं आया तो स्वामी रामानंद को 'हरि को भजे सो हरि का होय' कह कर कबीर जुलाहे, रविदास चमार, आदि तथाकथित नीच कुल वालों को भी अपना शिष्य बनाना पड़ा.

संभवतः स्वामी रामानंद ने रामविग्रह के अपवित्र हो जाने के भय से

इन शिष्यों को साकार रामभक्ति की दीक्षा नहीं दी होगी और काम चलाने के लिए निराकारोपासना को ही काफी समझा होगा या इन के विवेक की कसौटी पर कस कर उन की साकार भक्ति निराकार बन गई होगी. फलतः निराकार राम के ये भक्त अपनेअपने ढंग से शोषितदलितों में, विशेषकर अपने जातिभाइयों, में रामभक्ति का प्रचार करने लगे और कहने लगे कि "यह देश विराना है, यहां सुखदुख सहते और भगवान की भक्ति करते हुए, 'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिए' के अनुसार मरने के बाद प्रियतम का सहयोग मिलेगा और अपार सुख का उपभोग मिलेगा." इसी सहयोग और उपभोग के लालच में अधिकांश क्षुब्ध समुदाय, जीवन की नरक यातना भोगता हुआ भी, भक्ति के महाजाल मे फंस कर हिंदू बना रह गया. निर्गुणवादी संतों में गुरु गोविंदसिंह की तरह यह विश्वास नहीं जग सका कि सामूहिक प्रयत्न द्वारा वर्तमान जीवन को भी सुखी व संपन्न बनाया जा सकता है. फिर भी प्रगति की ओर उन का एक कदम अवश्य था. पहली बार उन्हें थोडा सम्मान मिला. यदि राम के युग में ये ऐसी भक्ति और योगजाप करते तो संभवतः शंबूक की तरह उन के गले काट दिए जाते.

भक्ति के प्रचार से क्षुब्ध जनता को हिंदू बनाए रखने मे धर्माध्यक्षों को सफलता तो काफी मिली, पर उन की जीविका के आधार मठो, मंदिरों और मूर्तियों को जहां एक ओर मुसलमान ध्वस्त कर रहे थे, वहां दूसरी ओर निर्गुणवादी संत भी उन के विरुद्ध जनता में प्रचार करने लगे. साथ ही वर्ण व्यवस्था और जातिपांति व ऊंचनीच के विरुद्ध भी उन की आवाज उठने लगी. यही वह समय था जब मूर्तिपूजा समाप्तप्राय हो गई. इस से ब्राह्मणों की प्रचुर आय बंद हो गई और राजपूत काल के अत्यंत संपन्न ब्राह्मण अत्यंत विपन्न बन गए.

निर्गुणवादी संत समाज की अखंडता, समानता तथा मानवता पर जोर डाल रहे थे, जिस से प्रभावित हो कर अनेक ब्राह्मण भी उन के शिष्य बन कर उन की सेवा करने लगे. पर जैसे वृक्षों का रस पी कर पलने वाली अमरलता समतल जमीन पर नहीं पनप सकती, ठीक वैसे ही परोपजीवी ब्राह्मणवाद समता या मानवता के धरातल पर नहीं पनप सकता था. फिर भी कुसमय समझ कर धर्माध्यक्ष वर्ग सब कुछ सहता रहा.

हुमायूं तक मुसलिम शासन हिंदुओं के लिए अत्यंत कठोर रहा. शेरशाह ने हिंदुओं के सहयोग से उसे अपदस्थ कर दिया. इस के रहस्य को अकबर ने समझा. उस ने शादीब्याह तक कर के हिंदुओ से घनिष्ठता और भी बढ़ा ली. उस का समय हिंदुओ के लिए स्वर्ण काल बन गया. इसी स्वर्ण काल में भक्ति के क्षेत्र में दो ब्राह्मण महाकवि, सूर और तुलसी, उतरे. कबीर आदि संतों की निर्गुण भक्ति की धारा, जो अखंड मानवता को सींचने जा रही थी, इन प्रतिभाशाली कवियों द्वारा सूखते हुए ब्राह्मणवाद की ओर सगुण भक्ति बना

कर मोड़ दी गई, जिस से समता एवं मानवता की खेती मर गई और विषमतामूलक ब्राह्मणवाद की मरती हुई खेती पुनः लहलहा उठी.

इस दिशा मे महाकवि तुलसीदास अधिक सफल हुए क्योंकि बचपन से मृत्यु तक इन की जीवनचर्या ऐसी रही कि मूर्ख से विद्वान तक, गरीब से अमीर तक, सभी स्तर के व्यक्तियों मे इन का घनिष्ठ संपर्क रहा इन का ज्ञान और अनुभव महान बन गया. इन्होंने हिंदू समाज की नसनाड़ी भली भांति पहचानी. ब्राह्मणवाद पर आए हुए घोर संकट को भी इन्होंने समझा. उस संकट के निवारण के लिए इन्होंने जहांजहां जैसी आवश्यकता हुई, अपने काव्य साहित्य मे तोलतोल कर मनोरंजक निशाने लगाए, जिन के प्रभाव ने जनता ओतप्रोत और उन के वशीभूत हो गई.

तुलसीदास ने आंखें मूंद कर ब्राह्मणवाद की परंपरा का समर्थन किया, शास्त्रकारों की उक्तियो को दोहराया. जन्मजात ब्राह्मण की महत्ता बतलाते हुए मनु ने कहा था :

1 ब्राह्मणो जायमानो हि पृथिव्यामधिगच्छति 1 99
(ब्राह्मण जन्म मात्र से पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ है)

2. सर्वस्व ब्राह्मणस्येद यत्किंचिज्जगनीगतम् 1. 100
(संसार मे जो कुछ है, सब ब्राह्मण का है)

3 अविद्वाश्चैव विद्वाश्च ब्राह्मणो दैवत महत् 9 317
(मूर्ख हो या विद्वान, ब्राह्मण महान देवता है.)

4. यद्यप्यनिष्टेषु वर्त्तंते सर्वकर्मसु सर्वथा ब्राह्मणा पूज्या. परम दैवत हि तत् 9 319
(यद्यपि ब्राह्मण सभी प्रकार के अनिष्ट (कुकर्म) करते हैं, तथापि वे सभी तरह पूज्य हैं, वे महान देवता हैं.)

5. ब्राह्मण सभवेनैव देवानामपि दैवतम्.
(ब्राह्मण जन्म मात्र से देवो का भी देव है.)

इन्हीं भावो को दोहराते हुए तुलसीदास ने कहा :

1 शापत ताडत परुष कहता, विप्र पूज्य अस गावहिं संता.
(शापते, मारते, कठोर बोलते हुए भी ब्राह्मण पूज्य हैं.)

2. पूजिए विप्र शील गुण हीना, नहो शूद्र सब कला प्रवीना
(दुराचारी, गुणहीन ब्राह्मण को पूजो, कलाओं मे कुशल शूद्र को नहीं.)

3. कवच अभेद विप्र गुरु पूजा, यहि सम विजय उपाय न दूजा.
(ब्राह्मण गुरु की पूजा कवच है, विजय का ऐसा दूसरा उपाय नहीं है.)

4 पूज्य एक जग मे नहि दूजा, मन क्रम वचन विप्र पद पूजा.
(संसार मे एक ही पूज्य है, दूसरा नहीं—सब तरह ब्राह्मण को पूजना.)

अब शूद्र के बारे मे मनु कहते हैं :

1 एकजाति द्विजातिस्तु वाचा दारुण या क्षिपेत्,

जिह्वा या प्रान्पुवाच्छेदं जघन्यप्रभवो हि सः.

(जो शूद्र ब्राह्मण को कड़ी बात कहे, राजा उस की जीभ काट ले क्योंकि वह नीच जाति में जन्मा है.)

2. नामजातिग्रह तेषामभिद्रोहे न कुर्वतः,
निक्षेप्योऽयोमयो शकुः ज्वलन्नास्यै दशागुल .

(यदि कोई शूद्र ब्राह्मण को कुवचन कहे तो उस के मुंह में लोहे की 10 अंगुलें आग मे तपा कर ठोंक दो.)

3 धर्मोपदेश दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वत·,
तप्तमासेचयेत्तैल वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः.

(जो शूद्र घमड से ब्राह्मण को धर्मोपदेश देता है राजा उस के मुंह व कान मे खौलता गरम तेल डलवा दे.)

4. विप्रसेवैव शूद्रस्य विशिष्ट कर्म कीर्तयते.

(ब्राह्मण सेवा ही शूद्र का धर्म है.)

5. उच्छिष्टमन्न दातव्य जीर्णानि वसनानि च,
पुलका चैव धान्यानां जीर्णश्चैव परिच्छदाः.

(ब्राह्मण अपने सेवक शूद्र को जूठा अन्न, फटेपुराने वस्त्र, अन्न के दाने, टूटे हुए बरतन दे.)

व्यासस्मृति कहती है :

वर्द्धकी नापितो गोपः आशाप. कुंभकारक·,
वाणिक्कित कायस्थ मालाकार कुटुंविनः,
वरटो मेद चांडाल. दासो श्वपचकोलका.,
एषा संभाषणात्स्नान दर्शनादर्कवीक्षणम्.

(बढ़ई, नाई, ग्वाला, कुम्हार, बनिया, किरात, कायस्थ, भंगी, कोल, चंडाल, ये सब अंत्यज कहलाते हैं इन से बात करने पर स्नान और इन को देख लेने पर सूर्य के दर्शन से शुद्धि होती है.)

ये हैं हमारे धार्मिक विधान, जो एक वर्ग के हिंदुओ द्वारा अन्य वर्गों के हिंदुओं के लिए रचे गए हैं और जिन का पालन कठपुतली हिंदू राजा, विशेषकर राजपूत राजा, आखें मूंद कर करते रहे हैं. इसी परंपरा का निर्वाह करते हुए तुलसीदास कहते हैं :

1. जे वर्णाधम तेली कुम्हारा, श्वपच किरात कोल कलवारा.

2. ढोल गवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी.

3. आभीर यवन किरात खल, श्वपचादि अति, अघ (पाप) रूप जे

इस प्रकार महाकवि तुलसीदास ने ब्राह्मण शास्त्रकारों की अब्राह्मण समाज के प्रति उपेक्षा और घृणा की भावना का खुल कर समर्थन किया. उन्होंने वर्ण और जातिभेद की संकीर्णता से ऊपर उठ कर संत कबीर की तरह अखंड मानवता की ओर नहीं देखा तो न सही, अखंड हिंदुत्व की ओर भी नहीं देखा.

उन की नजर मे केवल अपने वर्ग, ब्राह्मण वर्ग, की छोटी सी दुनिया रही और उन्होंने उसी को रामभक्ति के सहारे सुखीसंपन्न, सम्मानित बनाए रखने का प्रयास किया.

उत्तर प्रदेश तो विशेष तौर पर तुलसीदास का आंख मूंद कर अनुसरण करने लगा बजाय दासता का विरोध करने के, महाकवि तुलसीदास ने उन्हें राजभक्ति सिखाई चाहे वह मुसलमान शासक ही क्यों न हो.

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' के प्रभाव से मुसलिम काल की मिटती हुई मूर्तिपूजा अंगरेज काल मे बड़े जोरशोर से बढ़ी, यहां तक कि यह ग्रंथ स्वयं पूजा जाने लगा, कदमकदम पर मंदिर बनने लगे और लाखों निठल्ले लोग दूसरों की कमाई पर सम्मानपूर्वक पलने लगे वर्तमान स्वराज्य काल मे तो यह दशा है कि किसी सरकारी सड़क व रेलवे लाइन पर या किसी भी गलीकूचे मे जहां भी किसी ने झंडा गाड़ दिया वहीं मूर्तिपूजा की सुलभ दुकानदारी शुरू हो गई.

उत्तर प्रदेश मे तो हर शहर मे मंदिरों की बाढ़ आ गई रामकृष्ण आदि का सहारा ले कर गलीगली मे मंदिर खुल गए

तुलसी साहित्य से ब्राह्मण वर्ग का काफी उपकार हुआ परंतु अब्राह्मण शोषितदलित वर्गों की और भी दुर्दशा हुई, जिस मे हिंदू समाज मुसलमान शासकों की निर्बलता का लाभ नहीं उठा सका और भारत अंगरेजों के हाथ मे चला गया. यदि यूरोपीय झंझावात झकझोर कर जगा नहीं देता तो हिंदू समाज उसी दुर्दशा मे बेहोश पड़ा रहता. आज समाज मे जो परिवर्तन आया है वह यूरोपीय वैज्ञानिक संस्कृति के कारण है, न कि भारतीय संस्कृति के कारण लेकिन आज भी हमारे धर्माध्यक्ष इन्हीं धर्मशास्त्रों की लीक पर चल रहे हैं.

तुलसीदास का जन्मस्थान उत्तर प्रदेश, और विशेषतः पूर्वी उत्तर प्रदेश, तो देश का सब से गरीब हिस्सा बन गया. पंजाब और महाराष्ट्र मे जो उन्नति हुई उस की अवहेलना करते हुए उत्तर प्रदेश तुलसी के गुणगान और रामभक्ति मे लगा रहा

सच कहा जाए तो हमारे धर्मशास्त्र और तुलसी कृत 'रामचरितमानस' हमारी स्वतंत्रता को अभिशाप बना रहे हैं. हमारा संविधान कहता है कि राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति समान है, किसी से घृणा करना, किसी को अछूत मानना दंडनीय अपराध है, लेकिन असंख्य पंडेपुरोहित अपने धार्मिक विधान के हवाले देदे कर अपने यजमानों के कानों मे निरंतर फूंकते रहते हैं कि अमुक जाति से छू जाने पर पुरखे नरक मे पड़ जाते हैं. आज जो कुछ हो रहा है वह घोर कलियुग की माया है. निश्चय ही चिरकाल की मानसिक दासता मे ग्रस्त जनता अपने धर्म के विधान की बात मानेगी. इसी से आज हमारी आजादी व्यर्थ सी बन रही है. यह भारतीय जनतंत्र शासन की घोरतम विडंबना है ●

साहित्यिक चोरी

साहित्यिक सूझबूझ साहित्याध्ययन से ही उद्भूत होती है, अतः कृतियो मे पूर्ववर्ती रचनाओ के भावसाम्य और शब्दसाम्य आ ही जाते हैं. छोटे-मोटे और दोचार साम्यों को साहित्यिक चोरी की सज्ञा नहीं दी जा सकती उन्नीसवीं शताब्दी मे आंग्ल विद्वानो ने इसी आधार पर भारतीय सस्कृत कवियो का पौर्वापर्य निर्धारित किया था. उस समय बडा विवाद था कि पहले कौन हुआ? कालिदास या भवभूति, वाल्मीकि या व्यास, गीता या अश्वघोष. अतः इसी साम्य के आधार पर यह निर्णय किया गया तथा संस्कृत साहित्य का कालक्रम निर्धारित किया गया. अगरेजो ने संस्कृत कवियो की सारी रचनाओ को छान मारा किंतु गिनती के ही साम्य मिले इस से प्रकट होता है कि एक-दूसरे के भावो, शब्दो, रूपको तथा अलंकारो को बचा कर लिखने की कितनी सतर्कता उस समय के कवि वरतते थे जिस से उन पर किसी प्रकार से साहित्यिक स्तेय का आरोप न लग सके. भारतीय साहित्य के इतिहास मे यदि साहस के साथ किसी ने इस युगावलंबिनी अस्तेय परंपरा को खंडित किया तथा उपमाओ, रूपको और अलंकारो की चोरी प्रारभ की तो वे 'मानस' के प्रणेता तुलसीदास ही थे.

और आश्चर्य तो यह है कि उन के ये चोरी के अलकरण बहुत दिनो तक जौहरियो तक को भरमाए रहे और आज भी अनेक विद्वान समझते हैं कि ये तुलसी के अपने हैं. अलकारो की चोरी चाहे लौकिक हो या काव्यशास्त्रीय, सदा ही गर्हित मानी गई है. साहित्यकारों ने एकदूसरे के कथानको का खुल कर उपयोग किया, वर्णनशैलियों की नकल की, किंतु अलंकारो की चोरी से वे अपने को बचाते ही रहे क्योकि इस प्रकार की चोरी पक्के सबूत के साथ पकड ली जाती है तथा अपयश का भागी बनना पड़ता है.

बीसवीं शताब्दी के प्रारभ के साथ मिश्रबंधुओ ने हिंदी समालोचना के युग का सूत्रपात किया. फिर बाबू श्यामसुदर दास और आचार्य रामचद्र शुक्ल

का जमाना आया सब ने ठिठक कर तुलसी को देखापरखा. 'मानस' की समलंकृत भाषा पर सब सहमे हुए थे कि ये अलंकरण तुलसी को कहां से मिल गए? वह भी उस युग मे जब कि देशी भाषा अपने प्रारंभिक चरण मे ही थी किसी ने तुलसी को साहित्यगगन का मार्तंड घोषित किया, किसी ने चंद्र पंडित रामनरेश त्रिपाठी संस्कृत के भी विद्वान थे और 'कविता कौमुदी भाग-3' के रूप मे संस्कृत साहित्य का इतिहास भी प्रस्तुत कर चुके थे किंतु वह भी यह न भांप सके कि तुलसी ने अलंकार संस्कृत मे चुराए हैं. अपनी पुस्तक 'तुलसी और उन की कविता' मे त्रिपाठीजी ने तुलसी को कवि के अतिरिक्त गणितज्ञ और ज्योतिषशास्त्र का भी विद्वान घोषित कर दिया शायद उन के सम्मुख तुलसी की वह उपमा थी जो उन्होंने राम के वनगमन के प्रसंग मे राम और लक्ष्मण के बीच सीता को देख कर दी थी:

उपमा बहुरि कहउं जिय जोही. जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही

—अयोध्या कांड 122-2

स्पष्ट है कि तुलसी, राम और लक्ष्मण के बीच सीता को देख अपना मन बहुत टटोल कर उपमा दे रहे हैं कि जैसे बुध और चंद्रमा के बीच रोहिणी नक्षत्र शोभित हो.

कहा जाता है कि आधुनिक ज्योतिषशास्त्र का जन्मदाता डेनमार्कनिवासी कोपरनिकस अपने जीवन भर बुध तारे को अपनी आंखों से न देख सका वस्तु-स्थिति यह है कि बुध सूर्य के अति निकट रहने वाला ग्रह है और सूर्योदय या सूर्यास्त के आसपास ही क्षीणप्रभ सा किसी प्रकार देखा जा सकता है. अब उसी के निकट मे चंद्ररोहिणीसंयोग द्वितीया तिथि को फाल्गुनचंद्र मे कभी संध्या समय पड सकता है और उसे उतने ही व्यायाम से देखा जा सकता है जितने मे ईद का चांद देखा जाता है तुलसी ने इस को मन टटोल कर (जियजोह) राम-लक्ष्मणसीता मे उपमा दे डाली. तब क्यों न पंडित रामनरेश त्रिपाठी उन्हें ज्योतिषशास्त्र का ज्ञाता मान लें! त्रिपाठीजी की भावनाओं को कसी ठेस लगती यदि वे ब्रह्मरामायण का निम्नलिखित श्लोक देखते :

वसन्तकामयोर्मध्ये शोभते च यथा रति,
बुधचन्द्रमसोर्मध्ये यथा राजति रोहिणी

श्लोक के पहले चरण मे वसंत और कामदेव के बीच रति वाली उपमा भी थी. तुलसी ने इस का भी उपयोग कर लिया :

बहुरि कहउं छवि जसि मन बसई, जनु मधु मदन मध्य रति लसई

—अयोध्या कांड 122-2

चूंकि वे जोर दे कर यह रहे हैं कि 'फिर कहता हूं, जैसा कि मेरे मन मे बसा है' अत. आप ब्रह्मरामायण ढूंढने न जा कर मान लेते हैं कि उपमा चोरी की नहीं होगी, तुलसी की ही होगी. रामलक्ष्मणसीता को वन जाते देख कर तुलसी को एक भी मौलिक उपमा न सूझी, पता नहीं कैसा कविहृदय उन्होंने

पाया था. बस अनेक पुस्तकों से उपमाओं का संग्रह करना उन्होंने प्रारभ कर दिया. द्रष्टव्य है :

उभय बीच सिय सोहति कैसे, ब्रह्म जीव बिच माया जैसे.
आवयोर्मध्यगा सीता मायेवात्मपरात्मनो . —अध्यात्म रामायण
लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत,
सोह मदन मुनि वेप जनु रति रितुराज समेत —अयोध्या कांड 133
सीता लक्ष्मणसयुक्तो रामो राजति मदिरे,
वसत रति सम्पन्नो मुनिवेप: स्मरो यथा. —आनंद रामायण
राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत,
जिमि वासव बस अमरपुर सची जयत समेत. —अयोध्या कांड 141
सीता लक्ष्मण सम्पन्न: श्रीराम: पर्णमादरे,
भातीव चामरावत्यामिद्र:. स्त्रीपुत्रसयुत.. —स्कंद रामायण
सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर,
भगति ग्यान बैराग्य जनु सोहत धरे शरीर. —अयोध्या कांड 321
सीतानुजयुतो रामो राजते पर्णमदिरे,
भक्तिज्ञानविरागाश्च राजते देहिनो यथा —आनंद रामायण
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम,
मम हिय गगन इदु इव बसहु सदा निहकाम —अरण्य कांड 11
सीतया सह राम त्व लक्ष्मणेन च वाणभृत्,
मदीये हृदयाकाशे वसेन्दुरिव सर्वदा —सत्योपाख्यान

कितनी चिंतनीय स्थिति है कि मानस का कवि अपने कथानायक तथा आराध्य की छवि के सात चित्र उपस्थित करता है और सात के सात चोरी के, अपनी मौलिक अभिव्यक्ति एक भी नहीं. इस से बढ़ कर काव्यशास्त्रीय दिवालिएपन का उदाहरण और क्या हो सकता है?

हम सब दोषदर्शक जन तुलसी के शब्दों मे 'खल' है जो बेकाम ही टाग अड़ाए फिर रहे हैं. हम लोगों की तुलसी को बडी चिंता थी, अत. प्रारभ मे ही उन्होने हम लोगों की वंदना कर ली थी उन्होने हम आलोचको के तेज की अग्नि से उपमा दी जो सब कुछ जला देता है. क्रोध की यमराज से उपमा दी. हम लोगो को अघ और अवगुन का धनी कुबेर बतलाया. भले काम मे हम केतु के समान उदित होते हैं और अच्छा तभी तक रहता है जब तक कुभकर्ण के समान सोते रहते हैं. हमारी उपमा हिमोपल (ओले) से दी गई है जो खेत को नष्ट कर के स्वयं भी गल जाते हैं हमसब शेषनाग के समान सहस्र मुखो से दूसरे का दोषवर्णन करते हैं, पृथुराज के समान दस सहस्र कानो से दूसरे का दोषवर्णन सुनते हैं, इंद्र के समान हजारों आंखो से दूसरे का दोष देखते हैं, आदिआदि. हमे संतोष होता यदि ये सारी तुलसी की मौलिक उपमाए ही होतीं. अरे! ये तो महारामायण के निम्न पदो से ग्रहण की गई हैं. मिला कर देख लीजिए .

खला वह्निसमा क्रोधे यमराजसमा खलु,
अघावगुणवित्तस्य धनिनश्च धनेशवत्.
तेज कृसानु रोष महिषेसा, अघअवगुन धन-धनी धनेसा.
हिताय सर्वलोकस्य केतूदयसमोदय.,
कुम्भकर्णसमा एते स्वपन्तु स्याच्छुभं यदि
उदय केतु सम हित सबही के, कुंभकरन सम सोवत नीके.
परकार्यविनाशाय त्यजति निजविग्रहम,
हिमोपला विनश्यन्ति नाश कृत्वा यथा कृषे:.
पर अकाज लगि तनु परिहरही, जिमि हिम उपल कृषी दलि गरही.
वन्दे खल शेषसम सरोष मुखै महस्रं. परदोषवार्ताम्,
करोति य: पापमथो शृणोति महस्रकर्ण पृथुराजतुल्य:
बदौ खल जस शेष सरोषा, सहस बदन बरनै परदोषा.
पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना, पर अघ सुनै सहस दस काना
पुन: शक्रसम वन्दे खल वज्रप्रिय सदा,
सहस्रनयनैर्दोष य: परस्य प्रपश्यति
बहुरि शक्र सम बिनवौं तेही, सतत सुरानीक प्रिय जेही.
बचन बज्र जेहि सदा पियारा, सहस नयन परदोष निहारा.

खलवंदना करने मे साधु तुलसी को अन्य पुस्तक का सहारा लेना पड़े तो इस हालत मे क्षम्य है किंतु यह क्या? साधु और सज्जनों के वर्णन मे भी परावलंबिता ·

साधु चरित सुभ चरित कपासू, निरस बिसद गुनमय फल जासू
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा,
नीरसान्यपि शोभन्ते कार्पासस्य फलानि च,
येषां गुणमय जन्म परेषां गुह्यगुप्तये —वशिष्ठ रामायण
मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथराजू
आनंदमंगलमय सत्समाजो विराजते
लोके यो जंगमो तीर्थराजो निगद्यते —वशिष्ठ संहिता
राम भगति जहं सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा
रामभक्तिर्हि यत्रास्ति पुण्या भागीरथी प्रभो,
विचारो ब्रह्मणश्चैव तत्प्रचार सरस्वती —पुलस्त्य संहिता
विधि निषेधमय कलिमल हरनी, करमकथा रबि नन्दिनि बरनी.
निषेधप्रचुरा कर्मकथा विधिमयी तथा,
वर्ण्यते यत्र कालिन्दी कलिकल्मषनाशिनी. —पुलस्त्य संहिता
हरिहर कथा बिराजति बेनी, सुनत सकल मुद मंगल देनी
हरिशंकरयोर्यत्र कथावेणी विराजते,
या च श्रवणमात्रेण हर्षमंगलदायिनी —पुलस्त्य संहिता

वट विस्वास अचल निज धरमा, तीरथराज समाज सुकरमा.

स्वकीयो यस्तु विश्वासस्त्वक्षयो वट उच्यते,

क्षेत्रस्याचलता धर्मः पुण्यात्मान. समाजिनः. —पुलस्त्य संहिता

रामचरितमानस की पंक्तिपंक्ति मे अलकार तथा उपमाएं हैं. उन सब का उदाहरण किसी लेख मे तो दिया नहीं जा सकता. किंतु अध्ययन से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि 80 प्रतिशत उपमाए दूसरी पुस्तको से ग्रहण की गई हैं मानसकार ने दो ही प्रकार के कार्य किए हैं, विभिन्न सस्कृत रामकाव्यों मे से अपनी पसंद के पदो का संग्रह और फिर उन का अनुवाद यदि तुलसी को अब तक लोग अनुवादकमात्र मानते होते तो किसी प्रकार का विवाद न उत्पन्न होता किंतु बीचबीच मे 'मतिअनुरूप', 'जन मन बसई', 'बहुरि विचार करौं' जैसे पद डाल देने से एक व्यापक भ्रम उत्पन्न हुआ कि रामचरितमानस अनूदित ग्रंथ नहीं बलिक तुलसी का मौलिक काव्य ग्रंथ है, और तब ये चोरी के अनुवाद चिंतनीय हो उठते हैं इस प्रकार के संदर्भ जिन्हें ढूंढने हो उन्हे अधिक श्रम नहीं करना पड़ेगा. वे किसी संस्कृत के पुस्तकालय मे जाएं और रामकथा पर उपलब्ध कोई, भी संस्कृत ग्रंथ उठा लें और उसे 'रामचरितमानस से मिला कर पढ़ते जाएं. समान प्रसंग मे अनुकरण के उदाहरण मिलते जाएंगे. एक पुस्तक समाप्त कर इसी प्रकार दूसरी, फिर तीसरी उठाए, उदाहरणों के बोझ से आप घबरा उठेंगे. मात्र 15-20 रामकथाकाव्यो के ही अवलोकन पर आप को यह भलीभांति ज्ञात हो जाएगा कि 'मानस' की सुललित रचना का मर्म क्या है?

गलत धारणाए

जो समालोचक इस प्रकार से अध्ययन नहीं करते वे भ्रांति मे फंस जाते हैं. हड़बड़ी मे हम असबद्ध प्रलाप रक बैठते हैं. इस मनोवैज्ञानिक सत्य का साहित्यिक उदाहरण रावण का वह कथन है जो सेतुबंध के समाचार पर उस के दसो मुखों से घबराहट मे निकल पड़ा था—

सुनत स्रवन वारिधि बधाना, दसमुख बोलि उठा अकुलाना.

बांध्यो वननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस,

सत्य तोयनिधि कपति उदधि पयोधि नदीस.

अब इस उक्तिवैचित्र्य पर यदि कोई समालोचक तुलसी को मनोविज्ञान का विद्वान बताने लग जाए, मानव स्वभाव के अध्ययन मे उन की गहरी पैठ की तारीफ करने लग जाए तो वह भ्रमित हो गया. यदि उस ने इस प्रकार का अध्ययन किया होता तो निम्नलिखित श्लोक उस के दृष्टिपथ मे आया होता जिस का मात्र अनुवाद तुलसी ने प्रस्तुत कर दिया है :

श्रुत्वा सागरबंधन दशशिर सर्वैर्मुखैरेकदा,

तूर्ण पृच्छति कीर्तिकान् स चकितो भीत्या पर सभ्रमात्.

बद्धः सत्यपानिधिर्जलनिधिः कीलालधिस्तोयार्ध.,

पाथोधिर्जलनिधिः पयोधिरुद्धयी वारानिधिर्वारिधिः.

मैं एक समालोचक का मत पढ़ रहा था. उन्होंने लिखा था कि तुलसी के सम्मुख सीता के नखशिखवर्णन की समस्या थी. काव्यकार अपने काव्य की नायिका का नखशिखवर्णन न करे यह कैसे हो सकता है किंतु तुलसी की काव्यनायिका सीता जगज्जननी जो थीं. तुलसी जननी का नखशिखवर्णन करें! तुलसी वह गलती नहीं करना चाहते थे जो कालिदास "कुमारसंभव" में कर गए थे कि "जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ" लिख कर शिवपार्वती को पितामाता घोषित कर के भी आठवें सर्ग में उन का संभोगवर्णन भी कर डाला. मातापिता के अंतरंग संबंधों का वर्णन पुत्र करे यह कहां तक श्लील होगा, अत: तुलसी ने नखशिखवर्णन की अनोखी रीति निकाली. सीता के नखशिखवर्णन के अधिकारी केवल राम ही हो सकते थे, मर्यादा का तकाजा था और अवसर! हुलिया तो पूरा बतलाना पड़ता है जब वस्तु गायब हो गई हो. सीताहरण के बाद राम ढूंढ़ने चलते हैं, लतातरु से पता पूछते हैं. हुलिया बतलाना पड़ेगा या नहीं? और यहां तुलसी राम के मुख से सीता का नखशिखवर्णन करा देते हैं. कितना सटीक अवसरान्वेषण है :

हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी, तुम देखी सीता मृगनैनी.
खंजन सुक कपोत मृग मीना, मधुप निकर कोकिला प्रवीना.
कुंद कली दाड़िम दामिनी, कमल सरद ससि अहिभामिनी
बरुन पास मनसिज धनु हंसा, गज केहरि निज सुनत प्रसंसा
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं, नेकु न संक सकुच मन माहीं
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू, हरषे सकल पाइ जनु राजू

—अरण्य कांड 29

यह विप्रलंभ श्रृंगारवर्णन सचमुच जिस कवि का है वह श्रद्धास्पद है और अवसरान्वेषण, कथन का आयोजन सब कुछ प्रशंसनीय है, इस में दो मत नहीं. किंतु यह तुलसी का हो तब तो! समालोचक को हनुमन्नाटक के उसी प्रसंग का निम्नलिखित श्लोकद्वय देखना चाहिए था जहां से मात्र अनुवाद कर के तुलसी ने अपना काव्यकलेवर अलंकृत कर लिया :

रे वृक्षा: पर्वतस्था गिरिगहनलता वायुना वीज्यमाना,
रामोऽहं व्याकुलात्मा दशरथतनय: शोकशुक्रेण दग्ध .
बिम्बोष्ठी चारुनेत्री सुविपुलजघना बद्धनागेंद्रकाञ्ची,
हा सीता केन नीता मम हृदयगता को भवान्केन दृष्टा.
मध्येऽपि हरिभि: स्मित हिमरुचा नेत्रे कुरंगीगणै,
कान्तिश्चम्पककुड्मलै: कलरवो हाहा हृत: कोकिलै:.
मातंगैर्गमनं कथं कथमहो हंसैर्विभज्याधुना,
कान्तारे सकलैर्विनाश्य पशुवन्नीतानि मे सैदिति

सीताहरण के ही प्रसंग की अन्य उपमाएं देखिए. सीता को रावण ले जाना चाहता है, जैसे सिंहनी को खरगोश ले जाना चाहे या जैसे अग्निहोम

मे देवताओं के लिए बने पुरोडाश को गधा खा जाना चाहे. दोनों उपमाएं अध्यात्म रामायण की हैं :

जिमि हरि बधुहि छुद्र मस चाहा,
पुरोडास चह रासभ खावा.
न मा धर्षयितु शक्तो हरेर्भार्या शशो यथा,
रासभो मन्त्रपूत तु पुरोडाशमिवाध्वरे.

सीता रावण के साथ कुररी तरह विलाप करती हुई गईः

विलपति अति कुररी की नाईं.

यहां कालिदास सहायता को आ गए हैं :

सा मुक्तकंठ व्यसनातिभाराच्चक्रन्द्र विग्ना कुररीव भूय. —रघुवश

छोटीछोटी अनेक चुटीली उपमाओं को तुलसी ने आंख मूंद कर उतार लिया है, जैसे उन्हें कोई चिंता ही न रही हो कि कभी लोग इन्हे पकड़ेंगे तो क्या कहेंगे? अयोध्या लौटने पर सुमंत की कैसी स्थिति थी :

मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई, मनहु कृपन धन रासि गवाई
—अयोध्या कांड 143

हस्तयोर्मर्दनं कृत्वा शिरः संताड्य चाकरोत्,
पश्चात्ताप महामंत्री नष्टेऽर्थे कृपणो यथा. —आनंद रामायण

विप्र विवेकी वेदविद समत साधु सुजाति,
जिमि धोख मद पान कर सचिव सोच तेहि भांति. —अयोध्या कांड 144

विवेकी वेदविद् विप्र. सुजाति साधुसम्मतः,
यथा च मदिरा पीत्वा मंत्री शोचति वै तथा. —वशिष्ठ रामायण

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी, पति देवता करम मन बानी.
रहै करमवस परिहरि नाहू, सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू.

यथा कुलोद्भवा साध्वी प्रवीणा पतिदेवता,
मनसा कर्मणा वाचा नारी कर्मवशात् प्रियम्,
त्यक्त्वा वियोगज दुःख सहते मंत्रिणस्तथा. —वशिष्ठ रामायण

हृदय न बिदरेउ पंक जिमि बिछुरत प्रीतम नीर,
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि जम जातना सरीर. —अयोध्या कांड 146

शुष्के नीरे यथा पंकं तथा हृन्न विदीयते,
अतो जानामि दैवेन दत्ता मे यमयातना. —पुलस्त्य संहिता

दशरथ अयोध्या में किस शोचनीय अवस्था में थे :

लेइ उसास सोच एहि भांती, सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती.

खैर, यह तो वाल्मीकि रामायण की उपमा थी और इस पर तो तुलसी का मौरूसी हक था :

अतदर्हं महाराजं शयानमतथोचितम्,
ययातिमिव पुण्यान्ते देवलोकात्परिच्युतम्.

राम वन से लौट कर आयोध्या आ रहे हैं. अयोध्यावासी स्वागत मे कोलाहल कर रहे हैं. तुलसी ने समुद्र मे ज्वार उठते देखा हो या न देखा हो, चंपू रामायण मे दी गई उपमा की नकल कर के समालोचको की दृष्टि मे पर्यटक भी बन गए :

राका ससि रघुपतिपुर सिंधु देखि हरषान,
बढ्यो कोलाहल करत जनु नारि तरग समान —उत्तर काड 3

राकशशिनमिव रघुपतिमालोक्य नगरसिंधु,
वनितावीचिभि. परिरम्यमाणो निर्भरामोद विदत.

नारदमोह प्रकरण मे इंद्र की स्वार्थपरता पर करारा व्यग्य है और बडी अच्छी उपमा दी गई है जिसे लोगों ने रोजमर्रा के प्रयोग मे भी तुलसी के नाम पर ग्रहण कर लिया है :

सूख हाड लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज,
छीन लेइ जनि जानि जड तिमि सुरपतिहि न लाज. —बाल काड 125

किंतु वे लोग यह नहीं जानते कि यह शिवपुराण से अनूदित है

शुष्कमस्थि गृहीत्वा श्वा सिंह दृष्ट्वा पलायित ,
विचार्येत्थ स्वमनसि किमिद न ग्रहीष्यति

अनुवाद की भाषागत भूल भी देखिए तुलसी श्वान द्वारा सिंह के देखने को 'निरखि' शब्द से व्यक्त करते हैं. निरखि मे प्रशसा तथा मुग्धता का भाव होता है जो यहा अपेक्षित नहीं. अत. 'स्वान निरखि मृगराज', 'श्वा सिंह दृष्ट्वा' का सही अनुवाद न बन पडा.

इन उदाहरणो से पिष्टपेषण करना ठीक नहीं. अत और उदाहरण प्रस्तुत करना उचित नहीं, और आवश्यक भी नहीं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है पाठक रामकथा की कोई भी सस्कृत पुस्तक उठा कर देख लें और अपने को आश्वस्त कर लें कि तुलसी ने कितनी अधिक मात्रा मे दूसरे कवियो के अलकार चुराए हैं मूल कथानक की बात और थी. किंतु यह क्या? कविकर्म की जो एकमात्र उपलब्धि है, और कवि की जो नितांत वयक्तिगत मौलिकता है उस का भी अनुवाद और वह भी बिना नाम लिए, कृतज्ञताप्रकाश किए! साहित्य का यह गर्हित अपराध है और तुलसी इस के अभियुक्त हैं ●

तुलसी का विद्रोह

भले ही तुलसीदास उच्च कोटि के भक्त और महाकवि रहे हों, लेकिन जहां तक उन की समाजनीति का संबंध है, उन से बढ़ कर दकियानूसी धार्मिक प्रवृत्तियो का अंधानुकरण करने वाला और कोई नहीं हुआ. यह ठीक है कि तुलसी में अपने युग की सामाजिक राजनीति के प्रति तीव्र विद्रोह की भावना थी, पर उन का विद्रोह नए समाज की रचना के लक्ष्य को ले कर नहीं, बल्कि दकियानूसी ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं को फिर से स्थापित करने के लिए था. यद्यपि अनेक बार तुलसी के आलोचकों ने इसे दलीलें दे कर साबित किया है तथा उन के प्रशंसकों ने भी कभी मुक्त स्वर में तो कभी दबे स्वर मे इसे स्वीकारा है, फिर भी व्यवहार में अकसर तुलसी को इस आरोप से बचा कर उन्हें हिंदू जाति व संस्कृति के रक्षक और दलित मानवता के उद्धारक के रूप मे याद किया जाता है.

कुछ प्रगतिशील आलोचक तुलसी की तरफदारी करते हुए जिस ढंग से उन के केवल सबल पक्ष को ही उभारते हैं और उन के दुर्बल पक्ष से या तो बिलकुल कन्नी काट जाते हैं या उसे महत्त्वहीन कह कर नजरंदाज कर देते हैं. उस से धैर्यवान पाठकों तक को बड़ा क्षोभ होता है.

तुलसीदास के प्रशंसक जो कुछ भी कहते हों, पर यह निश्चित है कि यदि तुलसी पुनरुद्धारक थे तो ब्राह्मण संस्कृति के, मर्यादा के, पोषक थे तो जातिप्रथा की विभेदपूर्ण मर्यादा के, और नायक थे तो दलितो के नहीं, बल्कि ब्राह्मणशाही आंदोलन के. इस संदर्भ में उन के काव्यों—विशेष रूप से 'रामचरितमानस' का बेलाग अध्ययन हमें इसी नतीजे की ओर ले जाता है.

तुलसी की अभिव्यक्ति के सामाजिक आधार भक्ति आंदोलन के सामाजिक आधार रहे. भक्ति आंदोलन मूल रूप मे एक ओर सदियो से सामंतशाही व पुरोहित वर्ग के शोषण तथा दूसरी ओर विदेशियों के अत्याचार के दोहरे चक्र के नीचे पिसती उस भारतीय जनता का विद्रोही स्वर था, जो अपनी मुक्ति के लिए बेकरार हो उठी थी.

यही कारण है कि शुरू में इस आंदोलन ने वह सब कुछ तीखे स्वर में नकार दिया, जो गलत था, बंधन और विषमता मे डालने वाला था. नामदेव, रैदास, नानक और कबीर आदि के स्वर मे शोषित जनता जाग्रत हो उठी. पंडितों व मुल्लाओं तथा मुसलिम व हिंदू सामंतो की शक्ति निर्बल होने लगी और वे मानव मूल्य स्थापित होने लगे जो दोनो धर्मों मे मानवहित को ही सर्वश्रेष्ठ कहते थे. लेकिन अफसोस, भक्ति आंदोलन का यह प्रवाह ऐतिहासिक कारणों से बहुत दिनों तक चल न सका

अकबर ने मुसलमान पुरोहित वर्ग की शक्ति को कम करने के लिए हिंदू सामंतो को मिलाया और उन्हें ऊंचेऊंचे पद दिए. हिंदुओं को धार्मिक स्वतंत्रता और यहा तक कि पुराने और नए मंदिरो को बनवाने की छूट भी मिली. मथुरा के पठान और धर्मांध शासक को हटा कर उस ने वल्लभाचार्य को अपना मित्र बनाया.

इस मुसलिम और हिंदू सामंती मिलीभगत का फल यह हुआ कि भक्ति आंदोलन मे जननेतृत्व समाप्त हो गया और सामंतवाद के पोषक ब्राह्मणवाद को वैष्णव सुविधाओं के आधार पर फिर पनपने का मौका मिला.

ब्राह्मणवाद के प्रवक्ता

चूंकि अब हिंदुओं का इसलाम के अंतर्गत जाने का खतरा पहले से कम हो गया था इसलिए प्राचीन वेदमर्यादा यानी वर्णाश्रमयुक्त ब्राह्मण नेतृत्व वाली सामाजिक मर्यादा के गौरव गान फिर आरंभ हुए और हिंदू समाज को परंपरागत, किंतु कुछ उदार ब्राह्मणवादी आधारों पर पुनर्गठित करने की कोशिश की गई कबीर आदि ने पुराने बंधनों को तोड़ने के लिए विद्रोह का नारा बुलंद किया था परंतु जिन पर इस का बहुत कुछ प्रभाव पड़ भी रहा था, वे कुछ छूटें दे कर फिर कस दिए गए. कहने की आवश्यकता नहीं कि तुलसीदास इस उदार ब्राह्मणवादी आंदोलन के सब से बड़े प्रवक्ता थे.

यह बात उस समय और साफ हो जाती है, जब हम कबीर आदि की पूर्ववर्ती निर्गुण भक्तिधारा की तुलना सावधानी से तुलसी की सगुण भक्तिधारा से करते हैं. यह सही है कि सगुण भक्तिधारा ने निर्गुण भक्तिधारा के दबाव से उस की अनेक जनवादी बातें स्वीकार कीं, लेकिन अपने पुरातनवादी रूप के द्वारा सामाजिक क्षेत्र मे उस की क्रांतिकारिता को कुंठित कर के समय की सुई को पीछे ले जाने की कोशिश भी की.

फिर इसलामी खतरे के कारण शोषित और दलित जनता को उस समय कुछ छूटें मिलीं, लेकिन बाद मे जब यह संकट टल गया तो ये छूटें एकाएक कर के छीन ली गईं. इस की पुष्टि इस बात से हो सकती है कि जाति प्रथा जितनी दृढ आज है, उतनी नामदेव दर्जी, सेना नाई, धोबा कहार, रैदास चमार और कबीर जुलाहे के समय मे न थी. ('स्थायी मूल्य और मूल्यांकन' :

डाक्टर रामविलास शर्मा, पृष्ठ 36.)

वास्तव में हमारे यहां ब्राह्मण नेतृत्व बहुत चतुर और प्रबुद्ध रहा है. उस ने परिस्थितियों के भंवर में पड़ कर समयसमय पर स्वयं को बचाने के लिए वर्णव्यवस्था को उदार बनाने की कोशिश भी की है किंतु जहां दबाव कम हुआ, उस ने उसे चुपके से फिर ज्यों का त्यो बना देने मे तनिक देर नहीं लगाई.

प्रतिभा पर कलक

इस संदर्भ में जब हम तुलसी के काव्य की छानबीन करते हैं तो उन की नीयत अपनेआप स्पष्ट हो जाती है. वर्णव्यवस्था का समर्थन, ब्राह्मणों के महात्म्य का वर्णन तथा शूद्र नारी की निंदा के बारे में जो अनेक उक्तियां उन के काव्यों में, विशेषतः 'रामचरितमानस' में देखने को मिलती हैं, वे उन की उज्ज्वल काव्य प्रतिभा पर निश्चय ही कलंक हैं. इन से ही क्षुब्ध हो कर अकसर उन पर वर्णव्यवस्था का भोंडा समर्थन व पंडेपुजारियों की वकालत करने तथा जातीय रागद्वेष की हामी भरने का आरोप लगाया जाता है, जो असत्य नहीं है. शूद्र निंदा संबंधी उन के कथन वाकई बड़े अशोभनीय हैं.

इन आरोपों को सिद्ध करने के लिए तुलसी के काव्य से अनेक उद्धरण सरलता से दिए जा सकते हैं. जहां तक कलिकाल के प्रभाव से वर्णाश्रम हानि तथा देवविप्रश्रुति विरोध की बात का संबंध है, वह इस विषय पर इतना और इतनी बार कहते हैं कि शक होने लगता है कि कहीं उन की नजरों में कलियुग की मुख्य पीड़ा वर्णाश्रम हानि तथा देवविप्रश्रुति विरोध आदि ही तो नहीं है.

मानसकार शोषित जनता के उत्पीड़न से उतना व्यथित नहीं लगता, जितना ब्राह्मण संस्कृति के विघटन से परेशान मालूम होता है. विप्र (ब्राह्मण), धेनु (गाय), सुर आदि के प्रति तुलसी के मन मे विशेष पक्षपात का भाव है. यह बात इस से साबित हो जाती है कि 'रामचरितमानस' में उन्होंने इस बात की बारबार घोषणा की है कि राम इन के हितैषी हैं, इन के लिए ही जन्म लेते हैं और संकट सहते हैं.

गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रियकंता.—बालकांड, 185 I

(हे गायों व ब्राह्मणों का हित करने वाले, असुरों का विनाश करने वाले, समुद्र की कन्या—लक्ष्मी के प्रिय स्वामी, आप की जय हो.)

जय सुर विप्र धेनु हितकारी, जय मद मोह कोह भ्रम हारी

—बालकांड, 284.I

(हे देवता, ब्राह्मण और गाय का हित करने वाले, आप की जय हो. हे मद, मोह, क्रोध और भ्रम को हरने वाले, आप की जय हो.)

विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार.—बालकांड, 192

(ब्राह्मण, गाय, देवता और संतों के लिए भगवान ने मनुष्य का अवतार लिया)

भगति भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल,
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहि जगजाल —अयोध्याकांड, 93

(कृपालु रामचंद्रजी भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गाय और देवताओं के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण कर के लीलाएं करते हैं, जिन के सुनने से जगत के जंजाल मिट जाते हैं)

गो द्विज धेनु देव हितकारी, कृपासिंध मानुष तन धारी —सुंदरकांड, 38 2

(कृपा के समुद्र भगवान ने पृथ्वी, ब्राह्मण, गाय और देवताओं का हित करने के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है)

निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गो द्विज लागि.—किष्किंधाकांड, 26

(देवता, पृथ्वी, गाय और ब्राह्मणों के लिए प्रभु अपनी इच्छा से अवतार लेते हैं.)

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं, विप्र धेनु हित संकट सहहीं

—अयोध्याकांड, 130 1

(जो अवगुणों को छोड़ कर सब के गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गाय के लिए संकट सहते हैं)

'रामचरितमानस' में ही प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में ब्राह्मण महात्म्य का इतना और ऐसा वर्णन हुआ है कि कभीकभी लगने लगता है कि उस में रामपदप्रेम यानी राम की श्रेष्ठता से बढ़ कर न सही, उस से थोड़ा ही घट कर यदि कुछ है तो विप्रपदप्रेम यानी ब्राह्मण की श्रेष्ठता ही है. उदाहरणार्थ कुछ अंश उद्धृत हैं

मंगल मूल विप्र परितोषू, दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू

—अयोध्याकांड, 125.2

(ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है)

भगति कि साधन कहउ बखानी, सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी
प्रथमहिं विप्र चरन अति प्रीती, निजनिज कर्म निरत श्रुति रीती

—अरण्यकांड, 15.3

(मैं भक्ति के साधन विस्तार से कहता हूं. यह सुगम मार्ग है जिस से जीव मुझे तो सहज ही पा जाते हैं पहले तो ब्राह्मणों के चरणों में अत्यंत प्रीति हो और वेद की रीति के अनुसार अपनेअपने वर्णाश्रम कर्मों में लगा रहे)

मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव,
मोहि समेत बिरंचि सिव, बस ताके सब देव —अरण्यकांड, 33

(मन, वचन और कर्म से कपट छोड़ कर जो भूदेव ब्राह्मणों की सेवा करता है, मुझ समेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उस के वश में हो जाते हैं)

ते नर प्रान समान मम, जिन्ह के द्विज पद प्रेम —सुंदरकांड, 48

(जिन्हें ब्राह्मणो के चरणो मे प्रेम है, वे मनुष्य मेरे प्राणो के समान हैं.)

पुन्य एक जग महु नहिं दूजा, मन क्रम वचन विप्र पद पूजा.
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा, जो तजि कपटु करई द्विज सेवा

—उत्तरकांड, 44 4

(जगत मे पुण्य एक ही है, दूसरा नहीं. वह है--मन,कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणो की पूजा करना. जो कपट का त्याग कर के ब्राह्मणो की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं.)

सुनु मम वचन सत्य अव भाई, हरितोपन व्रत द्विज सेवकाई.

—उत्तरकांड, 108.6

(हे भाई, अव मेरा सत्य वचन सुनो, द्विजो की सेवा ही भगवान को प्रसन्न करने वाला व्रत है.)

द्विज निंदक वहु नरक भोग करि, जग जनमइ वायस सरीर धरि.

—उत्तरकांड, 120 12

(ब्राह्मणो की निंदा करने वाला व्यक्ति वहुत से नरक भोग कर फिर जगत मे कौए का शरीर धारण कर के जन्म लेता है.)

ब्राह्मणों के महत्त्व की स्थापना का यह प्रयास सारे हिंदी साहित्य मे अनूठा है. किंतु तुलसी को इतने से ही संतोष न हुआ. ब्राह्मण की श्रेष्ठता की स्थापना के लिए उन्हें शूद्र निंदा भी आवश्यक लगी. यह उन का सव से घिनौना पक्ष है. 'रामचरितमानस' के ये शव्द किसी महाकवि के प्रतीत न हो कर एक साधारण असहिष्णु कट्टर ब्राह्मण के मालूम पड़ते हैं :

सापत ताडत परुप कहता, विप्र पूज्य अस गार्वाह सता
पूजिअ विप्र सील गुन हीना, सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना.

—अरण्यकांड, 33 1

(शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं. शील और गुण से हीन ब्राह्मण भी पूजनीय है लेकिन गुणो से युक्त, ज्ञान मे निपुण शूद्र भी पूजनीय नहीं है.)

ढोल गवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी.

—सुंदरकांड, 58.3

(ढोल, गंवार, शूद्र, पशु और नारी ये सव दंड के अधिकारी हैं)

सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना, वैठि वरासन कहहिं पुराना

—उत्तरकाड, 99 5

(शूद्र नाना प्रकार के जपतप और व्रत करते हैं तथा ऊंचे आसन--व्यास गद्दी--पर वैठ कर पुराण कहते हैं)

(नोट : ऊपर दिए गए सारे उद्धरण और उन के अर्थ गीता प्रेस, गोरखपुर के 'रामचरितमानस' (सटीक) के मझले आकार वाले 17वें संस्करण मे उद्धृत हैं)

जातिप्रथा के समर्थक

तुलसी प्राचीन वर्णव्यवस्था के जिस गुणगान द्वारा ब्राह्मणों को बचाने की असफल कोशिश करते हैं, उस से उन के परवर्ती दूषित रूप यानी जातिप्रथा के ही कट्टर समर्थक सिद्ध होते हैं. उन के काव्यों मे पाई जाने वाली अनेक उक्तियां उन की घोर अगतिशील और यथास्थितिवादिता को बेनकाब करने के लिए काफी हैं फिर भी हमारे कतिपय आलोचकों के मन मे यह भ्रम बना हुआ है कि तुलसीदास मे उदार और जनवादी तत्त्व भली प्रकार मौजूद हैं इस की पुष्टि करने के लिए राम द्वारा शबरी के यहा जा कर उस के जूठे बेर खाने, वशिष्ठ द्वारा केवट को गले लगाने, निषाद को राम के मुख से 'भरत सम' भ्राता कहलवाने, 'कवितावली' (उत्तरकांड, 106-107) और 'विनयपत्रिका' (पद 76, 106) मे जातिवाद के प्रति लापरवाही और व्यंग्योक्तियां करने आदि के प्रमाण दिए जाते हैं.

किंतु यहा यह प्रश्न उठता है कि जब तुलसी जातिपांति और ऊंचनीच के भेदभाव के हक मे नहीं थे तो उन्होंने अपनी रचनाओं मे वर्णव्यवस्था की हानि पर पीडा क्यों व्यक्त की है? विप्रपद पूजा को बहुत बड़ा धर्म क्यों कहा है? और शूद्रों द्वारा अपना वर्ण त्यागने तथा ब्राह्मणों की बराबरी करने पर क्षोभ क्यों प्रकट किया है? उन के विचारों मे यह अंतर्विरोध कैसा? क्या इस की सफाई मे कोई व्याख्या हो सकती है, कोई स्पष्टीकरण हो सकता है?

तत्कालीन वातावरण

इसे समझ लेना बहुत कठिन नहीं है, बशर्ते हम तुलसी के युग के सामाजिक, धार्मिक तथा ऐतिहासिक वातावरण को भली प्रकार समझ लें. यह बात हम मे से बहुत से लोगों को आज कितनी ही तीखी क्यों न लगे, लेकिन इस मे जरा भी शक नहीं है कि धार्मिक व उपासना संबंधी रियायतों व छूटों के कारण सामाजिक कट्टरता व विषमता की रक्षा की कोशिश हमारे सांस्कृतिक इतिहास की मुख्य प्रवृत्ति रही है. तत्कालीन भक्ति आंदोलन को बढ़ावा देने वाले रामानुजाचार्य तथा रामानंद जैसे व्यक्ति भी इस से बच न सके इन की भक्ति भी केवल उच्च वर्ण वालों के वास्ते थी, शूद्रों के लिए तो उन्होंने प्रपत्ति मार्ग की व्यवस्था की थी जो भक्ति का एक निम्न विकल्प था.

रामानंद ने हालांकि भक्ति का द्वार सब के लिए खोल दिया, लेकिन वेद पढ़ने का अधिकार शूद्रों के लिए अमान्य ठहराया तथा जातिप्रथा को सामाजिक व्यवस्था के रूप मे कायम रखा.

यद्यपि तुलसी इसी परंपरा का अनुगमन कर रहे थे, फिर भी जहा रामानुजाचार्य तथा रामानंद को अपने समय मे थोडा आगे होने के कारण क्षम्य माना

जा सकता है, वहा तुलसी को ऐतिहासिक दृष्टि से उन के अंधानुकरण के आरोप से बरी नहीं किया जा सकता. इस के अलावा मानव मात्र की सामाजिक समता की पुकार भी, जिस का बीड़ा पूर्ववर्ती कबीर, नामदेव, नानक आदि ने उठाया था, तुलसी मे कहीं दिखाई नहीं देती. उन्होंने शूद्रों को अधिक से अधिक भक्ति के क्षेत्र मे छूट दी थी. उन के विचारो मे पाए जाने वाले अंतर्विरोध की यही तर्कसंगत व्याख्या हो सकती है.

नारी के प्रति संकीर्णता

नारी के प्रति घोर संकुचित मनोवृत्ति तुलसी के दकियानूसी सामाजिक अंधानुकरण का एक और पक्का सबूत है. उन के 'रामचरितमानस' तथा अन्य ग्रंथो मे विभिन्न प्रसंगो में ऐसी अनेक उक्तियां हैं जो किसी भी देश और काल की नारी के प्रति किसी भी रूप मे न्यायिक नहीं हो सकतीं. उन्होने नारी की प्रकृति, उस के चरित्र, बुद्धिविवेक, आचारविचार एवं व्यवहार सभी की निंदा की है.

तुलसी के समर्थकों के द्वारा कभीकभी इन निंदाभरी उक्तियो को संतमत का प्रभाव तथा परंपरा का अनुगमन मात्र कह कर टालने और हलका कर के प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है. किंतु ऐसे लोगो से यहां यह पूछा जा सकता है कि संतमत और परंपरा में अन्य अनेक बातें भी तो थीं, आखिर तुलसी ने उन्हें क्यों नहीं अपनाया? नारी के संबध में ही बहुत पहले कहा गया था: "यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता." इस धारणा को वह परंपरा के नाते ग्रहण कर सकते थे पर उन्होंने नारी की पूजा के बदले उस की हीनता व ताड़ना आदि का ही उल्लेख अधिक किया.

असल बात यह है कि नारी के बारे मे तुलसी की दृष्टि अधिकांश मे मध्यकाल के साधारण पुरुष की ही धारणा है. शूद्रो के समान नारी को भी तुलसीदास ने केवल भक्ति के क्षेत्र मे समानाधिकार दिया था, सामाजिक क्षेत्र मे नहीं.

यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं.

कैलाश निवास के समय जब पार्वती शिव से रामकथा सुनना चाहती हैं, तब तुलसी पार्वती से कहलवाते हैं :

अब मोहि आपनि किंकरी जानी, जदपि सहज जड नारी अयानी.
प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहु, जो मो पर प्रसन्न प्रभु अहहु.

(यद्यपि स्त्रियां स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन होती हैं, पर अब मुझे अपनी दासी जान कर, यदि मुझ पर प्रसन्न हैं, तो जो कुछ मैं ने आप से पूछा है, वह सब कहें.)

दशरथ की मृत्यु के पश्चात तुलसीदास भरत से कहलवाते हैं :

विधिहु न नारि हृदयगति जानी, सकल कपट अघ अवगुन खानी

(स्त्री के हृदय की गति को विधाता भी नहीं जान सकता. स्त्री का हृदय सभी तरह के कपट, पाप और अवगुणों की खान होता है.)

नारी का अपमान

सीताहरण के बाद राम को रास्ते में भीलनी मिलती है. उस समय वह तुलसीदास के इशारे पर नारी निंदा करती है :

अधम ते अधम अधम अति नारी, तिन्ह महं मैं मतिमंद अघारी

(हे पाप का नाश करने वाले, जो नीचों में नीच हैं, स्त्रियां उन में भी नीच हैं. मैं भी मंदबुद्धि और गंवारिन हूं.)

केवल इतना ही नहीं, एक स्थान पर स्वयं राम कहते हैं

अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि

(स्त्रियां अवगुणों की जड़, पीड़ा देने वाली और सब दुखों की खान हैं.)

अंत में निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भले ही भक्ति के क्षेत्र में तुलसी ने उदार दृष्टि अपनाई हो, पर सामाजिक विधान में उन्होंने जो एक विशेष वर्ग को विशेषाधिकार दिए, शूद्रों व नारियों को निचली श्रेणी दी तथा मर्यादा के नाम पर दूषित जाति प्रथा की तरफदारी की, वह घोर दकियानूसी होने के कारण अक्षम्य है. कुल मिला कर उन का दृष्टिकोण प्रबुद्ध ब्राह्मणवाद, कट्टर ब्राह्मणवाद से भी अधिक खतरनाक सिद्ध हुआ क्योंकि इस ने ब्राह्मणशाही के उखड़ते हुए पैर एक बार फिर सदियों के लिए देश की धरती पर मजबूती से जमा दिए.

●

तुलसी का मानस

संवत 2031 में, रामनवमी के दिन तुलसी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' के चार सौ वर्ष पूरे हो गए. राष्ट्रीय स्तर पर 'रामचरित मानस' के चतुश्शती समारोह का आयोजन हुआ. इस के लिए एक राष्ट्रीय समिति बनाई गई थी. इस समिति के कार्यकारिणी के सदस्यों में डाक्टर कर्णसिंह, सेठ गोविंददास और श्रीसत्यनारायण सिन्हा को छोड कर, अन्य सात सदस्य ब्राह्मण वंश के ही थे. हालांकि इन सभी सदस्यों की प्रसिद्धि एवं योग्यता में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी, लेकिन लगता है कि तुलसी के इस कथन "पूजिअ विप्र..." की दुर्गंध इस संगठन से निकल रही थी.

इस समिति का एक भी सदस्य न अहिंदी भाषी था और न ही मध्य, दक्षिण अथवा किसी अहिंदी क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करता हुआ तब क्या समझा जाए कि हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि मे एक वर्ग विशेष के लिए लिखा गया 'मानस' का प्रदर्शनमात्र करना ही इस 'मानस' चतुश्शती समारोह का ध्येय था?

इस समारोह के ध्येयप्राप्ति से संबद्ध 'प्रतिष्ठानपत्र' मे कहा गया था "पिछले चार सौ वर्षों से 'रामचरित मानस' कोटिकोटि. नरनारियो के हृदय को आलोकित करता रहा है तथा उस के सामाजिक जीवन में ज्योतिस्तंभ के समान मार्गदर्शक रहा है इसलिए तुलसी और 'मानस' के प्रति श्रद्धा अपेक्षित है."

अब देखना है कि 'मानस' में तुलसी द्वारा उपर्युक्त ध्येय की पूर्ति कहां तक हो पाई है.

तुलसी को चिंतक, दार्शनिक, समन्वयवादी, लोक नायक, कविकलाकार आदि गुणो से विभूषित किया जाता है. कहा जाता है कि तुलसी ने 'नानापुराण निगमागमों' की बात को 'मानस' मे उतारा है. इस के अलावा 'कुछ और' भी कहा है और यही 'कुछ और' कहना तुलसी की अपनी विशेषता है. यह भी कहा जाता है कि तुलसी ने 'मानस' मे तत्कालीन समाज का जीताजागता चित्र खींचा

है, भ्रष्ट होती हिंदू जाति के उद्धार के नुसखे बताए हैं, एक अनोखे 'रामराज्य' की कल्पना की है

लेकिन समग्र 'मानस' पढ़ जाने के बाद भी मन में कोई बात ढंग से जमती नहीं और न कोई साफ खाका ही सामने आता है. हां, भक्ति का एक बहकावा, जो मात्र गरीब हिंदू परिवारों की झोपड़ियों तक ही सीमित है, 'मानस' में प्रतिष्ठित किया गया है.

देहात का आदमी हूं सुना है, 'मानस' के राम की अंधी भक्ति में कुछ भावुक भक्त इतने आत्मविभोर हो जाते हैं कि वह यह कहते हुए अपनी आंखों से आंसू बहाने लगते हैं . "बरसात का मौसम है. भरत ने राम की कमरी छीन ली है न जाने किस पेड़ के नीचे मेरे राम भीजते होंगे! "

लगता है कि इसी बुनियाद पर भारतीय भाषाविद विदेशी विद्वान जार्ज ग्रियर्सन ने कहा होगा कि भारत के गांवों में जितना प्रचार और प्रसार 'मानस' का है, उतना इंगलैंड में बाइबिल का भी नहीं है ग्रियर्सन महोदय का क्षेत्र उत्तरी भारत ही था और विशेषकर 'मागधी' और 'अर्द्ध मागधी' भाषाओं से निकली बोलियों पर वह कुछ लिख रहे हैं बुद्धिजीवियों में 'मानस' का क्या रूप है, इस का उन्हें पता नहीं था

अब समय आ गया है कि 'मानस' का सही खाका सामने आना चाहिए. जब तक यह सार्वभौमिक, सामाजिक कल्याण के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं होता, तब तक इस की उपयोगिता नहीं मानी जाएगी.

जिन गुणों के लिए तुलसी सराहे जाते हैं, उन में से एकएक की चर्चा यहां जरूरी है.

तुलसी को दार्शनिक कहा जाता है उन की जानकारी की सराहना करते हुए यह कहा जाता है कि उन्होंने तत्कालीन प्रचलित सभी भारतीय दर्शन-पद्धतियों की बात 'मानस' के माध्यम से कही है 'अद्वैत,' 'विशिष्टाद्वैत,' 'शुद्धाद्वैत,' 'द्वैताद्वैत,' 'निर्गुणसगुण' की बहती धाराओं में उन्होंने विद्वानों को एक कर दिया है. लेकिन इन में से कौन सा संप्रदाय, कौन सा दर्शनमार्ग वह उचित एवं उपयोगी समझते हैं, 'मानस' में कहीं भी स्पष्ट वर्णित नहीं है लगता है कि वह 'विशिष्टाद्वैती' हैं. लेकिन बात उभरती है 'अद्वैत' की. सगुण के प्रति उन की आस्था है, लेकिन प्रतिपादित करते हैं वह निर्गुण की बात फिर वह सगुण और निर्गुण के भेद को भी नहीं मानते. कर्म, ज्ञान और भक्ति की बात वह जरूर उठाते हैं, लेकिन उसी घुमाव और अस्पष्टता के साथ भक्ति और ज्ञान में भी वह भेद नहीं मानते—'भगतहि, ज्ञानहि नहिं कछु भेदा,' लेकिन भक्ति को सहज व उत्तम और ज्ञान को दुरूह व दूसरी पंक्ति का मानते हैं. इसी लिए वह कहते हैं .

'ज्ञान पंथ कृपान कै धारा'—ज्ञान का रास्ता तलवार पर चलने के समान है, और भक्ति :

'राम भगति सोई मुकुति गोसाईं, अनइच्छित आवइ बरि आई.'

जीवन में मुक्ति पाने के लिए राम की भक्ति जरूरी है और वह मन की इच्छा मात्र से ही भगवान की कृपा से वरवस मिल जाती है.

कहने का मतलब यह है कि 'मानस' मे जीवनदर्शन की कोई दिशा न स्पष्ट वर्णित है और न उन में से किसी को अपनाने की ही स्पष्ट बात कहीं पर उरेही गई है. 'उत्तर कांड' का उत्तरार्द्ध ऐसे ही वाग्जालों से भरा पड़ा है.

कहा जाता है कि तुलसी युगद्रष्टा थे वह महान चिंतक थे. लेकिन चिंतक के सारे प्रयास सार्वभौमिक होते हैं. चिंतन का अर्थ ही है सर्वव्यापी सत्य का उदघाटन. चिंतक की यह लाचारी ही समझिए कि वह कभी भी किसी व्यक्ति विशेष अथवा वर्ग विशेष की बात ही नहीं उठाता. उस का चिंतन भले ही उस के युग में मान्यता न प्राप्त कर सके, कालांतर में वह सर्वग्राही होता ही है. तुलसी चिंतक की हैसियत से खरे नहीं उतरते. उन्होंने 'मानस' मे जाति अथवा वर्ग विशेष की हिमायत ही नहीं की, उस का पूरा पोषण भी किया है. अपने समर्थन में उन्होंने प्रतिपक्ष की घोर निंदा की है :

पूजिअ विप्र सकल गुन हीना, सूद्र न गुनगन ज्ञान प्रवीना (अरण्यकांड)

सभी गुणों से हीन भी विप्र (ब्राह्मण) सदा पूजा करने योग्य है पर ज्ञानबुद्धि से भरपूर भी शूद्र सम्मान के लायक नहीं है :

बुद्धि बल सील सत्य सब मीना, बमी सम तिय कहहिं प्रवीना।

(अरण्यकांड)

राम नारियों की निंदा करते हुए नारद को समझाते हैं कि पुरुष मे विद्यमान बुद्धि, बल, शील और सत्य आदि सद्गुणो का स्त्रियां वैसे ही गला घोट देती हैं जैसे बंसी मछली के गले मे घुस कर उस के प्राण ले लेती है.

राखिय नारी यद्यपि उर माही, युवती शास्त्र नृपति बस नाही

(अरण्यकांड)

राम लक्ष्मण से कहते हैं कि अत्यधिक प्रेम के कारण नारी को चाहे अपने हृदय मे ही क्यों न रखा जाए, वह पुरुष के वश मे कभी नहीं रहती

अधम जाति मैं विद्या पाए, भयऊ यथा अहि दूध पिलाए. (उत्तरकांड)

काग गरुड़ से कहता है कि विद्या पाने से नीच जाति का अहं वैसे ही बढ़ जाता है जैसे दूध पिलाने पर सर्प मे विष बढ़ता है.

नारि स्वभाव सत्य कवि कहई, अवगुन आठ सदा उर रहई,
साहस, अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशोच, अदाया

(लंकाकांड)

रावण मंदोदरी से कहता है कि कवियों ने नारियो के स्वभाव में जिन आठ अवगुणों को बताया है वह बिलकुल सत्य हैं. नारियो के आचरण मे साहस, झूठ, चपलता, प्रपंच, भय, मूर्खता, अपवित्रता और निष्ठुरता; ये आठ गुण हमेशा ही मौजूद रहते हैं.

तब फिर उपर्युक्त बातों के आधार पर तुलसी को समन्वयवादी या लोकनायक का पद देना कहां तक उचित है? कहा जाता है कि बुद्ध के बाद भारतीय समाज के लोकनायक तुलसी थे. दरअसल बुद्ध लोकनायक माने जा सकते हैं, लेकिन तुलसी नहीं.

भारत का लोकनायक वही हो सकता है जो भारत की अधिकांश जनता की आस्थाओं, इच्छाओं, मान्यताओं का समन्वय कर, एक सर्वग्राह्य मार्ग का निर्माण कर सके. बुद्ध रूपवान थे. संपत्ति वाले थे. वह सभी विद्याओं, कलाओं के जानकार एक राजकुमार थे सुखवैभव की सभी सामग्रियां उन के चरण चूमती थीं. उन्हें पत्नी भी परम सुंदरी मिली थी लेकिन बुद्ध ने सहजता से इन सभी को छोड़ दिया. वनवन घूम कर घोर तपस्या की. ज्ञानप्राप्ति के बाद जातिविहीन, वर्गविहीन समाज की रचना में अपना जीवन लगा दिया.

क्या तुलसी ने भी ऐसा कुछ किया? उन का 'मानस' सांप्रदायिकता की दुर्गंध वर्गसंघर्ष की दुर्भावना से भरा हुआ है. सवर्ण होने के नाते उन्होंने इस से इतर वर्णों की निंदा की है. पत्नी की फटकार से ही उन्होंने असहजता से संन्यास ग्रहण किया था. इसी लिए नारियों के संबंध में उन्होंने उपर्युक्त घृणा से भरी ये बातें कही हैं.

किसी भी महान ग्रंथ को पढ़ने के बाद और खास कर यदि वह कोई काव्य ग्रंथ हो तो हृदय पर उस का एक समन्वित प्रभाव होता है, मन में एक उद्वेलन पैदा होता है. 'मानस' पढ़ने के बाद हृदय पर कोई समन्वित प्रभाव पड़ना अनुभव नहीं होता मानसकार ने अपने ग्रंथ का समापन अधोलिखित दोहे में किया है.

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम,
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम (उत्तरकांड)

कवि निहोरा मांगता है कि जैसे कामी पुरुष को नारी, लोभी को धन अत्यंत प्रिय होता है, उसी प्रकार हे राम, तुम मुझे हमेशा प्यारे लगते रहो.

उपर्युक्त कथन की वाहवाही में 'मानस' समर्थक खिल उठते हैं कहते नहीं अघाते कि 'वाह, तुलसी ने क्या कमाल का लिखा!' लेकिन वे नहीं सोचते कि तुलसी का यह कथन उन की ग्रंथियों में व्याप्त कामकुंठा का द्योतक है. और यदि प्रभाव की दृष्टि से भी इस कथन की सार्थकता को समझा जाए तो लगेगा कि पाठक का इस से न 'काम' के प्रति ही कोई लगाव हो पाता है और न ही 'निर्वेद' के प्रति कोई निष्ठा जागती है यह कथन निपट बकवास बन कर ही रह जाता है

तुलसी का 'मानस' मानव जगत नहीं, धार्मिक और कल्पना का जगत है. मानव जगत की रचना वर्गसंघर्ष समाज की रचना के मध्य ही हो सकती है, ऐसा तुलसी ने 'मानस' में कहीं नहीं किया है.

'मानस' का आरंभ देवीदेवताओं की वंदना से आरंभ होता है, जिस में

स्थानस्थान पर कवि की स्वयं की गर्वोक्तियां भी मिलीजुली हैं. और कवि कहता है.

कवि विवेक एक नहिं मोरे, सत्य कहऊ लिखि कागद कोरे. (बालकाड)

बिना लिखे कागज पर हस्ताक्षर कर के मैं कह सकता हूं कि मुझे कवि की बुद्धि और प्रतिभा एकदम है ही नहीं.

और दूसरी ओर उसे अपनी कवित्वशक्ति का पूरा अहसास भी है, जिसे वह अपने भावी आलोचकों को चेतावनी देते हुए कहता है:

खल परिहास होइ हित मोरा, काल कहहिं कल कठ कठोरा.
नृप किरीट तरुनी तन पाई, लहहिं सकल सोभा अधिकाई.
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहही, उपजहिं अनत, अनत छवि लहही.
(बालकाड)

यद्यपि मणि, माणिक्य और मुक्ता क्रमशः सांप, पर्वत और हाथी के मस्तक से प्राप्त होते हैं, लेकिन उन की वहां कोई शोभा नहीं होती. राजाओं के मुकुट और सुंदरियों के नए शरीर पर जब वे धारण किए जाते हैं, तभी उन की शोभा बढ़ती है. उसी तरह अच्छे कवियों की कविताएं पैदा तो कहीं और होती हैं और उन के अर्थ की सुंदरता कहीं और खिलती है.

समग्र 'बालकांड' इतनी अलौकिक कथाओं से भरा है जिन की न कोई सार्थकता है और न उपयोगिता. साहित्य वह है जिस का युग के अनुकूल मूल्यांकन करने पर वह खरा उतरे. 'मानस' निरा अलौकिक काव्य सा लगता है. लौकिक धरातल की बात उस मे बहुत कम कही गई है.

'बालकांड' में 'मानस' की कथा का आरंभ दुरूह सांग रूपक के माध्यम से किया गया है, जिस में कवि की कवित्व-शक्ति का दंभ ही दिखता है, रस की धार उस से नहीं निकलती.

ऐसा कहा गया है कि 'मानस' के राम शील, शक्ति और सौंदर्य के रूप मे चित्रित हैं. लेकिन इन मे से कोई भी रूप कहीं भी साफ उभरता नजर नहीं आता. शीलवान वह है जो शक्ति होते हुए भी अपने आचरण में इतना सयत रहे कि समाज उस पर उगंली न उठा सके. 'मानस' के राम ऐसे नहीं बन पाए.

सुग्रीव और बालि दोनों भाइयों में मनमुटाव हुआ. राम ने अपने स्वार्थ के लिए सुग्रीव को अपनी ओर कर लिया और बालि को बाणो से बेधा. एक बार भी उन्होने प्रयास तक नहीं किया कि दोनो भाइयो को एक साथ बैठा कर उन का विभेद मिटा दें. कुछ बातें बालि की भी सुन लें. राम से अच्छे तो श्रीकृष्ण थे, जिन्होंने महाभारत के आरंभ से पहले स्वयं दूत बन कर कौरवो को समझाने और युद्ध से दोनो दलो को अलग रहने के लिए (चाहे दिखावे के लिए ही सही) कुछ प्रयास किया था. राम द्वारा बालि का वध हुआ. मरते समय आदमी प्रायः सच्ची बात बोलता है, हृदय की निष्कपट बात खोलता है.

वालि ने भी वही कहा :

धर्म हेतु अवतरेहु, गोसाईं, मारेहु मोहि व्याध की नाईं' (किष्किंधाकांड)

राम की भर्त्सना करते हुए वालि कहता है कि हे राम, यदि आप ने धर्म के उद्धार के लिए अवतार लिया है तो मुझ पर वहेलिए की तरह निष्ठुर हो कर प्राणघातक वाण क्यों चलाया ?

राम के पास इस का कोई उत्तर नहीं था. झट से उन्होंने वालि पर महाभियोग लगाया.

अनुज वधू भगिनी सुत नारी, सुनु सठ कन्या सम ये चारी,
इन्हहि कुदृष्टि विलोकइ जोई, ताहि वधे कछु पाप न होई.

(किष्किंधाकाड)

राम वालि से अपनी सफाई देते हुए कहते हैं कि छोटे भाई की पत्नी वहन, पतोहू और पुत्री के समान है. इन में से किसी के ऊपर यदि कोई बुरी दृष्टि रखता है तो वह वध करने लायक है. ऐसे पापी के वध से पाप नहीं लगता.

लेकिन राम को लगा कि उन का यह महाभियोग वालि पर सत्य सावित नहीं हो रहा है, अन्यथा दूसरी वात कहने की तत्काल उन्हे जरूरत क्या थी? राम कहते हैं :

मूढ तोहि अतिसय अभिमाना, नारि सिखावन करसि न काना.

(किष्किंधाकाड)

ऐ मूर्ख वालि, तू अपने अभिमान मे इतना चूर हो गया था कि अपनी पत्नी के सुझाव को तू ने अनसुना कर दिया.

फिर राम को लगा कि यह दूसरी वात भी शायद गलत निकली. उन्होंने तब तीसरी वात कही जिस मे उन की अशीलता की पराकाष्ठा है.

मम भुज बल आश्रित तेहि जानी, मारा चहसि अधम अभिमानी.

(किष्किंधाकांड)

राम अपना वखान करते हुए कहते हैं कि ऐ नीच वालि, मेरी भुजाओ के वल के सहारे पलने वाले सुग्रीव को तू ने मारने का दुसाहस क्यों किया?

वालि इस अभद्र व्यवहार और असंयमित वल के सामने चुप न रहता तो क्या करता? फिर राम की ओर से ऐसे व्यवहार की उम्मीद भी उसे नहीं थी.

हमे वैसा राम भी नहीं चाहिए जो गुणवान, बलवान होते हुए भी प्रेम की भूखी किसी नारी पर हाथ उठाए. उस के नाककान काट कर अपनी अभद्रता और अपनी खोखलाहट का प्रमाण पेश करे. भारतीय संस्कृति की दुहाई देने वाला कोई भी व्यक्ति किसी अवला को इस तरह की सजा देने की वात सोच ही नहीं सकता. राम जैसे शक्तिशाली पुरुष वडी सरलता से ऐसी किसी भी परिस्थिति का निवारण कर सकते थे लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया.

समग्र रामकथा की धुरी बस यही तो है कि एक राजकुमार ने अपनी पत्नी के छिन जाने पर रावण से युद्ध किया, उसे पराजित कर पत्नी को फिर प्राप्त

किया और फिर उसी पत्नी के चरित्र पर संदेह प्रकट किया. एक व्यक्ति के इस काम से समाज को क्या वास्ता? और फिर यह समाजगत भाव भी नहीं है जिस से प्रेरणा ली जा सके .

पत्नी से अलग होने पर भारतीय जनमानस का राम इतना रोया है कि वन के पेड़पौधे, पशुपक्षी, व्याकुल हो गए थे. क्या शक्तिसंपन्न किसी राष्ट्रनायक के यही गुण होने चाहिए? उस के पीछे चलने वाले उस से क्या सीख ले सकते हैं? एक कृष्ण थे, जिन की आखों में कभी आसू दिखे नहीं. हां, उन की आंखें उस समय गीली हुई जब कोई अबला बड़ेबड़े महारथियो के बीच नगी की जा रही थी. और उधर राम किसी अबला के नाककान काटने मे अपने बल का प्रमाण पेश कर रहे थे.

तुलसी के राम के रूपवर्णन में श्रृंगार रस का उद्रेक नहीं हो पाता जो एक कवि के लिए भौतिक धरातल की बात कहने की सब से पहली और महत्त्वपूर्ण शर्त मानी जानी चाहिए. कहा जाता है कि तुलसी ने तो मर्यादित श्रृंगार का ही वर्णन किया है. बात समझ मे नहीं आती कि श्रृंगार के साथ मर्यादा अथवा अमर्यादा का सवाल ही कहां उठता? श्रृंगार रस इस जमीन की चीज है, यह नरनारी के परस्पर आकर्षण की वस्तु है, इसलिए कविता में इस का वर्णन जमीन से छूता हुआ होना चाहिए. तुलसी ने ऐसा नहीं किया है. तब फिर पुष्पवाटिका में राम और सीता की आंखमिचौनी का दृश्य उपस्थित करने की जरूरत ही क्या थी? वहां भी श्रृंगार का केवल उभार भर हो पाया है, श्रृंगार रस पका नहीं है. तब फिर प्रश्न हो सकता है कि श्रृंगार के इस पूर्वानुराग की आवश्यकता ही क्या थी? 'मानस' के कथाप्रवाह मे इस घटना की जरूरत क्या है?

राम और सीता के विवाह के समय भी तुलसी श्रृंगार रस के अंतर्गत मन को छूने वाली कोई लौकिक आचार की बात नहीं कह पाए हैं. यह स्थल भी सूखा और अस्वाभाविक सा लगता है. कालिदास ने 'रघुवंश' नामक अपने प्रबंध काव्य में अज और इंदुमती के विवाह की बड़ी मनोरम झांकी उपस्थित की है. वधू चाहती है कि कैसे वर की एक अनुपम झांकी उसे मिल जाए और वर की कामना है कि कैसे आंख भर वह अपनी प्रिया को देख ले. लौकिक धरातल का ऐसा रस भरा वर्णन 'मानस' में कहीं भी वर्णित नहीं है. राम और सीता की जनकपुर से विदाई के अवसर पर क्या जनकपुर की स्त्रियों की हंसीमजाक की बात की योजना 'मानस' मे नहीं की जा सकती थी. ऐसा कुछ न करने के कारण तुलसी सहज कविधर्म से गिरे से मालूम पड़ते हैं.

भारत की बहुत बड़े समुद्र से तुलना की गई है क्योंकि बड़े समुद्र में जिस तरह अनेक छोटीछोटी नदियों के जल आ कर मिले रहते हैं, उसी तरह भारत मे आर्य, अनार्य, द्रविड, हूण, किरात, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, न जाने कितनी जातियों की संस्कृतियां एकजुट हो कर जा मिली हैं. ऐसे विराट भारत

की मधुर एवं उपयोगी कल्पना 'मानस' मे कहीं भी चित्रित नहीं है

ऐसा लगता है, 'मानस' अलौकिक कल्पनाओं का लोक है, दुर्लभ स्वप्नो की चकाचौंध भर है उत्तम काव्य की दृष्टि से भी प्रबंधकता की रसधार मे बहने की गुंजाइश कहीं भी 'मानस' मे नहीं है यह केवल एक हवाई बात बनाता है, आकाशकुसुम की बात करता है, धरातल से इस का कोई लगाव नहीं दिखता.

कितने मौलिक?

तुलसीदास का 'रामचरित मानस' विद्वत समाज में एक मौलिक साहित्यिक रचना का सम्मान पाता रहा है, लेकिन इधर ज्योंज्यों तुलसी साहित्य के अध्येताओं की संख्या बढ़ रही है, इस की मौलिकता पर भी संदेह होने लगा है. तुलसी ने काफी कुछ अनुकरण और अनुवाद किया है और उन की इस कृति पर अन्य रचनाओं की भी छाया है. इस का आभास उन्हें भी था जिन्होंने इस शताब्दी के आरंभिक वर्षों में हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा. लेकिन वह तुलसी साहित्य से इतने अभिभूत थे कि तुलसी की मौलिकता उन्हें वैसी संदेहास्पद प्रतीत नहीं हुई, जैसी अब लोगों को प्रतीत होने लगी है.

आज जब इस विषय पर काफी कुछ सामग्री उपलब्ध हो गई है और होती जा रही है, हम देखते हैं कि तुलसी साहित्य का अधिकांश भाग पूर्ववर्ती संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और अवधी साहित्य से संकलित और अनूदित है. इस मे मौलिकता नगण्य है. ऐसी स्थिति में यह सोचना जरूरी हो गया है कि क्या मानस एक मौलिक काव्यकृति है, या मात्र पौराणिक व धार्मिक संकलन है? यह भी विचारणीय है कि इस की रचना का श्रेय केवल तुलसी को मिलना चाहिए या उन के पूर्ववर्ती कवियों और आचार्यों को?

उपमाओं, अलंकारों, उद्भावनाओं, कथोपकथन की शैली, प्रसंग विशेष के प्रभावोत्पादक शब्दों, नएनए कथाप्रसंगों आदि के आधार पर ही किसी काव्यग्रंथ की मौलिकता देखीपरखी जाती है, क्योंकि मूल कथानक तो प्रत्येक महाकाव्य का रचयिता कहीं न कहीं से ग्रहण करता ही है. तुलसी ने अपने मानस में जिस साहस से दूसरे कवियों की मौलिक उपलब्धियों को भी ग्रहण कर लिया है, उस के कारण उन की रचना सीधे साहित्यिक तस्करी की कोटि में चली जाती है. यह विचारणीय है कि तुलसी को मानस का रचयिता कहा जाए या संपादक अथवा संकलनकर्ता और अवधी अनुवादक?

'नाना पुराण निगमागम सम्मत' की स्वीकारोक्ति में भी छल दिखाई देता है. तुलसी ने शुरू में वाल्मीकि की वंदना की और पुराण निगमागम का

नाम लिया. लेकिन इन से उन्होंने बहुत कम ग्रहण किया. पाठक ने जब तुलसी को इन से काफी भिन्न देखा तो वह उन की मौलिकता के विषय में आश्वस्त हो गया. तस्करी का यह सामान्य नियम है कि वस्तु जहां छिपाई जाती है, ढूंढने वाले को गड़बड़ा कर उस से विपरीत दिशा में खोजबीन करने के लिए मजबूर किया जाता है. तुलसी ने आधार ग्रहण किया 'अध्यात्म रामायण' का और वंदना द्वारा पाठक को भ्रमित कर दिया 'वाल्मीकि रामायण' की ओर. तुलसी ने उपमाएं, अलंकार, छंद, कथोपकथन शैली आदि अपनाई 'हनुमन्नाटक,' 'प्रसन्न राघव,' 'आनंद रामायण' और 'स्वयंभू रामायण' की ओर नाम लिया 'नाना पुराण निगमागम' का. फलस्वरूप शताब्दियों तक तस्करी का पता न चल सका.

यदि तुलसी इस अर्थ में सचमुच ईमानदार थे तो 'क्वचिदन्यतोऽपि' के स्थान पर अपने उपयोग में लाए गए इन सारे ग्रंथों का नाम दे सकते थे. इस संदर्भ सूची में मानस का कलेवर एक पृष्ठ और बढ़ जाता लेकिन तुलसी को तो खुद अपने को मौलिक दिखाने का मोह था, फिर भला वह संदर्भ ग्रंथों का सही नाम क्यों देते?

रामचरित मानस के नामकरण में एक रूपक प्रस्तुत किया गया है कि रामचरित मानस एक मानसरोवर है, चारों घाट चारों संवाद हैं, चौपाइयां पुरइन पात सी फैली हुई हैं, दोहा, सोरठा और छंद बहुरंग कमल हैं आदि.

सुठि सुंदर संवाद वर विरचे बुद्धि विचारि,
तेइ यहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि
राम सीय जस सलिल सुधासम, उपमा बीचि बिलास मनोरम.
पुरइन सघन चारु चौपाई, जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई.
छंद सोरठा सुंदर दोहा, सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा.
धुनि अवरेब कवित गुन जाती, मीन मनोहर ते बहु भांती.

—मानस बालकांड, 36

लेकिन यह रूपक तुलसीदास की मौलिक सूझ नहीं है. इसे उन्होंने जैन परंपरा के कवि स्वयंभूदेव के अपभ्रंश काव्य 'पउम चरिउ' से ग्रहण किया है. देखिए :

अक्खर वास जलोह मणोहर, सुयलकार छंद मच्छोहर.
दीह समास पवाहा वंकिय, सक्कय पायय पुलिणालंकिय.
देसी भाषा उभय तडुज्जल, कवि दुक्कर घण सद्द सिलायल.
अत्थ बहल कल्लोला णिट्ठिय, आसा सय सम ऊह परिट्ठिय.
राम कहा सरि एह सोहन्ती.

—पउम चरिउ, पढमो संधि, घत्ता, 19

'पउम चरिउ' या 'स्वयंभू रामायण' से तुलसी ने बहुत कुछ ग्रहण किया है. मानस के बालकांड में पाई जाने वाली देवताओं और सज्जनों की स्तुति,

दुर्जनों और खलो की निंदा, कवि कर्म मे अपनी अज्ञानता का वर्णन, पूर्व कवियों के प्रति कृतज्ञता का प्रदर्शन, सरस प्रकृति चित्रण, धार्मिक और नैतिक वातावरण के निर्माण आदि की बातें तुलसी को 'पउम चरिउ' की देन हैं. दोनों वर्णनों मे भावसाम्य तो है ही, कहींकहीं शब्दसाम्य भी है. कल्पना का मूलाधार मिल जाने पर विस्तार करना सरल हो जाता है. तुलसी ने केवल संक्षेप और विस्तार करने में ही श्रम किया है. महापडित राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'हिंदी काव्यधारा' का एक अंश इस संवंध में पठनीय है :

"तुलसी वावा ने क्वचिदन्यतोऽपि से स्वयंभू रामायण की ओर ही संकेत किया है आखिर नाना पुराण निगमागम और रामायण के वाद ब्राह्मणो का कौन सा ग्रंथ वाकी रह जाता है, जिस मे रामकथा आई है? क्वचिदन्यतोऽपि से वावा का मतलव है ब्राह्मणो के साहित्य से वाहर 'कहीं अन्यत्र से भी' और अन्यत्र इस जैन ग्रंथ मे रामकथा सुंदर रूप में मौजूद है."

जायसी के दोहाचौपाई की नकल

जिस समय तुलसीदास रामचरित मानस की रचना करने को तैयार हुए, उस समय जायसी की 'पद्मावत' लोकप्रिय हो रही थी. वह लोकभाषा अवधी मे थी और दोहा व चौपाई की छंद योजना में लिखी गई थी. तुलसी को यह समस्या भी हल हो गई. उन्होंने भाषा और छंद जायसी से ग्रहण कर लिए. यहां तक तो गनीमत थी, पर तुलसी ने उपमाओं और उद्भावनाओ को भी यथावत ग्रहण करने मे संकोच न किया. स्पष्ट करने हेतु प्रस्तुत है :

का सरवरि तेहि देहु मयकू, चाद कलकी वह निकलकू
औ' चार्दाहि पुनि राहु गरासा, वह विनु राहु सदा परगासा.

—पद्मावत, 16 (3-4)

वहुरि विचार कीन्ह मन माही, सीय वदन सम हिमकर नाहीं.
जन्म सिंधु पुनि वधु विष, दिन मलीन सकलक,
सिय मुख समता पाव किमि चंद वापुरो रंक.
घटइ वढइ विरहिन दुखदाई, ग्रसै राहु निज सधिहि पाई

——मानस वालकांड, 237

उद्भावना एक ही है. तुलसी का वर्णन विशद और परिमार्जित है, लेकिन मौलिकता तो जायसी की ही है. दरअसल तुलसी को पकापकाया माल मिल गया है.

कालिदास रचित ग्रथो की छाप

जिन काव्यग्रंथो में रामकथा का वर्णन नहीं था, उन से भी तुलसी ने प्रसंगानुरूप शब्दों, सूक्तियों और उपमाओं को ग्रहण कर लिया है. 'कुमारसभव' से शिवपार्वती का प्रकरण न्यूनाधिक रूप से लिया है. कालिदास ने पार्वती के 'उमा' और 'अपर्णा' नामों की काव्योचित व्याख्या अपने ग्रंथ 'कुमारसंभव' मे की है. यथा :

उमेति माता तपसो निपिद्धा, पश्चादुमाख्या सुमुखी जगाम
और—
स्वय विशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता, पराहि काष्ठा तपसस्तया पुन
तदप्यपाकीर्णमत. प्रियवदा, वदन्त्यपर्णेति च ता पुराविदः.

—कुमारसंभव, 5-28

इन मे इस बाद वाली 'अपर्णा' की व्याख्या तुलसी ने यथावत अनुवाद कर ली है और अपनी ओर से तीन सहस्र संवत की गप्प जोड दी है :
बेल पाति महि परइ सुखाई, तीन सहस सवत सोइ खाई
पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना, उमहि नाम तब भयउ अपरना.

—मानस बालकांड, 73 (3-4)

रघुवंश में राजा कुश के शयनकक्ष मे उजडी हुई अयोध्या नगरी मध्यरात्रि मे एक नारी के वेश मे प्रवेश करती है. तब कुश उसे आश्वस्त करने के लिए कहते हैं
आचक्ष्व मत्वा वशिना रघूणा, मन परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति

—रघुवंश, 16-8

रघुवंशियों की इसी दर्पोक्ति को तुलसी राम के मुख मे कहलवाते हैं :
रघुवसिन्ह कर सहज सुभाऊ,
... .
नहि लावहि परतिय मन डीठी —मानस, बालकांड, 230 (5-7)

मानस मे अनेक स्थलों पर कालिदास की छाया है. कहीं पूरे तौर पर तो कहीं आंशिक. 'कृसतन सीश जटा एक बेनी, जपत हृदय रघुपति गुन श्रेनी' के रूप मे अशोकवाटिका की सीता का विरहिणी रूप शकुंतला के निम्न वर्णन की नकल है :
वसने परिधूसर वसाना, नियमक्षाममुखी धृतैकवेणि.
अति निष्करुणस्य शुद्धशीला, मम दीर्घ विरहव्रत बिभर्ति

—अभिज्ञान शाकुंतलम्

जनकपुर से सीता की विदाई के अवसर पर राजा जनक उसी प्रकार दुखी होते हैं, जैसे शकुंतला की विदाई के अवसर पर कण्व. "वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकस ," की नकल कर के ही तुलसी ने लिखा है :
रहे कहावत परम बिरागी.
सस्कृत साहित्य मे बडी उत्तम कोटि की एक उपमा कालिदास ने 'रघुवंश' मे इंदुमती स्वयवर मे दी है :
सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ, य य व्यतीयाय पतिवरा सा.
नरेंद्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभाव स स भूमिपाल

—रघुवंश, 6-67

अब तुलसी के लिए समस्या थी कि वह इस का किस प्रकार उपयोग करे

क्योंकि इंदुमती स्वयंवर से सीता स्वयंवर की परिस्थिति भिन्न थी. लेकिन अनुकरण लोभी तुलसी की समस्या 'प्रसन्न राघव' के रचनाकार ने हल कर दी. प्रसन्न राघव में उस प्रसंग का वर्णन है :

कामक्रीडाभवनवलभी दीपिकेवाविरस्ति. —प्रसन्नराघवम्, 2-7

तुलसी ने 'कामक्रीडाभवनवलभी' का अनुवाद कर लिया. 'छविगृह' और चूंकि कालिदास की 'दीपशिखा' तो 'प्रसन्न राघव' की 'दीपिका' से अच्छी थी ही, इसलिए फिट कर दिया.

छविगृह दीपशिखा जनु बरई.

आनद रामायण से शब्साम्य, भावसाम्य

मानस की अनेक अवांतर कथाएं जो सहसा पढ़ने पर तुलसी की मौलिक उद्भावनाएं प्रतीत होती हैं, कहीं न कहीं से उधार ली गई हैं. जिस प्रकार लोग मांगे हुए सामान से बरातों में अपने वैभव का हास्यास्पद प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार तुलसी ने मांगे हुए कथानकों से मानस को अलंकृत कर के अपनी स्थिति काव्यशास्त्रीय दृष्टि से हास्यास्पद बना ली है. सतीमोह और नारदमोह का मूल उद्गम 'शिवपुराण' है. सीता स्वयंवर मे सीता के मन की उथलपुथल, देवताओं की प्रार्थना, जनकपुर के नरनारियों का राम के प्रति प्रेम और सहानुभूति के भावों का वर्णन 'आनंद रामायण' से लिया गया है. यहां शब्दसाम्य और भावसाम्य देखा जा सकता है :

एतस्मिन्नतरं सीता राम दृष्ट्वा सभागणे,
अब्रवीन्मधुरं वाक्य रत्नालकार मडिता.
हे शभो, हे विधे, दुर्गे, हे सावित्री सरस्वति,
युष्माक प्रार्थयाम्यद्य, प्रसार्य निज पल्लवम्.
सर्वैरेतन्महच्चाप करणीय तु पुष्पवत्.

—आनंद रामायण, सारकांड, सर्ग 3

तब रामहि बिलोकि वैदेही, सभय हृदय बिनवति जेहि तेही.
मन ही मन मनाव अकुलानी, होहु प्रसन्न महेस भवानी.
करहु सफल आपनि सेवकाई, करि हित हरहु चाप गरुआई.
गननायक बरदायक देवा, आजु लगे कीन्हेउ तुअ सेवा.
बारबार बिनती सुनि मोरी, करहु चाप गुरुता अति थोरी.

—मानस, बालकांड, 256

और देखिए :

एव दृष्ट्वा स्त्रियो रामं सभागण विराजितम्,
न्यस्त कोदड तूणीरं शिवचापाभिसम्मुखम्.
प्रार्थयामासुस्ता: सर्वा. ऊर्ध्वास्था ऊर्ध्वसत्करा:,
हे शभो, हे रमाकांत, हे विधेऽस्मत्पुरादृते:.
व्रतदानादि पुण्यश्च चापं सज्जीकरोत्यमुम्.

—आनंद रामायण, सारकांड, सर्ग 3

चलत राम सब पुर नरनारी, पुलक पूरि तन भए सुखारी.
बंदि पितर सुर सुकृत सभारे, जो कुछ पुन्य प्रभाउ हमारे.
तौ शिव धनु मृनाल की नाईं, तोरहु रामु गनेश गोसाईं.

—मानस, बालकांड, 254

अध्यात्म रामायण से अनुप्रेरित

'अध्यात्म रामायण' तुलसीदास के मानस से बहुत प्राचीन काव्यग्रंथ है. तुलसी ने अपने मानस की रचना में इस का सब से अधिक उपयोग किया है. कुछ ही अवांतर कथाएं ऐसी हैं जो 'अध्यात्म रामायण' से भिन्न हों, अन्यथा मानस का सारा दार्शनिक विवेचन, मूलकथा का संयोजन, राम के सगुणनिर्गुण रूप का विवेचन, त्रिदेवों की स्थिति, भक्तिज्ञान संबंधी ऊहापोह, सत्संग महिमा, मोक्षसाधन, वैराग्य निरूपण आदि अनेक प्रसंग 'अध्यात्म रामायण' से अनुप्रेरित हैं.

कहींकहीं मानस के कलेवर को तुलसी ने सीधे अनुवाद से भी सजाया और अलंकृत किया है. मंथराकैकई प्रसंग के वर्णन में तुलसी 'अध्यात्म रामायण' के कितने ऋणी हैं, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा :

तच्छ्रुत्वा सहसोत्थाय कैकई प्रियवादिनी,
तस्यै दिव्य ददौ स्वर्ण नूपुर रत्नभूषितम्.
हर्षस्थाने किमिति मे कथ्यते भयमागतम्,
भरतादधिको राम: प्रियकृन्मे प्रियंवद.
कौशल्या मा सम पश्यन् सदा शुश्रूषते हि माम्,
रामाद् भय किमापन्न तव मूढे वदस्व मे

—अध्यात्म रामायण, सर्ग 2-54-56

प्रियबादिनि सिख दीन्हेउ तोही, सपनेउ तो पर कोप न मोही
रामतिलक जो साचेहु काली, देहु माग मनभावत आली
कौशल्या सम सब महतारी, रामहि सहज सुभाय पियारी.
प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे, तिनके तिलक छोभ कस तोरे
हरष समय बिसमय करसि कारण मोहि सुनाउ.

—मानस, अयोध्याकांड, 15

अब देखिए :

ब्रूहि क धनिन कुर्याद् दरिद्र ते प्रियकरम्,
धनिन क्षणमात्रेण निर्धन च तवाहितम्
ब्रूहि क वधिष्यामि वधार्हो वा विमोच्यते,
किमत्र बहुनोक्तेन प्राणान् दास्यामि ते प्रिये —अध्यात्म रामायण, 3 12-13
कहु केहि रंकहि करउं नरेसू, कहु केहि नृपहि निकासउं देसू
सकउं तोर अरि अमरउ मारी, काह कीट बपुरे नरनारी.

और भी—

भरत मातुल कुले प्रेषयामास सानुजम्. —अध्यात्म रामायण, 2-60

पठये भरत भूप ननिअउरे. —मानस, अ. का.

ततोऽपि मरणश्रेयो यत्सपत्नया: पराभव:. —अ. रा., सर्ग 2-63

जियत न करव सवति सेवकाई. —मानस

मानुपीकरण चूर्णमस्ति ते पादयोरिति कथा प्रकीयसी.

—अध्यात्म रामायण 6-3

मानुष करन मूरि कछु अहई —मानस

'हनुमन्नाटक' से भावानुवाद

जितनी अधिक मात्रा में तुलसी ने 'अध्यात्म रामायण' से सामग्री ली है, उतनी ही उदारता से उन्होंने दामोदर मिश्र के 'हनुमन्नाटक' से भी सामग्री ली है. जनक के प्रण की घोषणा, लक्ष्मण का अमर्षपूर्ण प्रत्युत्तर, जटायु की मृत्यु पर राम की शोकसंकुल उद्भावना, सुमित्रा द्वारा लक्ष्मण को दिया गया आदर्श भ्रातृभाव का उपदेश, तुलसी का बहुचर्चित केवट प्रसंग, अंगदरावण संवाद, 'रामानुज लघु रेख खचाई' की उक्ति, मंदोदरी द्वारा रावण को सन्मार्ग पर चलने का उपदेश, हनुमान द्वारा राम से वियोगिनी सीता की दशा का वर्णन, वनपथ में ग्रामवधुओं द्वारा सीता की बातचीत का प्रसंग और अन्य अनेक अवांतर प्रसंग 'हनुमन्नाटक' से लिए गए हैं. इतनी अधिक सामग्री उधार देने वाले को तुलसी ने 'क्वचिदन्यतोऽपि' में रख दिया. क्या इसे साहित्यिक न्याय कहा जा सकता है?

कितना ही अधिक अनुकरण करने वाला साहित्यकार क्यों न हो, वह कुछ न कुछ अपने युग से प्रभावित होता ही है और उस की कृति मे वह प्रभाव दृष्टिगोचर हो ही जाता है. हरिऔध के 'प्रियप्रवास' की राधा और मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' की उर्मिला युग का प्रभाव ग्रहण कर के लोकसेविका बन गई. जहां सूरदास लिखते हैं : 'मधुवन तुम कत रहत हरे, कठिन वियोग श्यामसुंदर के क्यों नहि उकठि परे.' वहीं हरिऔध लिखते हैं. 'पत्रों पुष्पों रहित विटपी विश्व मे हो न कोई.' यह है साहित्यकार पर युग का प्रभाव. लेकिन तुलसी? तुलसी पुस्तकों के अध्येता कितने ही क्यों न रहे हों, साधु होने के कारण वह लोकजीवन से कटे हुए थे. यही वजह है कि उन के काव्य में समकालीन दरबारी संस्कृति, जो मुगल दरबारों मे विकसित हो रही थी, भी व्यक्त न हो सकी.

तुलसी का अंगद रावण के दरबार मे उतना ही उद्धत है जितना 'हनुमन्नाटक' के रचयिता का, क्योंकि तुलसी को केवल अनुवाद करना था, युग के अनुरूप परिवर्तन नहीं क्या आप एक प्रतापी राजा के दरबार मे गए हुए दूत से राजा के प्रति 'रे शठ' का संबोधन सुनना पसंद करेंगे? क्या 'हनुमन्नाटक'

या तुलसी के अंगदरावण संवाद का वर्णन दरबारी शालीनता और श्लीलता के अनुरूप है? क्या इस वर्णन में दोनों साहित्यकारों की प्रतिभा अवयस्क नहीं प्रतीत होती? 'हनुमन्नाटक' के रचनाकाल में तो यह क्षम्य भी थी लेकिन तुलसी तो सुधार कर सकते थे. पर मौलिक दृष्टि और चिंतन के अभाव में वह करते ही क्या!

किस तरह उन्होंने अनुवाद किया है, निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है :

रेरे रावण, रावणा कति वहूनेतान्वय शुश्रुम.,
प्रागेक बिल कार्तवीर्य नृपतेर्दोदंड पिंडीकृतम्
एक नर्तनदापितान्नकवल दैत्येंद्र दासीगणै,
रन्य वक्तुमपि त्रयामह इति त्व तेषु कोऽन्योऽथवा.

—हनुमन्नाटक, अंक 8-32

कहु रावन रावन जग केते, मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते.
बलिहि जितन एक गएउ पताला, राखेउ बांधि सिसुन्ह हयसाला
एक बहोरि सहसभुज देखा, धाई धरा जिमि जनु विसेखा.
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख,
इन महु तैं रावण कवन सत्य बहेउ तजि माख.

—मानस, लंकाकांड 23

ग्रामवधुओं वाले प्रसंग में तुलसी की वर्णनसमर्थता और नारीशील की अभिव्यंजना की बड़ी ही प्रशंसा की जाती है लेकिन यह प्रसंग भी तुलसी का मौलिक नहीं है. इसे 'हनुमन्नाटक' से लिया गया है. देखिए :

पथि पथिक वधूभि. सादर पृच्छ्यमाना,
कुवलय दलनील कोऽयमार्ये तवेति.
स्मित विकसित गंड व्रीडविभ्रान नेत्रा,
मुखमवनिमयती स्पष्टमाचष्ट सीता. —हनुमन्नाटक, अंक 3-16

..... सरद सरोरुह नैन.
कोटि मनोज लजावन हारे, सुमुखि कहहु को आहि तुम्हारे.
बहुरि वदन विधु अंचल ढाकी, प्रियतन चितय भौंह करि बांकी,
खंजन मंजु तिरीछे नैनिन, निज पिय कह्यो तिन्हहि सिय सैननि.

—मानस, अयोध्याकांड 116

रामचंद्र को मनुष्य नहीं, ईश्वर का अवतार बतलाने के लिए रावण को अंगद बड़े प्रभावशाली ढंग से फटकारता है :

राम मनुज कस रे सठ बंगा, धन्वी कामु नदी पुनि गंगा.
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा, अन्नदान अरु रस पीयूषा.
बैनतेय खग अहि सहसानन, चिंतामनि पुनि उपल दसानन
सुन मतिमंद लोक बैकुंठा, लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा.

कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि.

—मानस, लंकाकांड 25-26

लेकिन यह सब वर्णन 'हनुमन्नाटक' से अनूदित है. देखिए :

रे रे रावण दीनहीन कुमते, रामोऽपि किं मानुषः
किं गंगापि नदी गजः सुरगजोऽप्युच्चैश्रवा. किं हयः
किं रंभाप्यवला कृत किमयुग कामोपि धन्वी तु किम्,
त्रैलोक्य प्रकट प्रताप विभव किं रे हनुमान्कपिः. —हनुमन्नाटक 8-24

हनुमान की करामात पर राम आश्चर्य करते हैं कि अकेले हनुमान लंका में इतनी सफलता कैसे प्राप्त कर सके? इस अवसर का हनुमान का उत्तर तुलसी ने 'हनुमन्नाटक' से अनुवाद कर लिया है :

शाखामृगस्य शाखाया : शाखां गतु पराक्रमः, यत्पुनर्लंघितोभोधिः प्रभावोऽयं प्रभो तव. —हनुमन्नाटक 6-44

शाखामृग कै वड़ि मनुसाई, शाखा ते शाखा पर जाई.

—मानस, सुंदरकांड-32

तुलसी को अपने मानस की रचना करते समय एक और बहुत उपयोगी ग्रंथ मिल गया था—जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव.' जहां जंचा वहां इस से भी तुलसी ने अनुवाद कर लिया. लक्ष्मणपरशुराम संवाद, धनुर्भंग के अवसर पर जनक का संशय, अशोक वाटिका मे हनुमान और सीता का वार्त्तालाप, सीता के अंगूठी देने, सीता का विरह निवेदन, रावण और सीता की वातचीत आदि का वर्णन 'प्रसन्न राघव' की नकल है. उदाहरण के लिए कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं :

मदोदरीमपि विमुचति राज्यमेतद, प्युन्मद तव पदाब्जतले करोति.
किं जल्पितेन वहुना, सुमुखि त्वदर्थे, स्वान्युच्छिनत्यपि शिरांसि पुनर्दशास्यः

—प्रसन्नराघव 6-28

कह रावण सुनु सुमुखि सयानी, मंदोदरी आदि सव रानी.
तव अनुचरी करो पन मोरा, एक वार विलोकु मम ओरा.

—मानस, सुंदरकांड 8

तब सीताजी कहती हैं :

सीता : अपि खद्योतभासपि समुन्मीलति पद्मिनी?

—प्रसन्नराघव, 6-28 के बाद का गद्य.

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा, कवहु कि नलिनी करइ विकासा.

—मानस, सुंदरकांड 8

और भी :

विरमविरम रक्षः किं मुधा जल्पितेन, स्पृशति नहि मदीयं कठसीमानमन्य
रघुपति भुजदडादुत्पल श्यामकांते, दशमुख! भवदीयान्निष्कृपाद्वा कृपाणात्

—प्रसन्नराघव 6-30

श्याम सरोज दाम सम सुंदर. प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर.
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा, सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा

—मानस, सुंदरकांड 9

अनुवाद में तो कुछ परिश्रम भी पड़ता होगा, इसलिए कहींकहीं तुलसी को सीधे श्लोक ही रख लेने में संकोच नहीं हुआ. आज वह सब तुलसी के ही नाम पर चल रहा है. बेचारे जयदेव न तो अपना काव्य कापीराइट कानून में रजिस्टर करा पाए थे, न वल्दियत और सकूनत (जिसे तुलसी छिपा गए हैं) के अभाव में तुलसी पर कोई सम्मन ही कटवा सकते थे :

चंद्रहास हर मे परितापं रामचंद्र विरहानल जातं
त्वं हि कांतिजित् मौक्तिक चूर्णं, धारय वहसि शीतलाभम्

—प्रसन्नराघव 6-33

चंद्रहास हर मम परितापं, रघुपति विरह अनल संजातं.
सीतल निसित वहसि बर धारा, कह सीता हर मम दुख भारा.

—मानस, सुंदरकांड 9

भला एक कवि को दूसरे कवि की उपमा भी सीधे चुरानी चाहिए? चंद्रोदय की छवि का वर्णन देखिए :

मयूख नखत्रुटितमिर कुंभिकुंभस्थलो—च्छलत्तरलतारकाकपटकीर्ण
मुक्तागणः
पुरंदरहरिद्दरी कुहरगर्भ सुप्तोत्थित. स्सुधाकर केसरी गगन कानन गाहते.

—प्रसन्नराघव 7-61

(अर्थ—किरण रूपी नाखूनों से छिन्न होते हुए अंधकार रूपी हाथी के मस्तक पिंड से मोतियों जैसे तारकगणों को छितराते हुए पूर्वदिशा रूपी गुफा के अंदर से सो कर उठा हुआ चंद्र रूपी सिंह आकाश रूपी वन में प्रवेश कर रहा है.)

कहत सबहि देखहु ससिहि मृगपति सरिस असंक,
पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी, परम प्रताप तेज बल रासी.
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी, ससि केसरी गगन बन चारी.
बिथुरे नभ मुकुताहल तारा, निसि सुंदरी केर सिंगारा.

—मानस, लंकाकांड 11

नीति संबंधी उक्तियां

तुलसीदास ने रामचरित मानस में नीति संबंधी कई उक्तियों को अविकल रूप में 'हितोपदेश,' 'चाणक्य नीति,' 'योगवाशिष्ठ,' 'मनुस्मृति,' 'सूक्ति-रत्नाकर,' 'पंचतंत्र,' 'भर्तृहरि नीति शतक,' आदि ग्रंथों से अनुवाद कर जगहजगह पर उन का उपयोग किया है. राम और नारद की अरण्यकांड की अप्रत्याशित भेंट में राम ने नारी की जो चारित्रिक अभिव्यंजना की है, वह

नारी के अन्वेषण में लगे हुए विरह विकल राम के मुख से हर पाठक को अनुचित और अप्रासंगिक लगती होगी. लेकिन शायद तुलसीदास ने उसी दिन योगवाशिष्ठ पढ़ा था और उस की 'कुछ अच्छी' बातों का समावेश करना उन्हें बहुत जरूरी लगा, जिस से इस प्रसंग की रचना हो गई.

दार्शनिक सिद्धांतों का वर्णन तुलसी ने किस तरह अन्य ग्रंथों से ग्रहण किया है, इस के संबंध में एक उदाहरण प्रस्तुत है :

अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षु' स श्रृणोत्यकर्णः
स वेत्ति वेद्य न च तस्यास्ति वेत्ता, तमाहुरन्य पुरुष महान्तम्.

—श्वेताश्वतरोपनिषद 19

इसे तुलसी ने निम्न प्रकार से अनूदित किया है :

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना, कर बिनु कर्म करै विधि नाना.
आनन रहित सकल रस भोगी, बिनु बानी वक्ता बड जोगी.
तन बिनु परस नयन बिनु देखा, गहइ घ्रान बिनु बास असेखा.

—मानस, बालकांड 117

एक बार एक पुलिस इंस्पेक्टर एक अपराधी को धमका रहा था कि अभी सत्संग मे सब कुछ बतला दोगे. मै ने पूछा कि कैसा सत्संग, तो दरोगाजी ने बतलाया कि सत्संग का मतलब है मारपीट. मैं ने कहा कि मारपीट को 'सत्संग' कहने की प्रेरणा आप को कहां से मिली, तो उन्होंने तुलसी का निम्न दोहा सुनाया. यह दोहा लंकिनी द्वारा हनुमान की मुष्टिकावृष्टि के बाद कहा गया है :

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिच तुला इक अग,
तुले न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत्संग

स्पष्ट है कि हनुमान का जो सत्संग लंकिनी को अभी प्राप्त हुआ था, वह 'मुठिका एक ताहि कपि हनी' द्वारा व्यक्त हो चुका है, इसलिए दरोगाजी सत्संग का अर्थ मारपीट ठीक समझे हैं. तुलसी की दृष्टि मे उस समय निम्न श्लोक आ गया था जिस का अनुवाद उन्होंने कर दिया :

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भव, भगवत्सगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः

—श्रीमद्भागवत 1-18-13

'श्रीमद्भागवत' में कृष्ण जन्म के अवसर पर वर्णित छंदों का तुलसी ने राम जन्मोत्सव के अवसर पर उपयोग कर लिया है :

नद्य. प्रसन्नसलिला ह्रदाजलरुहश्रिया, द्विजालिकुसनाद स्तवका वनराजयः
ववौ वायु· सुखस्पर्श पुण्यगधवह. शुचिः, मनास्यासन प्रसन्नानि साधूनाम-सुरद्रुहाम्.
अगुः किन्नरगधर्वास्तुष्टुवः सिद्धचारणा मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विता.

—श्रीमद्भागवत 10-3 (3-6)

सीतल मद सुरभि बह बाऊ, हरषित सुर सतन मन चाऊ
बन कुसुमित गिरि गन मनियारा, स्रवहि सकल सरिताऽमृत धारा.

गगन विमल सकुल सुर जूथा, गावहिं गुन गंधर्व बरूथा.
बरसहिं सुमन सुअंजलि साजी, गहगहि गगन दुंदुभी बाजी.
—मानस, बालकांड 190

जिन्होंने हरिकथा नहीं सुनी, उन की इंद्रियां किस प्रकार बेकार हैं, इस का तुलसी ने ऐसा वर्णन किया है कि भक्त अभिभूत हो उठते हैं :

जिन हरिकथा सुनी नहिं काना, श्रवन रंध्र अहि भवन समाना
नयनन संत दरस नहिं देखा, लोचन मोरपंख कर लेखा
ते सिर कटु तुंबरि सम तूला, जे न नमत हरिगुरु पद मूला.
जिन्ह हरि भगति हृदय नहिं आनी जीवित शव समान तेइ प्रानी.
जो नहिं करइ राम गुन गाना, जीह सो दादुर जीह समाना.
कुलिस कठोर निठुर सोई छाती, सुनि हरि चरित न जो हरषाती.
—मानस, बालकांड 112

लेकिन यह पूरा वर्णन और सभी उपमाएं 'श्रीमद्भागवत' से अविकल रूप से अनुवाद की गई हैं.

बिले बतोरुक्रम विक्रमान् ए न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य,
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगाय गाथा.
भारः परं पट्ट किरीट जुष्टम प्युत्तमांग न नमेन्मुकुन्दम्
शावौ करौ नो कुरुत सपर्यां हरेर्लसत्कांचन कंकणौ वा
बर्हायिते ते नयने नराणां लिंगानि विष्णोर्न निरीक्षतो ए.
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यो
जीवंछवो भागवतांघ्रिरेणु. न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु
श्री विष्णु पद्यामनुजस्तुलस्याः श्वसंछवो यस्तु न वेदगंधम्
श्रीमद्भागवत 2-3 (20-23)

तुलसी ने 'उत्तर रामचरित' का भी उपयोग किया है. एक उदाहरण प्रस्तुत है :

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि,
लोकोत्तराणां चेतांसि को न विज्ञातुमर्हति. —उत्तर रामचरित, अंक 2-7
कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि,
चित्त खगेस रघुनाथ कर समुझि परै कहु काहि

'भगवद्गीता' के 'यदायदाहि धर्मस्य' का अनुवाद तो 'जबजब होहिं परम कै हानी' के रूप मे प्रसिद्ध ही है, और भी अनेक अनुवाद हैं :

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति, भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया.
—गीता 18 61

उमा दारु जोषित की नाईं, सबहि नचावत रामु गोसाईं
—मानस, किष्किंधा. 10-7

इन उद्धरणों के अतिरिक्त अनेक उद्धरण श्री गंगासहाय 'प्रेमी' के लेख

'तुलसी साहित्य : अनुवादों की नुमाइश' शीर्षक लेख में दिए गए हैं.

इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के रामचरित मानस मे मौलिक कुछ नहीं है, सब इधरउधर का लिया हुआ है. कहीं अविकल अनुवाद है, कहीं भावानुवाद है, कहीं छायानुवाद है और कहीं कथानक की चोरी है. महाकवि क्षेमेंद्र का निम्न छंद तुलसीदास पर खरा उतरता है :

छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी,
भवेदथ प्राप्त कवित्वजीवी स्वोन्मेपतो वा भुवनोपजीव्यः

हो सकता है कि तुलसी मे प्रतिभा रही हो, लेकिन उन की चिंतन प्रक्रिया में कहीं गड़बड़ी अवश्य थी जिस के कारण उन के काव्य में पुनरुक्ति, अनुवाद और परंपरा से प्राप्त ज्ञान का पुनःप्रकाशन मात्र ही हो पाया. वह संत कबीर की तरह किसी नए क्रांतिकारी विचार को प्रस्तुत नहीं कर सके. तुलसी की चिंतन प्रक्रिया मे कहां गड़बड़ी थी, यह जान लेना बहुत जरूरी है.

सत्य के विपरीत भारतीय परंपरा मे ज्ञान विकासमान नहीं माना गया है, बल्कि उलटे ह्रासमान माना गया है. सारा ज्ञानविज्ञान हमारे यहां देवो और ऋषियों का दिया हुआ बताया जाता है, जिस में कोई नयापन होने या कुछ जुडने की बात स्वीकार नहीं की जा सकती. हम मनुष्य देवों के दिए हुए उस ज्ञान में कोई वृद्धि नहीं कर सकते, क्योंकि वहां स्पष्ट घोषणा है कि 'जो यहां है वही सर्वत्र है, जो यहां नहीं है वह कहीं नहीं हो सकता.' 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्निहास्ति न तत्ववचित्.' ऐसी स्थिति मे हम भारतीयों को सदा उसी मार्ग पर चलना होता है. मौलिकता पर हमारी परंपरा में प्रतिबंध है.

मौलिकता का मोह

इसी कारण यहां हजारों वर्षों तक प्रतिभाशाली विद्वान मात्र टीकाएं और व्याख्याएं लिखते हैं. वे किसी मौलिक ग्रंथ की रचना नहीं कर सके. इसी परंपरा में तुलसी भी है. तब फिर भला उन्हें संस्कृत साहित्य की काव्योचित कल्पनाओं, रूपकों, उपमाओं, कथाप्रसंगों के आयात और पुनःप्रकाशन मे क्यों संकोच होता! यदि वह संस्कृत से अवधी पर न उतरे होते तो मानस की रचना न कर के किसी प्राचीन ग्रंथ की टीका लिखते.

लेकिन ऐसी बात नहीं कि तुलसी को मौलिक बनने का मोह नहीं था. 'कवि न होऊं नहि चतुर कहावौं' तो बस कहने की बात थी, कवि कहलाने की इच्छा थी. संस्कृत साहित्य की चुराई हुई उक्तियों को फिर से संस्कृत में लिखने पर भला कौन उस की सराहना करता, इसलिए उन्होंने लोकभाषा की शरण ली, जिस के पाठक आम तौर पर संस्कृत से अनजान थे और वहां यह मिलावटी माल ऊंचे दाम पर बिक सकता था. इसी कारण तुलसी को उस वर्ग में लोकप्रियता प्राप्त हो गई, लेकिन विद्वत समाज का आदर न मिल सका.

सारे भक्तिकाल और रीतिकाल मे तुलसी की प्रशंसा के दो, केवल दो पद

हैं. एक भिखारीदास का 'तुलसीगंग दुवौ भए,' दूसरा बेनी कवि की घनाक्षरी—'वेद मत सोधिसोधि के पुरान सबै.' तुलसी के समकालीन मधुसूदन सरस्वती का एक संस्कृत छंद 'आनंद कानने कश्चित् ..' भी मिलता है. इतने बड़े गरिमा ग्रंथ 'रामचरित मानस' के प्रणेता के प्रशंसकों की इतनी कमी का कारण क्या हो सकता है? केवल यही कि उस में कोई मौलिकता नहीं थी जिस की लोग प्रशंसा करते

तुलसी इस अर्थ में युगद्रष्टा अवश्य थे कि उन्होंने समझ लिया था कि भावी पीढ़ी संस्कृत में और भी अनभिज्ञ होगी और उस युग के व्यक्ति यह तमीज ही न कर पाएंगे कि तुलसी का कितना अपना है और कितना मांगा हुआ, इसलिए उन्होंने दिनदोपहर संस्कृत ग्रंथों की अनुकृति शुरू कर दी.

निंदा के पात्र

जब तुलसीदास मानस की रचना करते समय उस में संस्कृत ग्रंथों से प्रचुर आयात व्यापार चला रहे थे, तब अयोध्या के पंडित क्षुब्ध हो गए शायद तुलसी पहले कथावाचक थे और वह कुछ दिनों तक प्रसंगानुरूप संस्कृत उद्धरणों का उपयोग कथा को सुंदर बनाने के लिए करते रहे होंगे. फिर उन्होंने अवधी अनुवाद शुरू किया होगा. उस समय के पंडितों को इस प्रकार की काव्यशास्त्रीय चोरी पसंद न आई होगी, इसलिए अयोध्या में तुलसीदास निंदा के पात्र घोषित किए गए और उन्हें परेशानी भी भुगतनी पड़ी. इसे तुलसी ने बड़े अमर्ष और आक्रोश से व्यक्त किया है. उन्होंने ऐसे सभी संबोधनों का उल्लेख किया है, जो उस समय उन्हों के लिए प्रयुक्त हो रहे थे.

धूत कहैं अवधूत कहैं रजपूत कहैं जोलहा कहैं कोऊ,
काहू के बेटी सों बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ

अंत में तुलसी को अयोध्या से भागना पड़ा मानस में यह सोरठा है :

मुक्ति जन्म महि जानि, ज्ञान खानि अघ हानि कर,
जहं बस संभु भवानि, सो काशी सेइअ कस न

बस यहीं से कथा काशी में जा कर लिखी गई है. काशी में भी उन के इस कार्य के अनेक आलोचक पैदा हो गए और यहां भी उत्पीड़न शुरू हो गया सुना जाता है कि एक बार तुलसी पर लकड़ी से मार पड़ी थी और उन के सिर में चोट आई थी. उस के बाद अनेक वर्षों के लिए उन्होंने काशी को छोड़ दिया था. इतने बड़े 'गरिमा ग्रंथ' मानस के प्रणेता की उस के जीवनकाल में ही इतनी प्रताड़ना! आखिर क्यों लोग तुलसी को ढेले मारते रहे? इस का कारण मात्र वैयक्तिक ईर्ष्या नहीं हो सकती. इस का कारण यही था। तत्कालीन पंडितों को संस्कृत और पूर्ववर्ती साहित्य का पर्याप्त ज्ञान था. उन्हें यह सहन नहीं हो पाता था कि कोई धूर्त संस्कृत और पूर्ववर्ती साहित्य को अपना कह कर प्रस्तुत करे.

यदि आज कोई भोजपुरी या बुंदेलखंडी में 'कामायनी,' 'प्रियप्रवास', 'लोकायतन,' 'उर्वशी,' आदि हिंदी काव्यों और प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर आदि कवियों के काव्यगत भावों की अनुकृति कर के काव्य ग्रंथ लिखे तो क्या वह सुधीजनों का सम्मानित कवि बन सकता है? उस की आलोचना तो होगी ही.

तुलसी साहित्य आलोच्य विषय के रूप में माध्यमिक विद्यालयों से ले कर विश्वविद्यालयों तक पढ़ाया जा रहा है. तुलसी का कलापक्ष, भावपक्ष, शील-संविधान, भाषा वैशिष्ट्य, कथानक संगठन आदि विभिन्न शीर्षकों—उपशीर्षकों के अंतर्गत निबंध लिखे और लिखाए जाते हैं. जब वह तुलसी का अपना है ही नहीं तब उन के आधार पर इन निबंधों की रचना कितनी हास्यास्पद है, पहले विद्वान और शोधकर्त्ता यह तो निर्णय करें कि तुलसी का कितना अपना है. यानी तुलसी कितने मौलिक हैं? फिर उस के आधार पर तुलसी का मूल्यांकन किया जाना चाहिए. इस प्रकार के अन्वेषण में तुलसी मात्र भाषांतरकार नजर आएंगे और उन का काव्य मात्र पौराणिक परंपरा का संकलन घोषित होगा. ●

चार सौवीं जयंती

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा 'रामचरित मानस' के नाम से रची गई रामायण की रचना के 400 वर्ष पूरे होने पर लगभग चार वर्ष की तैयारी के बाद समस्त भारत मे यह चतुश्शती समारोह मनाया गया. इन चार वर्षों से इस जयंती को मनाने के लिए भारत की केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने स्थानस्थान पर अपनीअपनी समितियां बनाई थीं. केंद्रीय सरकार की समिति राष्ट्रपति के संरक्षण मे गठित हुई, अनेक केंद्रीय मंत्री और राजनयिक उस के सदस्य थे.

चार वर्ष की व्यापक तैयारी और धुआंधार प्रचार के उपरांत इस जयंती समारोह का अंतिम पर्व रामनवमी अप्रैल, 1974 के दिन मनाया गया था. दिल्ली मे उस दिन केंद्रीय सरकार की समिति ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री राय की अध्यक्षता मे मावलंकर हाल मे एक सभा का आयोजन किया गया. राजधानी में इस उत्सव पर न तो कोई विशेष उत्साह ही जनता मे था, न कोई विशेष सांस्कृतिक चेतना ही जागी, जिस की आशा की जाती थी. उत्तर प्रदेश मे एक रिटायर्ड आई. सी. एस. अधिकारी द्वारा स्थापित जिला समितियों ने भी अपनेअपने आयोजन किए. वे मात्र लकीर पीटने जैसे नितांत फीके समारोह थे

भारत से बाहर भारतीय और विदेशी नागरिकों द्वारा किए गए मानस चतुश्शती समारोहों मे रूस तथा इंगलैंड मे हुए समारोह उल्लेखनीय थे. इंगलैंड मे भारतीय राजदूत श्री कौल के इस अवसर पर दिए गए सारगर्भित अंगरेजी वक्तव्य को बी. बी. सी. ने भी अपने कार्यक्रमों मे प्रसारित किया था. उस भाषण मे अंगरेजी के प्रयोग की बी. बी. सी. श्रोताओं ने कटु आलोचना की. विदेश मे हुए समारोह तो औपचारिकता और शिष्टाचार से प्रेरित मात्र ही हो कर रह गए इतने अधिक प्रचार और व्यय के बावजूद उस पर्व पर ऐसी निरुत्साहिता का कारण क्या हो सकता है? उत्तर आसान है. आज की पीढ़ी 'रामचरित मानस' को ही क्या, प्रत्येक अन्य बात को भी वैज्ञानिक दृष्टि से

देखना चाहती है. आने वाली पीढ़ियां तो और भी अधिक इस दृष्टिकोण को अपनाएंगी. क्या वास्तव में रामकथा संबंधी भारत और विदेशों मे प्राप्य साहित्य के संदर्भ में 'रामचरित मानस' एक उच्च कोटि की रचना है, इस पर बिना अहंकार और लागलपेट के तनिक विचार कर लिया जाए.

'रामकथा साहित्य

राम की भगवान के रूप में उपासना 800 वर्षों से अधिक पुरानी नहीं है. तुलसीदासजी ने 'रामचरित मानस' को आगमनिगम, देववेदांग आदि से लिया हुआ कहा है. किंतु न वेदो में राम कहीं भी वर्णित हैं, न उपनिषदों में. तुलसीदासजी ने 'मानस' को वाल्मीकि रामायण में वर्णित रामकथा से ही ले कर परिवर्धित व अलंकृत किया है.

बौद्ध ग्रंथों मे राम बोधिसत्व के एक अवतार हैं तथा जैन धर्म मे वे आठवें बलदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं. वाल्मीकि रामायण मे वह भगवान के अवतार नहीं है.

संस्कृत मे वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त लगभग 20 रामाख्यानक पूर्व काल मे लिखे जा चुके हैं. इन में से लोमस रामायण, संव्रत रामायण, अध्यात्म रामायण, मुजुल रामायण, गौड़ीय रामायण, रामरहस्य, अगस्त्य रामायण, सुब्रह्म रामायण, सौर्य रामायण, चंद्र रामायण, रामायण चंपू आदि रामकथा से संबंधित संस्कृत रामायणो का उल्लेख 'हिंदुत्व' नामक ग्रंथ में है. महाभारत के वन पर्व मे भी रामायण की पुरानी कथा है. पुराने 18 पुराणो में से प्रत्येक में रामकथा आई है. अध्यात्म रामायण और योगवशिष्ठ महारामायण अद्वैतवादी ग्रंथ हैं. विष्णु और नारायण के अवतार के रूप मे राम की उपासना न उपनिषदों में है, न उक्त किसी संस्कृत रामायण मे.

वाल्मीकि रामायण की कथा पर 'रामचरित मानस' की रचना से पहले संस्कृत मे 'रघुवंश,' 'भट्टि काव्य,' 'महावीर चरित,' 'उत्तर रामचरित,' 'प्रतिभा नाटक,' 'जानकी हरण,' 'कुंदमाला,' 'अनर्घ राघव,' 'बाल रामायण,' 'हनुमन्नाटक,' 'अद्भुत रामायण,' 'आनंद रामायण' आदि ग्रंथ लिख गए. जो विभिन्न प्रांतों और देशों पर वाल्मीकि रामायण के प्रभाव के द्योतक हैं. रामकथा के अन्य भारतीय भाषाओं में 10वीं शती ईसवी की कवन कृत तमिल रामायण, 12वीं शती ईसवी की तेलुगु द्विपाद रामायण, 14वी शती ईसवी की मलयालम रामचरितम, कन्नड़ी तोरावे रामायण, उड़िया बलरामदास रामायण, मराठी भावार्थ रामायण हैं. भारत के बाहर तिब्बत, श्री लंका, मध्य एशिया, हिंद चीन, श्याम, ब्रह्मदेश, बाली और यवद्वीप में प्रचलित रामकथा भी आठवींनौवीं शताब्दी ईसवी की हैं. इन में भी राम ईश्वरावतार नहीं हैं लौकिक संस्कृत के जन्मदाता पाणिनि (450 ईसा पूर्व) ने राम का कहीं उल्लेख तक नहीं किया है.

राम अवतार की कल्पना

श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार रामावतार की कल्पना ट्रावणकोर के आलवार संतों की 11वीं शताब्दी (ईसवी) की देन है. डाक्टर भंडारकर के अनुसार भी विष्णु के अवतार के रूप में रामकथा का प्रचलन 11वीं शताब्दी (ईसवी) मे हुआ था. उत्तर भारत मे मुसलिम अत्याचारों से क्षुब्ध हो कर स्वामी रामानंद ने राम की उपासना परब्रह्म के रूप मे चलाई. रामानंदजी का जन्म प्रयाग मे सन 1398 के लगभग हुआ वह रामानुज संप्रदाय के वैष्णव थे. स्वयं रामानुज अपनेआप को द्रविड़ाचार्य के शिष्य मानते थे द्रविड़ाचार्य नामक आचार्य आलवार के शठकोप या वकुलाभरण नामक आचार्य थे, जिन्होंने दक्षिण मे रामभक्ति का प्रचार किया था.

स्वामी रामानंद ने रामानुज के वैष्णव संप्रदाय को अधिक उदार बना कर जो संप्रदाय चलाया, वह रामावत संप्रदाय कहलाता है. उन के शिष्यों मे जाट, शूद्र, चमार, मुसलमान स्त्री आदि का समावेश हो सकता था. उन के विचार बड़े उदार थे. स्वामी रामनंदजी की शिष्य परंपरा मे नरसिंहदासजी हुए और गोस्वामी तुलसीदास उन्हीं के शिष्य थे.

कबीर भी रामानंद के शिष्य थे किंतु कबीर का मत तुलसीदासजी के मत से बहुत अधिक व्यापक और उदार था. कबीर ने स्वयं कोई ग्रंथ नहीं लिखा उन के शिष्यों ने उन के मुख से निकली वाणी को 'दसपद्म रमैनी,' 'अक्षर भेद की रमैनी,' 'चौकाघर की रमैनी,' आदि रामकथा से संबंधित रमैनियों (रामायणों) मे लिपिबद्ध किया. कबीर रामकथा की इन रमैनियों को गागा कर सुनाते थे और राम नाम के साथ ही सत्यनाम को भी अपने भजन का विषय बनाते थे वह एकेश्वरवादी थे, अवतार, मूर्ति, रोजा, ईद, मसजिद, मंदिर आदि को नहीं मानते थे नानकपंथ, दादूपंथ आदि दस पंथ कबीर की ही निर्गुण निराकार उपासना से निकल पड़े.

द्रविड या असुर?

घुमंतू पशुपालक आर्यों का सिंधु नदी घाटी मे जिन से उन्नत और सभ्य जिन अनार्यों से संपर्क हुआ वे पश्चिम के असीरियन (असुर) लोगों से भिन्न न थे. ये अनार्य या द्रविड अथवा असुर बहुदेववादी, मूर्तिपूजक थे सूर्य, रुद्र तथा शिश्नदेव (लिंग) के उपासक तथा प्रजनन (फर्टिलिटीकल्ट) धर्मवादी थे. द्रविड कही गई जातियां सिंधु घाटी अथवा बेबीलोनिया की दजलाफुरात घाटी और मिस्र की नील नदी घाटियों मे एकदूसरे की समसामयिक थीं. तत्कालीन पुरातात्विक सामग्री से इन तीन नदी घाटियों मे पारस्परिक संपर्क के अनेक उदाहरण अब उपलब्ध हो गए हैं

पुराविद् डाक्टर मजूमदार के अनुसार आज के हिंदू धर्म मे 75 प्रतिशत

अंश अनार्य अथवा द्रविड़ है. पूजा, उपासना. भजन, भक्ति, योग आदि शब्द द्रविड़मूलक हैं. हिंदू धर्म के आदर्श ग्रंथ भागवत और विष्णु पुराण हैं. उन के अनुसार प्रलय के उपरांत मनु ने इस सृष्टि का आरंभ किया तथा वर्तमान अनवंतर के आदि मानव, वैवस्वत मनु द्रविड़ कुल मे जन्मे थे. भागवत पुराण में कहा गया है :

'उत्पन्ना द्राविड़े चाहं कर्णाटे वृद्धि गता,
स्थिता किंचिमहाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णता गता.'

(अर्थात भक्ति कहती है : मैं द्रविड़ कुल में जन्मी, कर्नाटक मे बढ़ी, कुछ दिन महाराष्ट्र में रही, गुजरात में बूढ़ी हुई.)

वही श्लोक कुछ उलटफेर के साथ एक अन्य महत्त्वपूर्ण धर्मग्रंथ 'पद्म पुराण' में भी आता है. वाल्मीकि रामायण भी एक भक्ति काव्य है. रेवरेंड फादर कामिल बुलके के अनुसार राम, रावण तथा हनुमान क्रमशः आर्य, अनार्य तथा आदिवासी—इन तीन विभिन्न संस्कृतियों के आदर्श पुरुष रहे होंगे तथा तीनों के संबंध मे पूर्व काल से ही अनेक आख्यान काव्य प्रचलित रहे होंगे. इन्हीं आख्यानो के आधार पर वाल्मीकि ने आदि रामायण की रचना की. प्राचीन काल में ये आख्यान राजाओं के सूतो द्वारा जन समारोहों, उत्सवों और राजदरबारों में गाए जाते होंगे.

काव्य शास्त्र का साधारण पंडित भी तुलसी कृत 'मानस' में यत्रतत्र अधकचरे वाक्य, अटपटी कल्पना और बेढंगी उपमाओं से अनेक दोष देख सकता है. प्रबंध काव्य का साधारण नियम है कि मुख्य नायक को ही प्रधानता दी जाए. 'मानस' की एक चौपाई है :

'भरत अमित महिमा सुनु रानी, जानहि रामु न सकहिं बखानी.'

(अर्थात रामचंद्रजी भी भरत की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते.)

यदि ऐसा ही भरत का उदात्त चरित्र और यही निरूपण कवि को करना था तो इस ग्रंथ का नाम 'रामचरित मानस' न हो कर 'भरतचरित' होना चाहिए था.

मानस मे काव्य दोष

छोटेमोटे काव्य दोष तो पगपग पर मिलते हैं. आरंभिक दोहे को ही लीजिए :

'श्री गुरुचरण सरोज रज निज मन मुकुरु सुधारि.'

इस दोहे में श्री गुरु के चरणकमलों की धूल से अपने मन रूपी आईने (शीशे) को सुधारना कैसा असंगत है! धूल से क्या आईना साफ किया जा सकता है? थोड़ी देर यह कल्पना कर लें कि चरण को कमल मान लिया गया है तो कमल की रज या पराग से भी आईना स्वच्छ नहीं किया जा सकता. फिर तो इस दोहे का स्वाभाविक अर्थ—मनरूपी आईने में से गुरु के चरणों

की धूल को झाड़ कर—यह हो जाता है.

'मानस' में कई बार तुलसीदासजी ने स्वयं कहा है कि वह कवि नहीं हैं तथा कविता का विवेक उन में नहीं है. यह उन की विनम्रता नहीं, महज स्वीकारोक्ति है, क्योंकि वह शब्द और अक्षर इन दोनों में क्या अंतर है, यह नहीं जान पाए. 'काव्य प्रकाश' के अनुसार 'शब्दार्थ काव्यं' अर्थात शब्द के विभिन्न अर्थों का आलकारिक अभिव्यंजन ही काव्य है. तुलसीदासजी लिखते हैं :

'आखर अरथ अलंकृति नाना...' तथा दूसरे स्थल पर...'कबिहि अरथ आखर बलु सांचा '

लगता है कि काव्य के मूल 'शब्द' से गोस्वामीजी सर्वथा अपरिचित थे.

'रामचरित मानस' अशिक्षित या अर्धशिक्षित श्रोताओं को चौपाल या मंदिर में सुनाने के लिए रची गई दोहों, चौपाइयों में गाई जाने योग्य कथा है. उन दोहों, चौपाइयों के पदों की मात्राओं को समान रखने के लिए शब्दों को जिस मनमाने ढंग से तोड़ामरोड़ा गया है, वह किसी भी व्याकरण के नियम के अनुरूप नहीं है. आखिर उस कसौटी में लिखित कविता भ्रष्ट हो ही जाएगी. 'मानस' में आज को आजू, समाज को समाजू, प्रकाश को प्रकासू और मिथिलेश मिथिलेसू केवल तुक भिड़ाने के लिए कर दिया गया है. इसी भांति क्लेश को कलेसू, नाथ को नाथा, हाथ को हाथा भी कर दिया गया है यदि अपना ही यह नियम सर्वत्र होता तो भी ठीक था किंतु एक ही चौपाई में कहीं नाथ लिखा गया है तो कहीं नाथा, कहीं नरेसू तथा कहीं कठोर कठोरे हो गया है :

'सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे, अरथ अमित अति आखर थोरे '

इस चौपाई में भी 'शब्द' की जगह पर ,आखर' आया है और तुकबंदी के लिए थोड़े के साथ कठोर को भी कठोरे हो जाना पड़ा है.

सोवियत रूस में मानस समारोह

सोवियत रूस में भी 'मानस चतुश्शती' भारतीय राजदूत डाक्टर शेवलंकर की अध्यक्षता में मनाई गई रूसी विद्वान और भारतविद्याविद् चेलिशेव ने इस अवसर पर जो भाषण दिया, उस में 'मानस' का कहीं जिक्र भी नहीं हुआ. सारी चर्चा महाकाव्यों पर चल पड़ी रूसी भी सभी पाश्चात्य विद्वानों की भांति 'मानस' की वास्तविकता से परिचित हैं उन का काव्य और उस की साहित्यिकता किस कोटि की है, यह उन से छिपा नहीं है.

'मानस' की चतुश्शती का समारोह रूसियों के लिए उन के महान कवि और साहित्यकार पुश्किन की 175वीं जयंती का वर्ष भी था एलेक्जेंडर पुश्किन रूस का पहला कवि था जिस की ख्याति अपने देश की सीमा क्षेत्र से बाहर यूरोप के अन्य देशों को भी प्रभावित कर गई. उस की विनोदप्रियता और उस की मृदु व्यंग्य ही अद्वितीय नहीं हैं, वरन वह मानव मात्र की समानता का समर्थक भी माना गया है, जब कि 'मानस' रूढ़िवादी परंपराओं का पोषक

और नारी तथा शूद्र को पशु तुल्य प्रदर्शित करता है. अतः इस समारोह मे 'मानस' का पुश्किन की रचनाओं के साथ उल्लेख जगहंसाई का ही कारण होता. रूस की हिंदी पत्रिका 'सोवियत भूमि' में छपे समारोह के विवरण का निम्नलिखित वाक्य उल्लेखनीय है :

चेंसलेव ने कहा : 'रामायण के ऐतिहासिक महत्त्व को नजरअंदाज करना कठिन है. जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि प्राचीन भारत के दोनों महाकाव्यों—रामायण और महाभारत के निर्माण मे शायद कई सौ वर्ष लगे होंगे.' —स्पष्ट है कि यह उल्लेख वाल्मीकि रामायण के लिए है, न कि तुलसी कृत 'रामचरित मानस' के लिए.

तुलसी कृत 'मानस,' पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि मे, पुराणों की नकल मात्र है. उस मे न तो कालिदास की सी सहज अनुभूति से प्रेरित काव्य कला है और न किसी गहन चिंतन से परिपुष्ट अध्यात्म का ही पुट है. 'मानस' मे कैलास पर्वत पर एक विशाल वट वृक्ष के होने का वर्णन है :

''परम रम्य गिरिवरु कैलासू, सदा जहा सिवउमा निवासू
तेहि गिरि पर वट बिटप त्रिसाला, नित नूतन सुदर सव काला '

शीत प्रधान यूरोप के विद्वान यह भली भांति जानते हैं कि समुद्र तट से 17,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित कैलास पर्वत पर वृक्ष तो क्या, घास भी नहीं उग सकती. वहां विशाल वट वृक्ष कहां?

एक अन्य स्थल पर रथ की तेज गति का वर्णन करते हुए तुलसी ने असंभाव्य कल्पना की है :

'जे जल चलहि थलहि की नाई, टाप न बूढ वेग अधिकाई.'

(अर्थात वेग की अधिकता से रथ के घोड़े पानी में भी बिना डूबे हुए सरपट पार हो जाते हैं.)

'रामचरित मानस'—हिंदी पुराण'

वास्तव मे 'रामचरित मानस' मध्यकालीन भक्ति धारा के अंतर्गत रचे गए पुराणो की भांति एक पुराण है अंतर यही है, वह उस से पहले के संस्कृत के पुराणों का हिंदी अनुवाद है. 'मानस' मे तुलसीदासजी ने वाल्मीकि वर्णित रामकथा को अनेक उपकथाओ और परंपरागत रूढ़ियो से अलंकृत करने का प्रयत्न किया है. जिन पुराणो का सहारा लिया गया है उन मे 'नारद पुराण' और 'स्कंद पुराण' प्रमुख हैं.

पाणिनि के समय तक जब लौकिक संस्कृत का जन्म हुआ था, राम विष्णु के अवतार नहीं माने गए थे. वाल्मीकि रामायण भी गुप्तकालीन पुराण है, 'मानस' उस की एक भोंडी अनुकृति है. जैन साहित्य मे राम 'पउम' के नाम से विदित हैं. विमल सूरि का 'पउम चरित्त' रामकथा की 'मानस' से बहुत पहले रची गई प्राकृत रचना है. इसी भांति मराठी मे संत एकनाथ का मराठी

सरिता व मुक्ता में प्रकाशित महत्त्व पूर्ण लेखों के रिप्रिंट

सेट नं. 1.

प्राचीन हिंदू संस्कृति; शंबूक वध; अतीत का मोह; पुरोहितवाद; गोपूजा; हमारी धार्मिक सहिष्णुता; कृष्ण नीति : हमारा नैतिक पतन; ज्ञान की कसौटी पर परलोकवाद; राम का अंतर्द्वंद्व; राम का अंतर्द्वंद्व : आलोचनाओं का उत्तर; भारत में संस्कृति का ब्राह्मणनियंत्रित विस्तार; हिंदू धर्म; संस्कृत; भारतीय नारी की धार्मिक यात्रा; कर्ण; भारतीय नारी की सामाजिक यात्रा; तुलसी और वेद; रामचरितमानस में ब्राह्मणशाही; युगोयुगों से शोषित भारतीय नारी; भ्रष्टाचार; रामचरितमानस में नारी; सत्यनारायण व्रत कथा; क्या नास्तिक मूर्ख हैं?; गांधीजी का बलिदान; यज्ञोपवीत; जंत्र तंत्र मंत्र; कर्मयोग; गरुड़ पुराण. सेट नं. 1 का मूल्य तीन रुपए.

सेट नं 2.

ईश्वर, आत्मा, और पाप; कितना महंगा धर्म; कितना महंगा धर्म : आलोचनाओं व आपत्तियों के उत्तर; कितना महंगा धर्म. निर्णय; राम कथा व सीता चरित्र; सताई गई नारी; सरिता और हिंदू समाज; तुलसी साहित्य अनुवादों की सफल नुमाइश के सिवा क्या है?; तुलसी साहित्य : आलोचनाओं व आपत्तियों के उत्तर; हिंदुओं के मंदिर कैसे हों?; रावण; रामचरितमानस के अविश्वसनीय प्रसंग; रामचरितमानस के कुछ असंगत स्थल; श्रीकृष्ण; गीता : कर्मवाद की व्याख्या या कृष्ण का आत्मप्रचार; क्या कौमार्य रक्षा दकियानूसी है?; कृष्ण और राधा; श्रीमद्भागवत; भागवत और भूगोल; समाजवाद बनाम स्वतंत्रता; हिंदू विवाह पद्धति; कामायनी; पुत्रेष्टि यज्ञ; तुलसीदास और हिंदू समाज; हिंदी साहित्य का गलत इतिहास; धनुर्यज्ञ; कृष्ण और गोपियां; हमारे देव मंदिर; क्या समाजवाद अनिवार्य है?; विवाहपूर्व यौन संबंध; श्रीकृष्ण अपने जीवन की संध्या में; कृष्ण और कुब्जा;
सेट न. 2 का मूल्य पांच रुपए.

सेट नं. 3

हमारे पालतू जानवर; प्रेम पत्र न लिखिये; डायरी न लिखिए; इसलाम और स्त्री; योगी अरविंद; गीता में अंतर्विरोध; गायत्री मंत्र; फल सब्जी संरक्षण; खट्टे मीठे अचार; सर्दियों के लिए बुनाई; आप का रसोई उद्यान.
सेट नं० 3 का मूल्य 2 रुपए.

भावार्थ रामायण 16वीं शताब्दी (ईसवी) का है. 'मानम' की कविता उन रचनाओं के समक्ष काव्य प्रणयन का फीका प्रयास है.

भक्ति रस प्रधान 'मानम' के लिए स्वर्गीय दिनकरजी की यह उक्ति जो उन्होंने 'संस्कृति के चार अध्याय' मे व्यक्त की है, ठीक ही बैठती है : 'भक्ति काल की रचनाओ मे नवीनता और ताजगी जरूर है, क्योंकि यह सर्वथा नूतन प्रयोग था. मगर बाकी तो...वह सस्कृत का अनुसरण मात्र ही है. जब जाति का हृदय सूख जाता है तो कवि और कलाकार पुरानी चीजो पर पच्चीकारी और नक्काशी के चमत्कार दिखाने लगते है.' ● ●